प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य में मुक्ति का सवाल
(1857-1947)

PRATIBANDHIT HINDI-SAHITYA MEN MUKTI KA SAWAL
1857-1947

THE QUESTION OF LIBERATION IN BANNED HINDI LITERATURE (1857-1947)

पीएच. डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

शोध निर्देशक
प्रो. देवेन्द्र कुमार चौबे

शोधार्थी
मधुलिका बेन पटेल

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली 110067

2016

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHAR LAL NEHRU UNIVERSITY
Centre of Indian Languages
School of Language, Literature, & Culture Studies
NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 27/06/2016

DECLARATION

I hereby declare that the research work done in this Ph.D. Thesis entitled **"PRATIBANDHIT HINDI-SAHITYA MEN MUKTI KA SAWAL 1857-1947" [THE QUESTION OF LIBERATION IN BANNED HINDI LITERATURE (1857-1947)]** by me is the original research work and it has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/ Institution.

MADHULIKA BEN PATEL
(Research Scholar)

Prof. Devendra Kumar Choubey
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

Prof. Syed Mohd. Anwar Alam
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

GRAM : JAYENU, Tel.: (91-011) 26741557, 26742676 Extn.:4217, (D) 26704217, Telefax: (91-011) 26704217
Email : chair_cil@mail.jnu.ac.in, jnucil@gmail.com

भूमिका **i-vi**

पहला अध्याय : प्रतिबंधन का अर्थ , इतिहास और साहित्य **1-63**

1.1 प्रतिबंधन का अर्थ, अधिनियम और मुक्ति के मायने

1.2 औपनिवेशिक भारत में प्रतिबंधन का इतिहास

1.2.1 राजनीतिक

1.2.2 सामाजिक

1.2.3 आर्थिक

1.2.4 धार्मिक एंव सांस्कृतिक

1.3 प्रतिबंधित साहित्य का इतिहास और प्रतिबंधित रचनाएं

1.3.1 भारतीय साहित्य

1.3.2 हिन्दी में प्रतिबंधित साहित्य का इतिहास

1.3.3 हिन्दी की प्रतिबंधित रचनाओं की सूची

दूसरा अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य और उसमें मुक्ति का स्वरूप **64-119**

2.1 राष्ट्र मुक्ति का सवाल

2.2 आर्थिक मुक्ति का सवाल

2.2.1 अंग्रेजी राज में किसान

2.2.2 अंग्रेजी राज में मजदूर

2.2.3 अंग्रेजी राज में बुनकर

2.3 सामाजिक मुक्ति का सवाल

2.3.1 स्त्री

2.3.2 दलित

तीसरा अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य और अभिव्यक्ति का सवाल **120-142**

3.1 ब्रिटिश प्रेस ऐक्ट और आरंभिक हिन्दी पत्रकारिता

3.2 स्वाधीनता आन्दोलन, अभिव्यक्ति का सवाल और साहित्य

3.3 रंगमंच, नुक्कड़ सभाएं और अभिव्यक्ति का सवाल

चौथा अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य में राष्ट्र मुक्ति का सवाल **143-176**

4.1 प्रतिबंधित साहित्य में नवजागरण की चेतना

4.2 प्रतिबंधित साहित्य में स्वतन्त्रता की धारणा

4.3 प्रतिबंधित साहित्य में दमनकारी तंत्र का प्रतिरोध

4.4 प्रतिबंधित साहित्य में गुलामी से मुक्ति की अकांक्षा

पाँचवा अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य और आर्थिक मुक्ति का सवाल **177-207**

5.1 ब्रिटिश राज की आर्थिक नीति, देशी उद्योग–धंधे और साहित्य

5.2 औपनिवेशिक भारत में किसानों–मजदूरों की ऋणग्रस्तता और मुक्ति का सवाल

5.3 स्वराज, गांधी और आर्थिक मुक्ति का सवाल

छठां अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य की भाषा **208-226**

6.1 काव्य भाषा

6.2 कथा भाषा

6.3 नाट्य भाषा

6.4 पत्रकारिता की भाषा

6.5 पर्चे–पोस्टर की भाषा

उपसंहार **227-228**

ग्रन्थ सूची **229-238**

भूमिका

भारतीय इतिहास में सन् 1857 एक महत्वपूर्ण बिन्दु है. आजादी की यह लड़ाई मात्र मेरठ, दिल्ली, कानपुर दानापुर या झाँसी तक ही सीमित न थी अपितु इसकी चिंगारी सारे देश में फैल चुकी थी. यह आन्दोलन जाति, मज़हब और वर्ग के बन्धन से ऊपर उठकर गुलामी की जंजीरों को उखाड़ फेंकने का मकसद लेकर चला था. यह बात अलग है कि इसमें पूर्ण रूपेण सफलता नहीं मिली . फिर भी इससे स्वतन्त्रता की एक मजबूत नींव रख दी गई इसलिए साहित्य पर लगे प्रतिबन्ध को मैंने 1857 से देखने की कोशिश की है. मेरे शोध प्रबन्ध के शीर्षक 'प्रतिबन्धित हिन्दी साहित्य में मुक्ति का सवाल (1857–1947) में प्रयुक्त 'मुक्ति' शब्द का अर्थ किसी आध्यात्मिक अर्थ में प्राप्त की गई मुक्ति नहीं है, वरन् यहां इसका अर्थ 'स्वतन्त्रता' अथवा 'आजादी' है.

साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपना वर्चस्व बनाए रखने के उद्देश्य से अनेक ऐसे प्रावधानों का निर्माण किया जिसके तहत उनके लिए चुनौती बन सकने वाली हर गतिविधियों पर नियन्त्रण रखा जा सके. देश को गुलाम बनाए रखने के लिए यह आवश्यक था कि लोगों की स्वातन्त्र्य चेतना को ही मार दिया जाय. सत्ता ने सभाओं, संगठनों, व्यक्तियों के प्रतिनिधित्व , लेखन, भाषणों, रचनाओं आदि को प्रतिबन्धित किया जो उसके लिए चुनौती साबित हो रहे थे, जिनमें उनके प्रति घृणा, विद्वेष अथवा जनता को उत्तेजित करने, उनमें स्वातन्त्र्य चेतना के विकास का भाव विद्यमान रहता था. चूँकि साहित्य से स्वातन्त्र्य चेतना के विकास में काफी तेजी आई. जनता को जागरूक करने और गुलामी की जंजीरों को उखाड़ फेंकने के लिए पत्रों, समाचार–पत्रों, पत्रिकाओं पैम्फलेटों और पुस्तकों के माध्यम से लोगों को ललकारा गया. व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर देश के लिए अपनी जान कुर्बान करने का संदेश दिया गया. ऐसे लेखन वास्तव में ब्रिटिश शासन के सामने बहुत बड़ी चुनौती थे.

यह एक ऐसा दौर था जिस समय पूरे विश्व में उथल–पुथल मची हुई थी. एक ओर साम्राज्यवादी प्रभुत्व के इतिहास का निर्माण हो रहा था तो दूसरी ओर पूरे विश्व में वर्चस्ववादी नीतियों के खिलाफ जन संघर्षों का इतिहास भी उभर कर सामने आ रहा था. इस दौरान लेखन पर पाबंदी का खेल पूरे विश्व में चल रहा था. 1843 के शुरूआती दिनों में 'राइन अखबार' पर प्रतिबंध लगा. इसमें प्रकाशित होने होने वाले लेखों ने इस अखबार को जनता के काफी निकट पहुँचा दिया. कहना न होगा कि 1842 में मार्क्स इसके संपादक मण्डल में थे और बाद में इसके प्रधान संपादक बन गए.

आजादी के लिए किए गए संघर्षों का लम्बा इतिहास रहा है. इन संघर्षों को आगे बढ़ाने में साहित्य की बड़ी भूमिका है. उस दौर में रची गई रचनाओं पर भारतीय राजनैतिक, सामाजिक क्षेत्र में हो रहे ऊथल–पुथल का सीधा प्रभाव है. इन रचनाओं ने लोगों में मुक्ति की चेतना भरने में बड़ी मदद की. इनमें किसी काल्पनिक जगत् का वर्णन नहीं किया गया अपितु ये रचनाएँ यथार्थ के कठोर धरातल पर खड़ी हैं, जहाँ संघर्ष के सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है. 'सच तो यह है कि इन कहानियों एवं उपन्यासों में भारतीय स्वाधीनता संग्राम का अनलिखा इतिहास कैद है. सबसे बड़ी बात यह है कि इन कहानियों में न केवल भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और घटनाओं की भूमिका का रचनात्मक उपयोग है, बल्कि उन समस्त देशों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमियों, परिवेशों, घटनाओं और क्रांतिकारी चरित्रों को आधार बनाकर कहानियाँ रची गईं हैं, जहाँ की जनता साम्राज्यवादी और सामंतवादी शक्तियों के ख़िलाफ जनमुक्ति की लड़ाई लड़ रही थी. सच्चे अर्थों में भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के लिए स्वदेशी एवं विदेशी इतिहास की क्रांतिकारी घटनाओं से प्रेरणा ग्रहण करने का यह सर्वोत्तम तरीका था. मेरे विषय 'प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य में मुक्ति का सवाल (1857–1947)' में अंग्रेजों द्वारा जब्त किए गए साहित्य को नए सिरे से देखने की कोशिश की गई है. इसकी समय सीमा 1857 से रखी गई है, हालांकि यह बात अलग है कि प्रतिबंध की राजनीति बहुत पहले से विद्यमान थी.

मेरे शोध प्रबंध में कुल सात अध्याय हैं और अन्त में एक छोटा सा उपसंहार फिर आधार व सहायक ग्रंथों का उल्लेख है. **प्रथम अध्याय** 'प्रतिबंधन का अर्थ, इतिहास और साहित्य' है. इसके पहले उप अध्याय में प्रतिबंधन के अर्थ, अधिनियम और मुक्ति के मायनों पर विचार किया गया है. दूसरे उप अध्याय में औपनिवेशिक भारत में प्रतिबंधन के इतिहास को सामने रखा गया है. इसके अन्तर्गत राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में हो रहे प्रतिबंध की विवेचना है. कहना न होगा कि अंग्रेजों ने देश को पूरी तरह कब्जे में लेने के लिए सभी क्षेत्रों पर हमला किया. प्रतिबंध की इस राजनीति के तहत् वे लंबे समय तक देश को उपनिवेश बनाए रखने में कामयाब हो सकते थे. तीसरे उप अध्याय में प्रतिबंधित साहित्य के इतिहास को सामने रखने के अतिरिक्त भारतीय साहित्य में प्रतिबंधित की गई सामग्री की सूची है. अगले उप अध्याय में हिन्दी में प्रतिबंधित साहित्य के इतिहास को सामने रखा गया है. हिन्दी की कौन सी रचना किस ऐक्ट के तहत् कब जब्त हुई, इस बात की विवेचना इस उप अध्याय में है. उदाहरण के लिए सुन्दरलाल की पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज' धारा 124ए के तहत् 22 मार्च 1929 को यानी पुस्तक के प्रकाशन के चौथे दिन ही जब्त कर ली गई थी. इसके दूसरे उप अध्याय में हिन्दी की प्रतिबंधित रचनाओं की सूची दी गई है.

दूसरा अध्याय 'प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य और उसके स्वरूप' पर है. इसके पहले उप अध्याय में प्रतिबंधित साहित्य में राष्ट्र मुक्ति पर विचार किया गया है. देशवासियों के लिए साम्राज्यवादी शक्तियों को बाहर करना सबसे प्रमुख मुद्दा था. दूसरे उप अध्याय में आर्थिक मुक्ति पर प्रकाश डाला गया है. जिसके अन्तर्गत अंग्रेजी राज में किसानों और मजदूरों की स्थिति को सामने रखा गया है . कहना न होगा कि उस समय अंग्रेजों ने एक ओर कृषि व्यवस्था को हस्तगत कर लिया था तो दूसरी ओर उनकी नीतियों के बदौलत उद्योग–धन्धे चौपट हो चुके थे. मजदूरों की हालत अत्यंत दयनीय थी. साम्राज्यवादी शोषण से देश की हालत अत्यंत खराब थी. किसानों–मज़दूरों का भयंकर शोषण किया जा रहा था. इनके श्रम का लाभ उठा कर पूंजीपति अपना कोष भर रहे थे दूसरी ओर इनकी स्थिति बद से बदतर होती जा रही थी. इन्हें इनके श्रम का मूल्य भी प्राप्त नहीं होता था. लगान न दे पाने के कारण इन्हें भयंकर जुल्मों का सामना करना पड़ता था. मज़दूरों से इतना अधिक काम लिया जाता कि उनकी मृत्यु तक हो जाती. देश के बुर्जुआ नेताओं ने इनकी समस्याओं पर कोई ध्यान न दिया, लिहाजा किसानों–मज़दूरों ने स्वयं इस शोषण के ख़िलाफ लड़ाई छेड़ दी. इस उप अध्याय के अन्तर्गत ही बुनकरों की समस्याओं पर भी विचार किया गया है. साहित्य में उस समय इनकी समस्याओं को लेकर बहुत कुछ लिखा गया. मसलन, मुनिश्वरदत्त अवस्थी की प्रतिबंधित कहानी 'चमेली का चौरा' में इस बात की विस्तृत चर्चा है कि बुनकर अपने सारे माल विदेशी व्यापारियों को बेचने के लिए मजबूर थे. वे अपने माल का मूल्य अपने अनुसार नहीं लगा सकते थे. उन्हें पेशगी के धन जबर्दस्ती दिए जाते थे और उनसे वैसा ही माल तैयार करने पर मजबूर किया जाता जैसा विदेशी व्यापारी चाहते. ऐसा न करने पर सिपाहियों द्वारा बुनकरों का घर लुटवा लिया जाता. इसके तीसरे उप अध्याय में प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य में सामाजिक मुक्ति पर चर्चा है. आजादी की लड़ाई में स्त्रियों की भागीदारी कम न थी. इसके लिए उन्हें जेल जाना पड़ा और कई बार हिंसक कार्रवाई भी झेलनी पड़ी. स्त्रियों के साथ होते अत्याचार को देखकर इन्दुमति गोयनका अपने लेखन में 'पुलिस कर्मचारियों से अपील' करती हैं, और उनके अति अमानवीय व्यवहार की भर्त्सना करती हैं. प्रतिबंधित साहित्य में इन सबकी अभिव्यक्ति की गई. इन्हें विषय बनाकर तमाम साहित्य लिखे गए इस अध्याय में इन्हीं का विवेचन किया गया है. समाज में उस समय ब्राह्मणवादी व्यवस्था के विरूद्ध भी आवाज उठने लगी थी. सदियों के दबे–कुचले मानव अपने अधिकारों की माँग को लेकर आगे आ रहे थे. ऐसे लेखन जो इनके पक्ष में थे, उनके प्रतिबंधन में मात्र अंग्रेज शामिल रहे हों ऐसा नहीं लगता. क्योंकि, उनके लिए यह हित में था कि समाज के विभिन्न वर्गों के बीच फूट हो. ऐसे में अपने ही देश के ब्राह्मणवादी व्यवस्था के पैरोकारों के हाथ होने से इनकार नहीं किया जा सकता. इस अध्याय में इसकी चर्चा है.

तीसरा अध्याय प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य और अभिव्यक्ति का सवाल' के अन्तर्गत तीन उप अध्यायों की योजना है. पहले उप अध्याय में ब्रिटिश प्रेस ऐक्ट और आरंभिक हिन्दी पत्रकारिता पर विचार किया गया है और दूसरे उप अध्याय में स्वाधीनता आन्दोलन और साहित्य पर चर्चा है. याद दिलाने की आवश्यकता नहीं कि अभिव्यक्ति की आजादी को नियन्त्रित करने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा तमाम कानून बनाए गए थे. इन कानूनों के तहत उन रचनाओं को जब्त कर लिया जाता था जिनमें आजादी की भावना विद्यमान रहती थी. या ब्रिटिश सरकार के प्रति दुर्भावना परिलक्षित होती थी. इसके अतिरिक्त ऐसी भी रचनाएं जब्त की गई जिनमें देश की बदहाल स्थिति को सामने रखा गया था या फिर जिनमें समाजवादी क्रांति का जिक्र हुआ था. कहने का आशय यह है कि किसी प्रकार की चेतना से अनुप्राणित रचना को सरकार अपने लिए खतरनाक समझती थी. ऐसी रचनाएं जब्त कर ली जाती थी साथ में संपादकों पर भी कठोर कार्रवाई की जाती थी. इस अध्याय में इनका वर्णन–विश्लेषण है. अगले उप अध्याय में रंगमंच, नुक्कड़ सभाओं और उनकी अभिव्यक्ति की चर्चा है. अंग्रेजी हुकूमत ने नाटकों के मंचन और नुक्कड़ सभाओं पर भी प्रतिबंध लगाए थे. दरअसल, जन चेतना में नाटक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे. इन सब पर प्रतिबंध लगाने के लिए अंग्रेजी सरकार 1878 में 'ड्रामैटिक परफारमेंस बिल' पारित कर चुकी थी. इसी योजना के तहत् दीनबंधु मित्र का नाटक 'नीलदर्पण' प्रतिबंधित कर लिया गया था. खाडिलकर का 'कीचक वध' और वृंदावनलाल वर्मा का 'सेनापति ऊदल' भी जब्त कर लिया गया. परिणामस्वरूप नाटकों के नाम बदल कर मंचन होने लगे.

चौथा अध्याय प्रतिबंधित साहित्य में राष्ट्र मुक्ति के सवाल पर केन्द्रित है. इसके पहले उप अध्याय में नवजागरण की चेतना पर विचार किया गया है. सन् 1857 की क्रांति के रूप में सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों में बदलाव की जबर्दस्त आहट सुनाई पड़ी. साम्राज्यवादी ताकतों से देश को मुक्ति दिलाने का ज़ज़्बा जितने जोर–शोर से जन–आन्दोलन में मुखरित हो रहा था, उतना ही साहित्य में भी. गुलाम भारत में साहित्य के भी माध्यम से नवजागरण लाने की कोशिश की जा रही थी. दूसरे उप अध्याय में स्वराज की धारणा पर चर्चा है. प्रतिबंधित साहित्य में सीधे स्वर में स्वराज का समर्थन किया जा रहा था. मौत का भय छोड़ कर आजादी पाने की कामना की गई. गुलामी की जंजीरें असहनीय हो गई थी इसे तोड़ना आवश्यक था.तीसरा उप अध्याय दमनकारी अधिनायकों के प्रतिरोध पर केन्द्रित है. प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य में देश को गुलामी से मुक्ति दिलाने की मांग की जा रही थी.

पाँचवा अध्याय 'प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य और आर्थिक मुक्ति के सवाल' पर केन्द्रित है. इसके पहले उप अध्याय के अन्तर्गत ब्रिटिश राज की आर्थिक नीति, देशी उद्योग और साहित्य पर चर्चा है. दूसरे उप अध्याय में किसानों, मज़दूरों के बदहाल और उनके ऋणग्रस्त जीवन की मुक्ति पर विचार किया गया है. अगले उप अध्याय में स्वराज और भारत की आर्थिक स्थिति को लेकर गांधी जी का क्या रूख था, इस बात की चर्चा है. कहना न होगा कि गांधी जी के कई फैसले किसानों के पक्ष में नहीं थे. उन्होंने जमींदारों का पक्ष लिया और इस बात पर जोर दिया कि किसान लगान अदायगी बंद न करें.

छठां अध्याय 'प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य की भाषा और अभिव्यक्ति का सवाल' में इस बात की पड़ताल की गई है कि भाषा के स्तर पर आखिर क्या कारण थे जिसकी वजह से ये साहित्य जब्त कर लिए जाते थे. इस अध्याय में काव्य–भाषा, कथा–भाषा, नाट्य–भाषा, पत्रकारिता की भाषा और पर्चे–पोस्टर के भाषाई स्वरूप पर अलग–अलग उप अध्यायों के अन्तर्गत विवेवन–विश्लेषण किया गया है.

मेरे शोध निर्देशक प्रो. देवेन्द्र कुमार चौबे ने न केवल विषय निर्वाचन और मार्गदर्शन में मेरी मदद की है, वरन् उन्होंने मुझे इस कार्य को पूरा करने के लिए उचित निर्देशन और वैचारिक स्वतन्त्रता भी प्रदान की. उनके साथ मित्रतापूर्ण माहौल में शोध कार्य करना मेरे लिए बेहद सहज और सरल रहा. मैं अपने शोध निर्देशक की हृदय से आभारी हूँ. शोध लेखन के दौरान डॉ. रश्मि चौधरी मैम का स्नेह मुझे बराबर मिलता रहा, मैं उनकी आभारी हूँ. लेखन के दौरान शोध से संबंधित विषयों पर गुरूवर डॉ0 मैनेजर पाण्डेय के विचारों से मुझे बड़ी मदद मिली. शोध कार्य की सामग्री राष्ट्रीय अभिलेखागार से प्राप्त हुई. इसके अलावा दिल्ली विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, साहित्य अकादमी, दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी, राष्ट्रीय संग्रहालय, जे0 एन0 यू0 लाइब्रेरी आदि से भी सहयोग प्राप्त हुआ. विभाग के अन्य शिक्षक डॉ. गंगासहाय मीणा सर, डॉ. ओमप्रकाश द्विवेदी सर, प्रो. रामबक्ष सर, डॉ. रामचंद्र सर, डॉ. रमण प्रसाद सिन्हा सर और डॉ. गोविन्द सर की भी आभारी हूँ.

यह शोध प्रबंध मेरी माँ श्रीमती शान्ती देवी को समर्पित है. माँ ही मेरा हौसला और मार्गदर्शक दोनों है. इसके अतिरिक्त मैं अपने परिजनों सुधांशु जीजू, मनी दी, भाई आरेश, सासू माँ सावित्री देवी, प्रीती भाभी, बिन्दू मौसी, राजू मौसा की भी अत्यंत आभारी हूँ, जिनका आशीर्वाद मुझे बराबर मिलता रहा. ...अपने अनिल के प्यार और सहयोग के बग़ैर यहां तक पहुँचना असंभव था. मित्रों में सीमा–उज्जवल, पीयूष भैया, विशाल विक्रम, गणपत, मार्तण्ड, बृजेश सर ने कठिन समय में मेरा साथ दिया. इसके अतिरिक्त मैं मनोरमा, मीनाक्षी, अमिष सर, जितेन्द्र, दीनानाथ सर, आलोक,

संदीप जायसवाल, संदीप भैया, राजीव राही की भी आभारी हूँ, जिन्होंने शोध कार्य के दौरान आत्मीय संबंध बनाए रखा और मुझे प्रोत्साहित किया.

मधुलिका बेन पटेल

पहला अध्याय : प्रतिबंधन का अर्थ , इतिहास और साहित्य

1.1 प्रतिबंधन का अर्थ, अधिनियम और मुक्ति के मायने

1.2 औपनिवेशिक भारत में प्रतिबंधन का इतिहास

1.2.1 राजनीतिक

1.2.2 सामाजिक

1.2.3 आर्थिक

1.2.4 धार्मिक एंव सांस्कृतिक

1.3 प्रतिबंधित साहित्य का इतिहास और प्रतिबंधित रचनाएं

1.3.1 भारतीय साहित्य

1.3.2 हिन्दी में प्रतिबंधित साहित्य का इतिहास

1.3.3 हिन्दी की प्रतिबंधित रचनाओं की सूची

पहला अध्याय : प्रतिबंधन का अर्थ, इतिहास और साहित्य

1.1 प्रतिबंधन का अर्थ, अधिनियम और मुक्ति के मायने

प्रतिबन्धन' एक राजनीतिक शब्द है, जिसका इतिहास और समाज के साथ गाढ़ा रिश्ता है. इसका सीधा अर्थ है 'निषेध का फ़रमान'. यह एक प्रशासनिक कार्रवाई है, जिसके द्वारा प्रकाशन, संगठनों, सभाओं आदि को ग़ैर कानूनी घोषित किया जाता है और ऐसा करने पर उसके विरूद्ध दमनात्मक कार्रवाई भी होती है. यही नहीं, व्यक्तियों के भाषण, उनकी यात्राओं आदि पर भी निषेधाज्ञा लागू की जा सकती है. जैसा कि ऊपर कहा गया है कि यह एक प्रशासनिक कार्रवाई है, जिसे व्यवस्था संचालित करती है. व्यवस्था अपने लिए किसी भी प्रकार की चुनौती बन सकने वाली गतिविधियों पर नज़र रखती है, निषेधाज्ञा लागू करती है और उनका दमन करती है. ऐसी गतिविधियाँ हैं– सत्ता की कुनीतियों का खुलासा करना, दुर्व्यवस्था के विरूद्ध जनता को जागरूक करना और अपने हक़ की लड़ाई के लिए उन्हें प्रस्तुत करना इत्यादि. सत्ता किसी भी ऐसी गतिविधियों को स्वीकार नहीं करती जो उसके लिए ख़तरनाक हो. और उसके लिए सबसे अधिक ख़तरनाक है– जनता का अपने हितों के प्रति ज़ागरूक होना. उन पर अंकुश लगाने के लिए तमाम कानूनों और प्रावधानों का निर्माण किया जाता है; इसे ही 'निषेध का फ़रमान' अथवा 'प्रतिबन्धन' कहते हैं.

साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपना वर्चस्व बनाए रखने के उद्देश्य से अनेक ऐसे प्रावधानों का निर्माण किया जिसके तहत उनके लिए चुनौती बन सकने वाली हर गतिविधियों पर नियन्त्रण रखा जा सके. देश को गुलाम बनाए रखने के लिए यह आवश्यक था कि लोगों की स्वातन्त्र्य चेतना को ही मार दिया जाय. सत्ता ने सभाओं, संगठनों, व्यक्तियों के प्रतिनिधित्व , लेखन, भाषणेां, रचनाओं आदि को प्रतिबन्धित किया जो उसके लिए चुनौती साबित हो रहे थे, जिनमें उनके प्रति घृणा, विद्वेष अथवा जनता को उत्तेजित करने, उनमें स्वातन्त्र्य चेतना के विकास का भाव विद्यमान रहता था.

चूँकि साहित्य से स्वातन्त्र्य चेतना के विकास में काफी तेजी आई.जनता को जागरूक करने और गुलामी की जंजीरों को उखाड़ फेंकने के लिए पत्रों, समाचार–पत्रों, पत्रिकाओं पैम्फलेटों और पुस्तकों के माध्यम से लोगों को ललकारा गया. व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर देश के लिए अपनी जान कुर्बान करने का संदेश दिया गया. ऐसे लेखन वास्तव में ब्रिटिश शासन के सामने बहुत बड़ी चुनौती थे. बात जहाँ तक कविताओं की है तो प्रतिबन्धित हिन्दी कविताओं में स्वाधीनता आन्दोलन और तत्कालीन भारतीय जनमानस की सच्ची तस्वीर मिलती है ...ये प्रतिबन्धित कविताएँ

ही थीं जो ब्रिटिश राज की नींव हिला रही थीं [1] इन कविताओं का स्वर एक ओर सत्ता–विरोधी, बेहद तिलमिलाने वाला , आग लगाने और विध्वंस फैलाने वाला था तो दूसरी ओर इनमें शोषण मुक्त , समतामूलक समाज का सपना है, जिससे आम आदमी के हितों की रक्षा हो सके, सत्ता के लिए दोनों स्थितियाँ खतरनाक और कड़ी चुनौती देने वाली थी. अंग्रेजी हुकूमत को यह कतई बर्दाश्त न था, लिहाजा उसने अनेक ऐसे अधिनियम पास किए जिसके तहत इन पर नियन्त्रण रखा जा सके. साहित्य के प्रतिबंधित होने का एक लम्बा इतिहास रहा है. ब्रिटिश सरकार ने साहित्य के सामने अपने आप को इतना कमजोर पाया कि उसके लिए उसे अनेक अधिनियम पास करने पड़े.

अपनी सत्ता बरकरार रखने के लिए ब्रिटिश सरकार ने प्रारम्भ से ही ऐसे कानूनी प्रावधान बनाने शुरु किए जिससे विरूद्ध आने वाली हर वस्तु को नियन्त्रित किया जा सके. उन्होंने समय –समय पर उनमें फेर –बदल किए तथा उन्हें कानूनी, ग़ैरकानूनी दोनों ही तरीकों से नियंत्रण पाने की कोशिश की. प्रतिबंध की रणनीति अंग्रेजों के यहां शुरू से ही थी. हिन्दुस्तान में अपनी सत्ता स्थापित करने के उद्देश्य से सर्वप्रथम सन् 1600 ई. में सर टामस रो ने प्रतिबंध लगााने की सिफारिश की, ''अपना उद्देश्य अच्छी तरह पूरा करने के लिए निजी व्यापार पर पूरी तरह प्रतिबंध लगा दीजिए. ''[2] इस योजना के तहत 1776 ई. में विलियम बोल्ट्स द्वारा शुरु किए गए समाचार पत्र को प्रतिबंधित किया गया. ''सन १७७६ में विलियम बोल्ट्स ने एक प्रेस लगाकर समाचार –पत्र निकालने की घोषणा की थी; परंतु उसे पहले कलकत्ता और फिर मद्रास से यूरोप वापस भेज दिया गया. इसके बाद हिकी ने पत्र निकाला. इसके कारण उस पर जुर्माना हुआ और जेल भी हुई.''[3]

29 जनवरी 1780 में बंगाल से पहला भारतीय समाचार–पत्र 'बंगाल–गजट' का प्रकाशन हुआ. इसके सम्पादक जेम्स ऑगस्टस हिकी थे. 1786 में बंबई के सचिव जेम्स हेडली ने फोर्ट विलियम कलकत्ता के सचिव ब्रुअर को पत्र लिखा कि , ''बंगाल–गजट के मुद्रक को अखबार की एक प्रति नियमित रुप से जल या भूमि मार्ग से भेजे जाने का आदेश दिया जाए.''[4] बहरहाल, ये सारे प्रतिबंध निजी व्यापार के निषेध के रूप में थे. समाचार पत्र जो स्वयं व्यवस्थित नहीं थे, प्रारम्भ में उन पर छिटफुट प्रतिबंध लगाया गया, ''सेंसरशिप पहली बार मद्रास में 1795 में लगा जब 'मद्रास–गजट' को सरकार के सारे आम आदेश प्रकाशन से पूर्व सेना सचिव के समक्ष जांच के लिए प्रस्तुत कर देना अनिवार्य कर दिया गया.''[5] 'भारतीय पत्रकारिता का इतिहास' पुस्तक की भूमिका में जगदीश्वर प्रसाद गुप्त लिखते हैं, '' सन १७९५ में 'मद्रास–गजट' और 'इण्डिया हेराल्ड' नामक पत्र निकले जिसके प्रकाशक हमफ्रेज़ को गिरफ्तार कर इंग्लैण्ड भेजने का प्रयास किया गया.

''[6] इसके कई वर्षों बाद अप्रैल 1799 में एक अधिनियम पास किया गया. इसके तहत सम्पादकों पर अंकुश रखने के लिए उन्हें यूरोप भेजने का प्रावधान बनाया गया.

कहने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दुस्तान में धीरे–धीरे अपनी सत्ता स्थापित करती ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने प्रेस कानून के निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाई. कम्पनी के किसी अधिकारी को यह स्वीकार नहीं था कि ऐसा कोई समाचार–पत्र जिनमें उनके कार्यप्रणाली को लेकर की गई टिप्पणी हो, वह लंदन पहुँचे. इसलिए कुछ नियमों के तहत समस्या उत्पन्न करने वाले सम्पादकों को वापस भेज दिया जाता. अप्रैल 1799 का अधिनियम इसलिए ही तैयार किया गया था. इसके अगले महीने प्रेस अधिनियम लागू हो गया. यह प्रेस अधिनियम तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली द्वारा 13 मई 1799 को पारित कराया गया था. यह अधिनियम मात्र अंग्रेज सम्पादकों के लिए ही नहीं था वरन् इसे खास तौर पर भारतीय सम्पादकों को ध्यान में रखकर तैयार कराया गया था. दरअसल, समस्या उत्पन्न करने वाले अंग्रेज संपादकों को सजा के बतौर यूरोप वापस भेजने का प्रावधान था, लेकिन यही सजा भारतीयों के लिए मुनासिब न थी. लिहाजा, 1799 का प्रेस अधिनियम भारतीय संपादकों पर भी कड़ी नजर रखने वाला तथा उनके लिए सजा का प्रावधान करने वाला साबित हुआ. इस अधिनियम के अनुसार समाचार – पत्र में मुद्रक, संपादक और स्वामी के नाम मुद्रित किया जाना, सभी प्रकाशित सामग्री को सचिव के सम्मुख शपथपूर्वक घोषित करना तथा जांच के लिए प्रस्तुत रहना अनिवार्य कर दिया गया. रविवार को प्रकाशन बन्द कर दिया गया. इसके उल्लंघन की सजा कठोर थी. उल्लंघन करने पर तत्काल देश निकाला अथवा जलावतनी (जल में डूबो कर मार डालना) का दण्ड दिया जाता. प्रतिबन्ध लग जाने से समाचार–पत्रों के प्रकाशन में तेजी न आ सकी. परिणामस्वरुप पुस्तकों और पैम्फलेटों का प्रकाशन होने लगा. 9 अप्रैल 1807 को गवर्नर जनरल के आदेश से प्रेस और सार्वजनिक सभाओं पर कड़ा प्रतिबंध लगा. पैम्फलेटों पर प्रेस का नाम प्रकाशित करना अनिवार्य कर दिया गया. आर. नटराजन अपनी पुस्तक ' भारतीय पत्रकारिता का इतिहास' में इस बात की चर्चा करते हैं कि गवर्नर जनरल लार्ड मिंटो ने इन पैम्फलेटों को उत्तेजना फैलाने वाला मनकर आपत्ति दर्ज की. ''1813 में लार्ड हेस्टिंग्स ने प्रिंटिंग प्रेसों को एक निर्देश के तहत समाचार–पत्रों, परिशिष्टों , अतिरिक्त प्रकाशनों, सामग्रियों, सूचनाओं, हैंडबिलों और दूसरी छिटफुट प्रकाशन सामग्रियों को मुख्य सचिव के समक्ष जांच और पुनर्जांच के लिए प्रस्तुत किया जाना अनिवार्य कर दिया.''[7] 19 अगस्त 1818 में यह अध्यादेश जारी हुआ. 'आलोचना के सौ बरस, भाग–2' में रूस्तम राय भी इस बात की पुष्टि करते हैं. ''लार्ड हेस्टिंग्स ने 1818 ई. में पत्र–पत्रिकाओं और उनके संपादकों के लिए कई मार्गदर्शक सिद्धांतों को बनाया.''[8] इन्हीं नियमों को जान एडम, जो की सरकार के मुख्य प्रतिबंधन अधिकारी के रूप में कार्य

कर चुके थे, उन्होंने 18 दिसम्बर 1823 को 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' की सहमति प्राप्त कर ली. ''इसके तहत बिक्रियों के विज्ञापन, वस्तुओं के मौजूदा मूल्य, विनिमय की दरें या दूसरे व्यापारिक महत्व की सूचनाओं के अतिरिक्त सभी प्रकार के मुद्रण या प्रकाशन के लिए सरकार के मुख्य सचिव द्वारा हस्ताक्षरित गवर्नर जनरल इन कौंसिल से लाइसेंस हासिल करना अनिवार्य कर दिया गया.''[9]

कहने की आवश्यकता नहीं कि लाइसेंस प्राप्त करने के लिए प्रकाशक को अपना नाम व मुद्रक का नाम , निवास का स्थान, संस्थान , पत्र–पत्रिका, रजिस्टर, पैम्फलेटों या अन्य मुद्रित पुस्तकों का शीर्षक देना अनिवार्य था तथा उक्त सूचनाओं में बदलाव लाने पर पुनः नया लाइसेंस प्राप्त करना पड़ता था. बग़ैर लाइसेंस के पत्र–पत्रिकाओं या पुस्तकों के प्रकाशन पर 1000 रू. जुर्माना या इसके बदले 6 माह श्रममुक्त कारावास की सजा का प्रावधान किया गया. इसके अलावा कुछ आपत्तिजनक लगने पर सरकार लाइसेंस रद्द भी कर सकती थी. 1823 ई. में सर जे. एस. बंकिघम को सरकारी नीतियों व प्रेस की स्वतंत्रता हनन मुद्दे पर नाराज होकर देश–निर्वासन का दण्ड दिया गया. बंकिघम 'कलकत्ता जनरल'(1818) के संपादक थे. जुलाई 1824 में सी. जे. फेयर जो 'बंबई–गजट' के संपादक थे, उन पर सुप्रीम कोर्ट कुछ आपत्तिजनक टिप्पणियों के लिए 20 हजार रूपये का मुचलका और 10–10 हजार की दो जमानत का दण्ड दिया गया. दण्ड पूरा करने में असमर्थ होने पर उन्हें निर्वासित कर दिया गया. फिर ''1825 में एक नया कानून बना, जिसके अनुसार किसी भी सरकारी कर्मचारी का समाचार पत्रों सें किसी प्रकार के संबंध को ग़ैर कानूनी घोषित किया गया.''[10] यह आदेश 30 दिसम्बर 1825 को 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' द्वारा जारी की गई थी. यह अध्यादेश बंगाल, बम्बई ओर मद्रास तीनों इकाईयों में जारी किया गया. आगे चलकर यह अधिनियम महज सीमित क्षेत्र में न लागू होकर सारे देश में लागू हो गया. 1835 में कुछेक उदारवादी अंग्रेजों की नीतियों के चलते भारतीय पत्रकारिता को थोड़ी बहुत छूट मिली पर यह ज्यादा दिन टिक न सकी. ''1835 में एक नया अधिनियम बना , जिसे 'मेटकाफ एक्ट' कहा गया. हालांकि लार्ड विलियम बेंटिक और मेटकाफ की उदार नीतियों के कारण भारतीय पत्रकारिता को राहत तो जरुर मिली , लेकिन वह बहुत दिनों तक बरकरार न रह सकी.''[11]

1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम ने अंग्रेजों के होश उड़ा दिए. इस दौरान नियम और भी अधिक सख्त हो गए और अखबारों, पुस्तकों आदि के विवरण पर भी रोक लगा दी गई. नियमों के अनुसार, '' ऐसे किसी भी प्रेस से किसी पुस्तक , पर्चा, अखबार या अन्य सामग्री मुद्रित नहीं होगी , जो या तो इंग्लैण्ड या भारत के ब्रिटिश शासन के खिलाफ षणयन्त्र वाला हो, जिसके दृष्टांत या बयान से विरोध का आभास होता हो या इस सरकार के खिलाफ घृणा भावना फैलाए या ग़ैरकानूनी

प्रतिरोध उत्पन्न कर उसकी अवमानना करे या उसके कानूनी संस्था या असैनिक या सैनिक कर्मचारियों के कानूनी अधिकार को कमजोर करे.''[12]

सन् 1860 में प्रेस अधिनियम और भारतीय दण्ड संहिता को साथ जोड़ दिया गया. 1867 ई. में 'प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक्स एक्ट' लागू हो गया. इसके अनुसार प्रकाशित सामग्री की एक प्रति एक महीने के भीतर सरकार को सौपनी थी. प्रतिबंधन कानून में और भी अधिक नियम सिलसिलेवार जुड़ते गए. लार्ड मेयो के शासन काल (1869) में भारतीय दण्ड संहिता में संशोधन प्रस्ताव पारित किया गया. जिसके अनुसार बोले गए या लिखे गये शब्दों या संकेतों द्वारा भड़काने वाले प्रसारणों पर प्रतिबंध लगा दिया गया. प्रतिबंधन कानून में 1870 ई. में लारेन्स द्वारा धारा 124 ए जोड़ दिया गया. इसके तहत राजद्रोह फैलाने वाले व्यक्तियों को आजीवन या कुछ कम समय तक के लिए निर्वासन या जुर्माने का प्रावधान किया गया.

प्रतिबंधन कानून लगातार पहले से अधिक कड़ाई से लागू होते रहे. आने वाले दिनों में इसमें नई धाराएं, उप धाराएं जोड़ी गई.. '' सन् 1873 ई. में ले. गवर्नर जार्ज कैम्पवेल ने सरकार को यह सलाह दी कि जल्द ही ऐसा कानून बनाया जाय, जिससे कि सरकार विरोधी लेखन के लिए बिना मुकद्दमा चलाये दण्ड दिया जा सके. इसी समय लार्ड सैलिसबरी ने रिपोर्ट दी कि देसी भाषाओं में बहुत ऐसे लेखक छपते हैं, जिनमें सरकार के प्रति न केवल घृणा उत्पन्न की जाती है, बल्कि अंग्रेज अफ़सरों की हत्याओं को भी सही घोषित किया जाता है. परिणामस्वरूप कुछ ही वर्षों बाद प्रेस अधिनियम से संबंधित भारतीय दण्ड संहिता की धाराओं में 153 ए तथा 153 बी दो नई उपधाराएं जोड़ी गई, जिसके अनुसार कम्पनी राज के हितों को खतरा पहुंचाने वाले लेखन को दण्डनीय घोषित किया गया.''[13]

सन् 1876 ई. में लार्ड लिटन भारत के वायसराय बने. दो वर्षें के बाद 1878 ई. में प्रेस पर सबसे कड़ा प्रतिबंध लगा और 'प्राच्य भाषा उत्तमता नियंत्रण कानून' अर्थात् 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' पारित किया गया. इसके अनुसार बग़ैर न्यायालय के आदेश के ही लेखक, प्रकाशक के नाम वारंट जारी हो सकता था. प्रकाशकों एवं मुद्रकों की मशीनों को भी जब्त करने का अधिकार प्राप्त हो गया था. इस अधिनियम के अनुसार समाचार पत्र के अतिरिक्त किसी भी प्रकाशित पुस्तक या अन्य सामग्रियों को भी जब्त किया जा सकता था. इसके अलावा इस अधिनियम की सबसे खतरनाक बात यह थी कि इसके खिलाफ न्यायालय में अपील भी नहीं की जा सकती थी.

प्रतिबंध का सिलसिला थमने का नाम नहीं ले रहा था. भारत में दिन–ब–दिन तेज होती स्वतंत्रता की प्रखर चेतना से बौखलाई ब्रिटिश हुकूमत ने 25 जून 1891 ई. में एक नया नियम जारी किया. यह नियम उन हिस्सों पर लागू होता था, जो उनके कब्जे में नहीं थे, अर्थात् देसी रियासतों में भी स्वतंत्र प्रेस प्रतिबंधित हो गया. सन् 1898 ई. में धारा 124 ए पुनः स्थापित एवं विस्तृत होने के साथ उसमें 153 ए भी जोड़ा गया. इसके पश्चात् ''लार्ड कर्जन ने 1908 ई. में 'समाचार–पत्र अधिनियम' एवं ''इन्साइटमेंट आफेन्स एक्ट' लागू किया''.[14] 1910 ई. में 'भारतीय मुद्रणलाय अधिनियम' पास हुआ. प्रतिबंध के सिलसिले को आगे बढ़ाते हुए 1911 ई. में 'राजद्रोहात्मक सभा प्रतिबंध कानून' जारी हुआ. इसी कड़ी में सितम्बर 1922 में पास होने वाला 'प्रेस प्रोटेक्शन बिल' के तहत् स्वतंत्रता की भावना को प्रचारित करने वाली सामग्री के प्रचार–प्रसार को भी वर्जित कर दिया गया. 1930 ई. में 'भारतीय प्रेस अध्यादेश' जारी हुआ. इसके अनुसार , जमानत वसूल की राशि एक हजार से 10 हजार तक हो गई और बग़ैर सूचना के ही छापे मारे जा सकते थे. ''1932 ई. में समाचार–पत्रों से जुड़ा एक अधिनियम पास हुआ, जिसके अनुसार यदि किसी लेख या पुस्तक से मित्र – देशों के संबंधों पर बुरा असर पड़ता हो तो उसे राजद्रोहात्मक माना जा सकता था. 1939 ई. में 'भारत सुरक्षा अधिनियम 1939' पास कर अंग्रेजी सरकार ने प्रेस को अगले छह वर्षों के लिए अपने नियंत्रण में कर लिया. सन् 1947 तक अंग्रेजी सरकार प्रेस कानूनों मे परिवर्तन करती रही.''[15]

लोगों में आजादी की लड़ाई को आगे बढ़ाने का दृढ़ संकल्प जाग उठा था. एक ओर जनता की उठी हुई आवाज दबाने के लिए अंग्रेजी सरकार जितने बिल पास करती , दूसरी ओर लोग उसकी धज्जियां उड़ाते. मुक्ति–संघर्ष ही अन्तिम लक्ष्य था. गुलामी के खिलाफ क्रान्ति की उठती लहर ने सबको लपेट में ले लिया था. हिन्दुतान की ऐसी स्थिति देख कर लोगों को विश्वास हो चला था कि अंग्रेजी हुकूमत अब ज्यादा दिन उसे गुलाम बनाए नहीं रख सकती. शायद यही वजह थी कि रूस के महान क्रान्ति के जनक ब्लादिमिर लेनिन को कहना पड़ा, ''अब हिन्दुस्तान से अंग्रेज साम्राज्यवादियों का जनाजा उठ चला.''[16]

मुक्ति की इस लहर में हर जाति, हर वर्ग–समूहों ने योगदान दिया था. जनता एक हो चुकी थी. सभी अपने–अपने तरीके से विरोध करते थे और कुरबान होने को खेल समझते थे. 19 नवम्बर 1915 को फांसी पर लटकाए जा रहे कर्तार सिंह ने कहा, ''यदि मुझे और भी कई जन्म मिले, तो उन सबको भी अपने देश की स्वतंत्रता पर बलि चढ़ा दूंगा.''[17] मुक्ति की आकांक्षा इंकलाब की बुनियाद पर टिकी थी. प्राणों की बाजी लगाने वाले स्वदेशी – भक्तों में बालक, वृद्ध, स्त्रियां, नौजवान सब थे. यह लड़ाई अलग–अलग वर्गों द्वारा अपने–अपने तरीकों से लड़े जाने के बावजूद

देश की आजादी के लिए एकमत था. छोटे–बड़े हर संघर्षों से विदेशी सत्ता के साथ–साथ अपने देश में पनपे तमाम विसंगतियों व शोषणकारी प्रथाओं , नियमों पर भी खुल कर चोट की जा रही थी. राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व धार्मिक सभी तरह की मुक्ति की अकांक्षा उभरी थी. इस मुक्ति का संदर्भ एक ओर अंग्रेजी सत्ता से मुक्त होने को लेकर था. दूसरी ओर सदियों से देश में जड़ जमाए रूढ़ियों, परंपराओं से, जिन्हें अभी भी कुछ लोग बरकरार रखना चाहते थे. ऐसे ही बंधनों के खिलाफ संग्राम में किसान, मजदूर, स्त्रियां, बुनकर, सैनिक सब उतर पड़े थे.

1.2 औपनिवेशिक भारत में प्रतिबंधन का इतिहास

हिंदुस्तान में अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए साम्राज्यवादी शक्तियों ने दमन की सारी हदें पार कर दी थी. लोगों के हुजूम सरेआम घोड़ों की टापों से कुचले जाते तो दूसरी ओर तोपों के मुंह पर दस–दस की संख्या में बांध कर लोगों के चिथड़े बना दिये जाते. अत्याचार की सीमा में अंग्रेज नादिरशाही आतंक से भी आगे निकल गए. एक ओर दमन का प्रत्यक्ष खेल जारी था , तो दूसरी ओर कूटनीति का. छल–बल दोनों का प्रयोग कर इन शक्तियों ने हिंदुस्तान को उजाड़ डाला. उन्होंने प्रतिबंध के तमाम कानून बनाए जिससे लोगों की आवाज खामोश की जा सके. इन कानूनों के कई रुप थे. जीवन के हर क्षेत्र राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक सब पर उनका पहरा था. हर ओर बंदिशें थीं. उल्लंघन करने पर दण्ड का प्रावधान था. अपने ही देश में बाहर से आए लोगों ने देशवासियों को कैद कर लिया था. शोषण की पराकाष्ठा थी. लोग मरते दम तक शोषित किए जाते. एक ओर बंदिशों का खेल चल रहा था तो दूसरी ओर इनके खिलाफ नई चेतना का भी जन्म हो रहा था. दोनों के बीच संघर्ष जारी थे.

1.2.1 राजनीतिक

भारत में अंग्रेजों का आगमन व्यापारी की हैसियत से हुआ था. पर धीरे–धीरे कोठियों से की गई शुरुआत समग्र हिंदुस्तान को हस्तगत करने तक आ पहुँची. उस समय मुगल साम्राज्य पतन के कागार पर था. पूरा भारत छोटे–छोटे राज्यों में बंटा हुआ था. राजाओं के आपसी झगड़े और व्यक्तिगत स्वार्थ ने उन्हें अति सीमित कर दिया था. कूटनीति और दमन का सहारा लेकर अंग्रेज अपनी सत्ता को आगे बढ़ाने में कामयाब रहे. प्लासी और बक्सर के युद्ध से अंग्रेजों की स्थिति काफी सुदृढ़ हो गई थी. अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने भारतीय राजाओं से सीधी टक्कर न लेकर उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करते थे तथा उनके आपसी फूट का फायदा उठा कर अपनी राह आसान कर लेते. साम्राज्य विस्तार के लिए अंग्रेजों ने कई चालें चली. उन्होंने ऐसी कई

नीतियां तैयार की जिनकी बदौलत एक के बाद एक राज्यों को अधीकृत किया जा सके. भारतीय राजाओं के साथ की गई संधियों में ऐसी नीतियों का प्रयोग किया गया था जिसके सहारे उसका बल क्षीण कर धीरे–धीरे उन्हें हस्तगत कर लिया जाता. लॉर्ड वेलेजली की 'सहायक संधि' एक ऐसी ही सोची समझी नीति थी जिसने भारतीय राज्यों को मित्रता और सुरक्षा का आभास देकर उन्हें अपने अधीन रखने का काम किया. सर जॉन शोर के पश्चात् 26 अप्रैल 1798 ई. में लॉर्ड वेलेजली भारत का गवर्नर जनरल बना. साम्राज्य के विस्तार के लिए उसने 'सहायक–संधि' की घोषणा की. 'पलासी से विभाजन तक' पुस्तक में शेखर बंधोपाध्याय लिखते हैं ,''लंदन की चिंताओं को शांत करने के लिए उसने 'सहायक संधि (Subsidiary Alliance) की नीति विकसित की, जो साम्राज्य पर सीधे–सीधे कोई बोझ डाले बिना किसी भारतीय राज्य के आंतरिक मामलों पर कंपनी का नियंत्रण स्थापित करे.''[18] इसके अनुसार भारतीय राज्यों को मित्रता के लिए आमंत्रित किया गया. चूंकि उस समय तक भारतीय राज्य आपसी झगड़ों में उलझे हुए थे. कुछ ने अपनी शक्ति बढ़ाने और अपनी सुरक्षा के उद्देश्य से कंपनी की 'सहायक–संधि' स्वीकार की और कुछ ने पराजय की विवशता के फलस्वरुप. कारण चाहे जो भी रहा हो, 'सहायक–संधि' स्वीकार करने वाले राज्य कुछ समय पश्चात् कंपनी राज्य में मिला लिए गए. इस नीति के अनुसार भारतीय शासकों को अपने राज्य में अंग्रेजी सेना रखनी पड़ती थी इस सेना का खर्च राज्य को देना पड़ता था तथा अपने दरबार में एक अंग्रेज रेजीडेंट रखना पड़ता था. इसके अलावा अपने यहां अन्य यूरोपियन को नौकरी पर नहीं रख सकते थे और न ही अंग्रेजों की स्वीकृति के बग़ैर किसी दूसरे राज्य से संधि कर सकते थे. इसके बदले में अंग्रेजों से उन्हें सुरक्षा का आश्वासन प्राप्त होता था. इन नीतियों के फलस्वरुप भारतीय राज्य बड़ी तेजी से खोखले होते जा रहे थे. सुरक्षा के आश्वासन के बदले 'सहायक–संधि' उन्हें खा गई.

इसे स्वीकार करने वाला प्रथम राज्य हैदराबाद था. 1798 ई. में हैदराबाद के निजाम ने कंपनी सरकार से यह संधि की. परिणामस्वरुप अंग्रेजों की 6 बटालियन सेना और एक अंग्रेज रेजीडेंट अपने दरबार में रखना पड़ा.24 लाख 17 हजार वार्षिक व्यय अंग्रेजों को देने पड़े और यह राज्य कंपनी के संरक्षण में आ गया साथ ही उसकी स्वतंत्रता भी आधी हो गई. इसके बाद इस संधि को अवध ने स्वीकार किया. इसने निजाम की भांति स्वेच्छा से इसे स्वीकार नहीं किया. अंग्रेजों के दबाव के फलस्वरुप 1801 ई. में इसे भी हस्ताक्षर करने पड़े तथा कंपनी को सेना के बदले रुहेलखण्ड, गोरखपुर व गंगा–जमुना के बीच का प्रदेश देना पड़ा. इसी प्रकार बड़ौदा के मराठा शासक गायकवाड़ की शक्ति कम थी. विवश होकर इसे भी स्वीकार करना पड़ा. चतुर्थ मैसूर युद्ध में टीपू सुल्तान की मृत्यु के पश्चात् राजकुमार कृष्णराज को राजा बना कर 1799 ई. में उससे

सहायक–संधि कर ली गई. ''1799 में मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टम पर कंपनी का अधिकार हो गया, जबकि उसकी रक्षा करते हुए टीपू मारा गया. मैसूर को, जिसे एक बार फिर पहले के वाडियार वंश को सौंप दिया गया, लॉर्ड वेलेजली की सहायक संधि की व्यवस्था में शामिल कर लिया गया. इसका अर्थ स्वतंत्र मैसूर राज्य की समाप्ति था. इस व्यवस्था के अंतर्गत वह दूसरी यूरोपीय शक्तियों से कोई संबंध नहीं रख सकता था, कम्पनी की सेना का एक दस्ता मैसूर में रखा जाना था, और मैसूर के खजाने से ही उसके रखरखाव का प्रबंध किया जाना था. मैसूर के इलाके का एक भाग निज़ाम को दे दिया गया, जो पहले ही 'सहायक संधि' को स्वीकार कर चुका था, जबकि वायनाड, कोयंबटूर, कनाड़ा और सुंडा जैसे भागों को कंपनी ने सीधे अपने अधिकार में ले लिया.''[19] मैसूर के अलावा पेशवा ने भी इसे स्वीकार कर लिया. ''होलकर की सेना ने जब अक्टूबर 1802 में पेशवा की सेना को हराया और पूना को लूटा, तो पेशवा भाग कर अंग्रेज़ों के पास बसाई चला गया और उसे 1803 में एक सहायक संधि पर हस्ताक्षर के लिए विवश कर दिया गया, जबकि पेशवा ने एक अंग्रेज़ सेना का खर्च उठाने तथा अपने दरबार में नियुक्त अंग्रेज़ रेज़िडेंट से सलाह मशविरा करते रहना स्वीकार कर लिया. 1803 में देवगांव की संधि से रघु जी भोंसला, 1803 ई. में सुर्नी अर्जुन गांव की संधि से सन्धिया ने सहायक संधि स्वीकार की, किन्तु सिंधिया व भोंसले मराठा सरदारों ने अंग्रेजी सेना रखना स्वीकार नहीं किया. सहायक संधि को जोधपुर, जयपुर, बूंदी , भरतपुर आदि राज्यों ने भी स्वीकार कर लिया. ''राजपूत राज्यों , जाटों , रोहिल्लों और उत्तरी मालवा के बुंदेलों पर अधीनता की संधियां लादी गईं. उड़ीसा को नियंत्रण में ले लिया गया.''[20] यह नीति दक्षिण भारत में भी लागू थी. 'आधुनिक भारत के निर्माता' पुस्तक में वी. के. नरसिंहन लिखते हैं, ''17 वी. शताब्दी के अंत तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने धीरे–धीरे दक्षिण भारत पर अपना प्रभुत्व कायम करना प्रारम्भ कर दिया था. 1798 ई. में अंग्रेजों की सहायता से राजा सरफोजी तन्जौर की गद्दी पर बैठा. उसने अंग्रेजों के साथ एक समझौता किया और अंग्रेजों को अपना राज्य समर्पित कर दिया. केवल तन्जौर का किला उसके पास रह गया. और उसने स्थाई रुप से अंग्रेजों को वार्षिक कर देने का अनुबंध कर लिया. अंग्रेजों ने राजस्व और विधि संबंधी मामलों को अपने अधिकार में ले लिया. ''[21] यही नहीं, अंग्रेजों व बर्मा के मध्य होने वाली यांडबू की संधि के फलस्वरुप 24 फरवरी 1825 ई. में अराकान, मनीपुर, आसाम, कोचर आदि अंग्रेजों को मिले, एक अंग्रेज रेजिडेंट आवा दरबार में रख दिया गया. इस प्रकार इस नियम के तहत् भारत के बड़े भू–भाग पर कंपनी सरकार का कब्जा हो गया. यह दरअसल, एक राजनैतिक प्रतिबंध था जिसने भारतीय राज्यों को जकड़ कर बांध लिया. ऐसे अनेक प्रतिबंधन के नियम लागू किये जाते रहे जिनमें भारत की पराधीनता लिखी हुई थी.

भारतीय राज्यों को अपने कब्जे में लाने के लिए एक और नया नियम लाया गया. लॉर्ड डलहौजी द्वारा राज्य हड़पने की नीति के फलस्वरुप 'गोद–निषेध' का नियम बनाया गया. इस नियम के तहत् भारतीय राजा निसंतान होने पर किसी बालक को गोद नहीं ले सकता था. अब तक भारतीय राज्यों में एक परंपरा चली आ रही थी, जिन राजाओं के संतान नहीं होती थी, वे अपने किसी सगे–संबंधी के बच्चों को गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी घोषित कर देते थे. इस नियम के आ जाने से गोद लेने की स्वतंत्रता छिन गई. सन्तानहीन राजाओं की मृत्यु के बाद उनका राज्य कंपनी राज में मिला लिया जाता. जिन राज्यों ने अंग्रेजों के इस नियम के विरुद्ध गोद लेने की कोशिश की उन्हें अंग्रेजी सरकार से युद्ध करना पड़ा. इस नियम के कारण अनके राज्यों को ब्रिटिश सरकार ने हस्तगत कर लिया. ''कंपनी के राज में प्रसारवादी प्रवृत्तियां लॉर्ड डलहौजी के काल (1848–56) में ही सबसे स्पष्ट हुईं. उसके 'विलय सिद्धांत'(Doctrin of laps) का अर्थ एक नर उत्तराधिकारी को जन्म दिए बिना मरने वाले भारतीय शासकों के इलाकों का अधिग्रहण था. इस सिद्धांत के सहारे उसने सतारा (1848),संभलपुर और बगहट (1850), उदयपुर (1852), नागपुर (1853) और झांसी (1854) पर अधिकार किया.''[22] सन् 1848 ई. सतारा के राजा की मृत्यु के पश्चात् गोद लिए हुए बालक को डलहौजी ने उत्तराधिकारी मानने से इनकार कर दिया. सतारा कम्पनी राज में मिला लिया गया. 1853 ई. में राजा राधोजी, जो नागपुर के शासक थे के निसंतान स्वर्गवास होने से नागपुर भी अधीकृत कर लिया गया. 1850 ई. में संभलपुर भी इनकी इसी नीति का शिकार बना. यह उड़ीसा का राज्य था. इस पर पहले भोंसला का प्रभुत्व था. राजा निसंतान थे और उन्होंने किसी को गोद नहीं लिया. परिणामस्वरुप डलहौजी ने उसे कंपनी राज में मिला लिया. बुंदेलखण्ड में स्थित जैतपुर राज्य 1849 ई. में कम्पनी के अधीन हो गया. पंजाब के पहाड़ी प्रदेश में स्थित राज्य बघात भी 'गोद–निषेध' नीति का शिकार हुआ. 1852 ई. में उदयपुर भी राजा के निसंतान होने पर कंपनी राज का हिस्सा बन गया. इसी प्रकार 1853 ई. में झांसी के राजा गंगाधर राव के निसंतान मृत्यु के पश्चात् रानी लक्ष्मीबाई ने दामोदर राव को गोद लिया. डलहौजी ने उत्तराधिकारी को अवैध घोषित कर झांसी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी. झांसी पर 1854 में अंग्रेजों का कब्जा हो गया. डलहौजी की इस निषेध नीति से उसके साम्राज्य का और अधिक विस्तार हुआ. यह नियम सिर्फ राजाओं पर ही नहीं लागू हुआ वरन् जमींदारों पर भी इस नीति का प्रयोग कर उनकी जागीरें छीन ली गई. बम्बई के ईनाम कमीशन ने लगभग 20,000 जागीरों का अपहरण किया.

अंग्रेजों ने सर्वोच्चता की नई नीति आरंभ की. इसका उद्देश्य देशी राजाओं का अधिकार समाप्त करना था. ''अहस्तक्षेप की नीति अपनाने का सुस्पष्ट निर्देश देकर लॉर्ड कार्नवालिस को फिर से भारत का गवर्नर जनरल बनाया गया. इसके कारण होलकर और सिंधिया जैसे मराठा सरदारों को

अपनी खोई हुई शक्ति को एक सीमा तक फिर से पाने का अवसर दिया, जबकि उनके अनियमित सैनिक जिनको पिंडारी कहा जाता था, मालवा और राजस्थान के गांवों को लूटने लगे. यह स्थिति कुछ समय तक 1813 में लॉर्ड हेस्टिंग्सज के गवर्नर जनरल बन कर आने तक जारी रही. उसने सर्वोच्चता की नई नीति आरंभ की , जिसमें भारत को दूसरी शक्तियों के हितों पर , सर्वोच्च शक्ति के रुप में, कम्पनी के हितों को वरीयता दी गई ओर अपने हितों की रक्षा के लिए कंपनी किसी भी भारतीय राज्य का वैधता के साथ अधिग्रहण कर सकती थी या अधिग्रहण करने की धमकी दे सकती थी.''[23]

भारतीय राज्यों की घरेलू सत्ता होते हुए भी उनकी स्वतंत्रता का कोई महत्व न था. कंपनी सरकार प्रमुख थी जिसके आदेश देशी राज्यों की सीमाओं से परे रहकर भी महत्वपूर्ण बदलाव करने में समर्थ थी. दरबार में उपस्थित रेज़िडेंट ही कंपनी राज और देशी राज्यों के राजनीतिक संबंधों का संचालन करने लगे. ''रेज़िडेंसी व्यवस्था का अर्थ प्रभुसत्ता की पुनर्परिभाषा था, जो 'सर्वोच्चता'(Paramountcy) की नई शब्दावली में निहित थी. इसके अनुसार भारतीय राज्यों की ''घरेलू प्रभुसत्ता'' बनी रहने दी गई, लेकिन उनकी सीमाओं से परे सर्वोच्च साम्राज्यिक शक्ति के रुप में कंपनी की प्रभुसत्ता थी.''[24]

देशी राजाओं पर कम्पनी का वर्चस्व दिन–ब–दिन बढ़ता जा रहा था. वे अब तोपों की सलामी नहीं ले सकते थे. उनके राज्यों से होकर गुजरने वाली रेल मार्गों का खर्च उन्हें ही उठाना पड़ता. उन्हें भी अपने राज्य में ब्रिटिश मुद्राओं को स्वीकार करना पड़ा. ''प्रहार की व्यवस्था बनाए रखने के लिए छोटे राजाओं को इस शाही सम्मान से पूरी तरह वंचित कर दिया गया. दूसरी ओर, 1878–86 के बीच, रजवाड़ों को सुव्यवस्थित हस्तक्षेप और अपनी घरेलू प्रभुसत्ता का सिमटाव झेलना पड़ा. उनको अपने क्षेत्र के अंदर रेलमार्गों और संचार की दूसरी व्यवस्थाओं पर इनके निर्माण का खर्च उठाने के बावजूद नियंत्रण छोड़ना पड़ा, ब्रिटिश भारत के दूसरे भागों को नमक के निर्यात से दूर रहना पड़ा और लीगल टेंडर (विधिमान्य चलार्थ) के रुप में ब्रिटिश भारत की मुद्राओं को स्वीकार करना पड़ा. ''[25]

भारतीय राज्यों पर साम्राज्यवादी शक्तियों का नियंत्रण लगातार बढ़ रहे थे. उनके राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न अंग बताया जाता तथा उनकी विदेश यात्राओं पर प्रतिबंध लगा दिया गया. संधियों के लिए उन पर दबाव डाला जाना आम बात सी हो गई थी. ''लॉर्ड कर्जन (1898–1905) के शासन काल में यह हस्तक्षेप अपने चरम तक पहुँच गया. एक ओर उसने राजाओं को साम्राज्य

के संगठन का अभिन्न अंग स्वीकार किया और 1903 में शानदार सत्तारोहण कर दरबार में उनको पूरे सम्मान के साथ निमंत्रित किया लेकिन , दूसरी ओर उसने उन पर और भी सख्त नियंत्रण लगा दिए. 1900 में उसने उनकी विदेश यात्रा पर रोक लगा दी; 1902 में उसने बरार के प्रशासन के विषय में निज़ाम हैदराबाद पर और भी अनुकूल संधि करने के लिए दबाव डाला; उसने राजाओं को शाही फ़ौजों के लिए और अधिक रकम देने पर मज़बूर किया; अनेक राजाओं को सत्ता से हटाया और तिरसठ रजवाड़ों को अस्थाई रुप से ब्रिटिश प्रशासन में ले लिया.''[26] ब्रिटिश सरकार का राजाओं पर पूरा नियंत्रण हो गया था. उनके सारे संबंध ब्रिटिश सरकार की इच्छा या अनिच्छा पर निर्भर था. उन्हें ब्रिटिश फौजों का खर्च उठाना पड़ता था इसके अलावा वे अन्य किसी यूरोपियन को अपने यहाँ नौकरी पर भी नहीं रख सकते थे. ''पहले तो कंपनी और फिर सम्राट और द्वारा अधिराज के रुप में मान्यता प्राप्त सभी राजाओं ने किसी और राज्य के साथ कूटनीतिक संबंध बनाने या युद्ध करने के अधिकार का तथा किसी और यूरोपीयन या अमेरिकी को सेवक रखने के अधिकार का त्याग किया; बाहरी दुनियां के साथ अपने सभी संपर्क ब्रिटिश एजेंटों के जरिए बनाने, शाही फ़ौजों के एक दस्ते का खर्च उठाने और साम्राज्य की रक्षा के लिए सैन्य सहायतता की आवश्यकता पड़ने पर सेना भेजने की हामी भरी. उनको अपने क्षेत्रों से जाने वाले रेलमार्गों पर अपनी प्रभुसत्ता छोड़नी पड़ी, तथा डाक–तार और संचार की दूसरी व्यवस्थाओं पर ब्रिटिश राज के साथ नियंत्रण में साझेदारी करनी पड़ी.''[27]

रेजिडेंटों की उपस्थिति राजाओं की स्वतंत्रता छीन लेती थी. वे उनके बाहरी व आन्तरिक दोनों मामलों में हस्तक्षेप करते थे. ''बड़े राज्यों के मामलों में रेजिडेंटों की और छोटे राज्यों के मामलों में गवर्नर जनरल के राजनीतिक एजेंटों की दबंग उपस्थिति व्यवहार में राजाओं की आंतरिक स्वतंत्रता पर गंभीर सीमाएं लगाती थी. ''[28] भारतवासियों की स्वतंत्रता तेजी से छिनती जा रही थी. आने वाले हर दिन अधिक कठिन होता जा रहा था. साम्राज्यवादी शक्तियों की बनाई व्यवस्था में अगर कभी–कभी भारतीयों को शामिल किया जाता तो वे निर्णय देने की अवस्था में नहीं होते थे. ''1861 के इंडियन काउंसिल्स एक्ट ने गवर्नर जनरल की काउंसिल में ग़ैर सरकारी भारतीय सदस्यों की एक बहुत सीमित संख्या के शामिल किए जाने की व्यवस्था की लेकिन गनर्वर जनरल की पूर्व–अनुमति के बिना वे कोई विधेयक पेश नहीं कर सकते थे.''[29] यही नहीं, भारतीय सिविल सेवा से हिंदुस्तानियों को दूर रखा गया. वे किसी उच्च पद पर नियुक्त नहीं किए जाते. ''इस सेवा से भारतीयों को सावधानी के साथ दूर रखा गया, क्योंकि 500 पाउंड या इससे अधिक सलाना वेतन वाले किसी भी पद पर उनको नहीं रखा जाता था.''[30] आगे शेखर बंधोपाध्याय लिखते हैं , ''आश्चर्य नहीं कि इस प्रशासनिक ढाँचे में भारतीयों को लिया भी गया तो निचले पदों पर ही लिया गया,

जिनको असंहिताबद्ध (Uncovenanted civil service) कहा जाता था.''[31] भारतीयों के अथक प्रयत्नों के बाद उन्हें सिविल परीक्षा में बैठने का अधिकार तो मिला लेकिन उम्र की बाध्यता लगा उन्हें इस क्षेत्र से वंचित रखने का प्रबंध भी कर दिया गया. ''1870 के दशक के नगरपालिका सुधार, जिनमें सीमित चुनाव के सिद्धांत को जगह दी गई थी, पढ़े–लिखे भारतीयों को दी गई रियायत थे. लकिन, शीघ्र ही, 1870 में इसकी काट भी कर दी गई, जब इण्डियन सिविल सर्विस परीक्षा में बैठने के लिए अधिकतम आयु 21 साल से घटा कर 19 साल कर दी गई.''[32]

हिंदुस्तान को उपनिवेश बनाए रखने के लिए नित नए प्रतिबंध बने. 1899 ई. में लॉर्ड कर्जन के शासन काल में कलकत्ता कॉरपोरेशन अधिनियम पारित किया गया जिससे स्थानीय स्वशासन पर प्रतिबंध लगाया जा सके. प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व ब्रिटिश सरकार ने वादा किया था कि युद्ध में विजयी होने के बाद वह हिंदुस्तान को आजाद कर देगी , लेकिन युद्ध समाप्त होने पर उसने अपना दमन चक्र तेज कर दिया. इसी कड़ी में रौलट एक्ट पारित किया गया. दिसम्बर 1917 ई. में ब्रिटिश सरकार आन्दोलन को दबाने के लिए जस्टिस सर सिडनी रौलेट की अध्यक्षता में एक समिति बनाई गई. हिंदुस्तान में उभरे जनांदोलन का दमन करने के लिए यह कानून बनाया गया. ब्रिटिश हुकूमत पूरी शक्ति से अपने विपक्षियों को नियंत्रण में रखने के लिए कानून पास कर रही थी. ''इनमें से पहले दो 'इण्डियन क्रिमिनल लॉ (एमेंडमेंट बिल) और 'दि इण्डियन क्रिमिनल (एमरजंसी पावर्स) बिल रौलेट विल्सन के नाम से जाने जाते थे, उन्हें जनवरी 1919 के इम्पिरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल में पेश किया गया था.''[33] इसकी भयंकरता की चर्चा करते हुए कस्तूरी रंगा आयंगर ने मद्रास में इसका विरोध करते हुए कहा, '' सरकार द्वारा देश में ऐसे कानून को लागू करना बहुत ही दुखपूर्ण है जिससे भारत के नागरिकों के मूल अधिकारों का हनन होता हो. यह बहुत प्रिय भारतीयों के दिमाग में क्रोध और विरोध उत्पन्न कर सकता है....जैसे ही गवर्नर जनरल इन काउंसिल किसी क्षेत्र में यह कानून लागू करेंगे, मनमानी गिरफ्तारियां , मनमानी कैदें तथा गुनाहों के लिए गुप्त मुकदमें तथा अन्य प्रकार की कानूनी जबर्दस्तियां होनी शुरु हो जाएंगी. सरकार अपनी मर्जी से किसी भी व्यक्ति से उसके अच्छे आचरण के लिए जमानत मांग सकेगी. कोई भी कार्रवाई कानून के दायरे में नहीं आएगी तथा न उन पर किसी प्रकार की सुनवाई होगी और न ही संशोधन किया जा सकेगा.''[34] 'आधुनिक भारत' में सुमित सरकार लिखते हैं, '' तथाकथित रौलेट एक्ट (जिसमें 1918 में जस्टिस रौलेट की अध्यक्षता में स्थापित सेडीशन कमेटी की कुछेक सिफारिशें सम्मिलित थीं) 6 फरवरी और 18 मार्च 1919 के बीच तमाम गैर सरकारी भारतीय सदस्यों के एकजुट विरोध के बावजूद इंपीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल में शीघ्रता से स्वीकार कर लिया गया. यह कानून विशेष न्यायालयों की और (राजद्रोहात्मक घोषित की गई

सामग्री रखने मात्र पर भी) किसी को बिना मुकदमा चलाए दो वर्षों तक बंदी रखने की व्यवस्था के द्वारा युद्ध काल में नागरिक अधिकारों पर लगाए गए प्रतिबंधों को स्थायी बनाने का एक प्रयास था. ''[35] तमाम विरोधों के बावजूद भी 18 मार्च 1919 ई. को रौलेट एक्ट पास कर दिया गया. इसके तहत सरकार किसी भी व्यक्ति को संदेह मात्र के आधार पर बिना मुकदमा चलाए इच्छानुसार समय तक जेल में रख सकती थी. 21 मार्च 1919 को यह 'काला कानून' सारे देश में लागू कर दिया गया. इस तरह भारत में दमन भयंकर रुप से होने लगा. इस काले कानून के खिलाफ देश भर में प्रदर्शन हुए, जनमत तैयार कराए गए, फिर भी यह कानून वापस न हो सका.

इस प्रकार पूरे हिंदुस्तान में उभरे क्रांतिकारी गतिविधियों व आन्दोलनों को बुरी तरह कुचला जाने लगा. औपनिवेशिक भारत में प्रतिबंध के कई रुप थे. सबका उद्देश्य देश को गुलाम बनाए रखना व उसका दोहन करना था. इसके लिए ब्रिटिश सत्ता किसी भी हद तक नीचे गिर सकती थी. लोगों के भाषणों, सभाओं, यात्राओं आदि पर प्रतिबंध लगे. इस राजनीति ने पूरे हिंदुस्तान को हस्तगत कर लिया.

1.2.2 सामाजिक

औपनिवेशिक भारत की सामाजिक स्थिति अव्यवस्था और भयानक ऊथल–पुथल का शिकार थी. समाज कई जातियों , वर्गों, समूहों में बँटा था जिनमें परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, झगड़े वगैरह आम बात थे. समाज में रुढ़ियों व कुप्रथाओं का बोलबाला था. स्त्रियों व गरीबों की दशा अत्यंत शोचनीय थी. अन्धविश्वासों की जकड़बन्दी से जीवन घिरा हुआ था. भारतीय समाज की ऐसी अवनति देख कर इतिहासकार चोपड़ा, पुरी और दास का कथन है, ''अज्ञानता और अंधविश्वास के बीच ऐसी सामाजिक प्रथाएं भी धार्मिक दृष्टि से मान्य प्रतीत होने लगी; जो वास्तव में हानिकारक और खतरनाक थीं. पंडित वर्ग किसी भी सामाजिक बुरायी को शास्त्रोचित बना कर इसे धार्मिक कार्य का रुप दे सकते थे.''[36] ऊंच, नीच , छुआछूत की भावना बलवती थी. भारतीय समाज में अनगिनत जातियां थीं. सबकी अपनी मान्यताएं. आपसी फूट से समाज त्रस्त था. ऐसी परिस्थितियों में सामाजिक प्रगति अत्यंत दुरुह कार्य था. 'भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास 1758–1947' में सतीश चंद्र मित्तल लिखते हैं जिस प्रकार हिन्दू समाज अनेक जातियों में विभक्त था उसी तरह मुस्लिम समाज भी कई जातियों में बँटा हुआ था. ताराचंद के अनुसार, ''इस प्रकार मुसलमान भी प्रादेशिक कबायली, वर्गीय और जातीय विभेदों में उलझे हुए थे. तूरानी इरानियों के विरोधी थे, अफगानिस्तानी उन मुसलमानों के शत्रु थे, जिन्होंने उनसे दिल्ली का साम्राज्य छीन लिया था. हिंदुस्तानी मुसलमान विलायितों, ईरान, ट्रांस, अख्सियाना के देशों से आए हुए लोगों से चिढ़ते थे.

सुन्नी शियाओं को नास्तिक समझते थे.''[37] ऐसे आपसी फूट से ग्रस्त तथा असमानता के रूढ़ सिद्धांतों पर आधारित समाज में अंग्रेजों ने बदलाव लाना उचित न समझा. उन्होंने जाति व विभाजन के परंपरागत ढाँचे में कोई हस्तक्षेप करने की विशेष पहल न की. भारतीय समाज के आपसी फूट का फायदा निसंदेह उन्हें भरपूर मिल रहा था., जिसकी वजह से उन्होंने सामाजिक घटकों की ओर बहुत कम ध्यान दिया.

हिंदुस्तान के विभिन्न धर्मों, संप्रदायों , जातियों में विभाजित समाज का लाभ अंग्रेजों को प्रारंभ से मिल रहा था. उनके लिए एक बनी–बनाई भूमि मिल गई थी, जिसके सहारे वे अपने विरोधियों को आसानी से नेस्तनाबूद कर सकते थे. उनके साम्राज्य के विस्तार भारतीयों की आपसी फूट ही सहायक थी. ''उन्होंने अपने औपनिवेशिक विस्तार एवं शासन की दृढ़ता के लिए विभिन्न जातियों को ''बाँटो और राज करो'' नीति का शस्त्र बनाया. इसके पीछे उनका उद्देश्य मुख्यतः राजनैतिक रहा. सामाजिक असमानता अंग्रेजी शासन के लिए वरदान सदृश थी.''[38] परिणामस्वरुप अंग्रेजों ने भारतीय समाज के परंपरागत स्वरुप में कम रुचि ली. हिंदुस्तान में उनका प्रमुख उद्देश्य अपने साम्राज्य का विस्तार और यहां के संशाधनों की लूट करना था. फलतः उन्होंने अपने व्यापार पर ही अधिक ध्यान दिया. ''अधिकारियों ने जाति व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया. जाति प्रथा मूलतः आर्थिक या प्रशासनिक संगठन न होने के कारण उन्होंने इसमें कम रुचि ली.''[39] अपने व्यापारिक हितों की सुरक्षा के लिए अंग्रेजों ने सामाजिक स्थिति में अधिक हस्तक्षेप नहीं किया. ''सामान्यतः ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने या सीधे ब्रिटिश प्रशासन ने सामाजिक क्षेत्र में अहस्तक्षेप की नीति अपनाई उन्हें डर था कि कहीं इससे उनके व्यापार वाणिज्य को हानि न हो. ''[40] समाज के विभेदीकरण की प्रक्रिया को रोकने में सरकार ने कोई कार्य नहीं किया. जाति–प्रथा को लेकर केवल एक ही कानून बना. ''सरकार ने जाति के संदर्भ में कम से कम कानून बनाये. मुख्य रुप से केवल 1850 में लॉर्ड डलहौजी द्वारा कास्ट डिसएबिल्टीज रिमूवल एक्ट पास हुआ. इसके अलावा कोई अन्य महत्वपूर्ण नियम नहीं बनाया गया.''[41]

जमीन की तमाम असंगत व्यवस्थाओं के बावजूद कम्पनी सरकार का चरित्र कुलीनों वाला रहा. 1820 में जब मुनरो मद्रास का गवर्नर बनकर वापस आए तो उन्होंने रैयतवारी बंदोबस्त पर जोर दिया. जमीन की इस बंदोबस्त में उन्होंने जातिगत हस्तक्षेप करना उचित न समझाा. परिणामस्वरुप ब्राह्मणों के परंपरागत विशेषाधिकारों को सुरक्षित रखने की कोशिश की गई. ''रैयतवारी व्यवस्था ने ग्रामीण कुलीनों का उन्मूलन किया, जो सरकार और किसानों के बीच बने रहे. चूँकि मीरासीदारों के विशेष लगानों और विशेष अधिकारों को मान्यता दी गई और ब्राह्मणों के जातिगत विशेषधिकारों

को सम्मान दिया जाता रहा, इसलिए गांवों में मौजूद शक्ति संरचना शायद ही बदली, बल्कि नई व्यवस्था में वह और भी मजबूत बनी.''[42]

सेना के मामले में भी परंपरागत स्वरुप अपनाए गए। '' निर्माण के आरंभिक चरण में हेस्टिंग्ज़ सेना के मामलों में जाति–प्रथा के नियमों को बदलना नहीं चाहता था. इसलिए कंपनी की सेना में मुख्यतः अवध के सवर्ण ब्राह्मणों और राजपूत भूस्वामी किसान तथा उत्तरी और दक्षिणी बिहार के राजपूत और भूमिहार ब्राह्मण किसान शामिल थे.''[43] यह सेना सवर्ण सेना थी. इनके जाति, खान–पान आदि तौर–तरीके वही रखे गए. ''सिपाहियों की जाति, खान–पान, यात्रा संबंधी और अन्य धार्मिक तौर–तरीकों का सम्मान करने की सुविचारित नीति ने कंपनी की सेना को एक सवर्ण पहचान दी. उसमें भरती होकर भूमिहार ब्राह्मण जैसी अनेक उभर रही और सामाजिक महत्वाकांक्षी जातियों ने अपनी सामाजिक गतिशीलता की अकांक्षाओं को पूरा किया. आंग्लीकरण को प्राथमिकता देने के बावजूद कॉर्नवालिस ने सेना के इस विशेष गठन के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की. परिणामस्वरुप कंपनी को एक सवर्ण सेना प्राप्त हुई.''[44]

प्रारम्भ में सेना का चरित्र सवर्ण ही रखा गया परंतु बाद में कम्पनी साम्राज्य के विस्तार के परिणामस्वरुप सेना में विविधता लाना आवश्यक हो गया. बाद में पील आयोग के गठन के बाद विभिन्न जातियों को शामिल करने पर विचार हुआ. जिसके अनुसार, ''पील आयोग ने सिफारिश की कि देशी सेना में विभिन्न सम्प्रदाय और जातियाँ शामिल होनी चाहिए और एक सामान्य नियम के रुप में हर रेजिमेंट में उनमें एकरस मिश्रण होना चाहिए.''[45] फिर भी भारतीयों की नियुक्ति निचले पदों पर ही होती थी. मुख्य कमान हमेशा अंग्रेजों के हाथ में होती थी. ''आश्चर्य नहीं है कि इस प्रशासनिक ढाँचे में भारतीयों को लिया भी गया तो निचले पदों पर ही लिया गया, जिनको असंहिताबद्ध सिविल सेवा (uncovenanted civil service) कहा जाता था.''[46] भारतीयों के तमाम प्रयासों के बाद उन्हें जैसे–तैसे सिविल सर्विस में जगह तो मिली पर इसका चरित्र भी मूलतः सवर्ण ही रहा. इसमें भी उच्च जातियों को ही लिया गया. लॉर्ड लिटन की मानसिकता कुलीन वर्ग के पक्ष में थी. उसने ऐसे पदों की नियुक्ति के समय ध्यान रखा. ''1870 में एक वैधानिक सिविल सेवा (statutory civil service) का आरंभ किया गया. अर्थात् योग्य और गुणी भारतीयों को ऐसे कुछ पदों पर मनोनीत किया जा सकता था., जो अब तक केवल यूरोप के संहिताबद्ध सिविल अधिकारियों के लिए आरक्षित थे. लेकिन चूँकि लॉर्ड लिटन की पसंद स्पष्ट तौर पर कुलीन वर्ग के पक्ष में थी, ऐसे पदो ंके लिए चुने गए भारतीय आमतौर पर प्रतिष्ठित परिवारों के या देशी घरानों के होते थे.''[47]

जाति के आधार पर भेदभाव का रवैया मात्र लॉर्ड लिटन के यहाँ ही दिखाई देता है. सतीश चंद्र मित्तल भी अपनी पुस्तक 'भारत का सामाजिक आर्थिक इतिहास (1758–1947)' लिटन की इस मानसिकता को स्वीकार करते हैं, ''लॉर्ड लिटन को छोड़ कर सभी वायसरायों ने सामान्यतः तटस्थता की नीति अपनाई. लॉर्ड लिटन ने अवश्य जातीय आधार पर भेदभाव किया.''[48]

इस प्रकार भारतीय समाज में ब्रिटिश सरकार की दखल के कुछेक उदाहरण प्राप्त होते हैं. बाकी सभी गवर्नर जनरल प्रायः उदासीन रहे. कहना न होगा कि भारतीय समाज उस समय क्रूर प्रथाओं का शिकार था. सती प्रथा, विधवाओं की शोचनीय दशा, बाल विवाह, मानव बलि, देवदासी प्रथा, डंकिनी या डायन वध, कन्या वध इत्यादि क्रूर प्रथाओं को धार्मिक जामा पहना कर समाज में लागू किया गया था. इन कुप्रथाओं के कारण जीवन नारकीय बन गया था. भारतीय समाज में अंग्रेजों का हस्तक्षेप अगर था , तो इन कुप्रथाओं को रोकने के लिए. उन्होंने इन पर प्रतिबंध लगाए, लेकिन इन्हें हम सामाजिक प्रतिबंध की श्रेणी में नहीं, समाज–सुधार की संज्ञा देते हैं. ऐसे नियम समाज के लिए घातक नहीं वरन् उसकी प्रगति में सहायक थे. उदाहरण के लिए वेश्यावृत्ति रोकने के लिए ''भारत में पहला प्रमुख नियम 1923 में बंबई में बाम्बे प्रिवेंशन ऑफ प्रोस्टीट्यूट एक्ट बना.''[49] देवदासी प्रथा के लिए, ''मद्रास गवर्नर जनरल वान लॉक(1890–1896) ने इस पर प्रतिबंध लगा दिया था.''[50] कन्या–वध कुप्रथा को रोकने के लिए भी सराहनीय कदम उठाए गए. ''इस कुप्रथा को रोकने की पहल अंग्रेज प्रशासकों ने की. 1789 में बनारस के अंग्रेज रेजिडेंट डंकन (Duncan) ने इस ओर ध्यान दिया. उसे ज्ञात हुआ कि राजकुमार व राज वंशी राजपूतों में यह प्रथा बहुतायत है. अतः बंगाल के 1795 कानून की धारा 3 के अंतर्गत कन्या–वध को ब्रिटिश प्रदेश में गैर कानूनी तथा अवैध घोषित कर दिया गया. 1870 में इसके लिए एक कानून बना तथा प्रत्येक बालक के जन्म से पंजीकरण अनिवार्य कर दिया गया.''[51]

हमें ज्ञात है कि ब्रिटिश सरकार भारतीय रीति–रिवाजों में ज्यादा दख़ल नहीं देना चाहती थी. सती–प्रथा के बारे में ईसाई मिशनरियों ने अपनी रिर्पोट में इसकी क्रूरता का वर्णन किया था परंतु ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारतीय सामाजिक रीति– रिवाजों में कोई दखल नहीं देना चाहती थी. किंतु इसके विरुद्ध कानून बनाने के लिए गवर्नर जनरल पर अंग्रेज अधिकारियों के अनुरोध बढ़ते जा रहे थे. लॉर्ड कार्नवालिस, सर जॉन शोर , लॉर्ड वेलेजली पर इसके लिए दबाव डाले गए. ''[52] इस पर पूर्ण प्रतिबंध राजा राम मोहन राय तथा लॉर्ड विलियम बेंटिक के सत्प्रयासों द्वारा लग सका. '' इस दिशा में निर्णायक कदम लॉर्ड विलियम बेंटिक द्वारा लिया गया जो जुलाई 1818 में भारत के गवर्नर जनरल बन कर आए थे, उनके आने के पूर्व ही कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने कंपनी को इस बारे में

कानून बनाने के अधिकार की स्वतंत्रता दे दी थी.''[53] इसी प्रकार बाल–विवाह रोकने के लिए ''1870 में भारत के वायसराय कौंसिल के कानूनी सदस्य सर हैनरी मैन ने एक बिल 'नेटिव मैरेज बिल' भी रखा.''[54] इसके अलावा बहुपत्नी प्रथा विरोधी प्रयास, एज ऑफ कंसेंट एक्ट के तहत् भारतीय समाज में प्रचलित तमाम कुप्रथाओं पर प्रतिबंध लगा. सामाजिक कुरीतियों पर प्रतिबंध निसंदेह सराहनीय कदम थे, लेकिन भारतीय सामाजिक परिदृश्य में ब्रिटिश सत्ता का हस्तक्षेप कम ही रहा. लॉर्ड लिटन को छोड़ कर अन्य गवर्नर जनरल के यहां उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग का भेद दिखाई नहीं देता. उनकी दृष्टि मुख्यतः भारत के आर्थिक पक्ष पर ही रही. उनके यहां भारतीयों का विशेष स्थान न रहा. भारतीयों के साथ उनका भेदभाव पूर्ण रवैया हमेशा बना रहा. वे इन्हें प्रयोग की वस्तु समझते थे, जिनका शोषण मात्र किया जा सकता था.

1.2.3 आर्थिक

भारत में अंग्रेजों का प्रमुख उद्देश्य धन की लूट करना था. हिंदुस्तान एक कृषि प्रधान देश था. अतः यहां धन का एक बड़ा हिस्सा भू राजस्व से प्राप्त होता था. यहां से असीमित धन का दोहन हुआ. ''इस भारतीय धन की लूट को आर्थिक निकास कहा जाता है. यह आर्थिक शोषण तथा लूट इतनी अधिक थी कि भारत जैसा समृद्ध देश कुछ ही वर्षों में दयनीय तथा कंगाल बन गया. भारत पर किसी अन्य आक्रमण से इतनी अधिक हानि न हुई थी जितना कि अंग्रेजों द्वारा इस मनमानी लूट–खसूट से.''[55] कंपनी की आय में तेजी से वृद्धि करने के प्रयास में साम्राज्यवादी शक्तियों ने भारत में कई प्रयोग किए. उन्होंने ऐसे नियम बनाए तथा अपनी शोषणकारी कूटनीति लागू की जिससे उनकी खाली जेबें भी भर सकें. ''1765 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी मिलने के बाद अधिक से अधिक मालगुजारी वसूल करना भारत में ईस्ट इण्डिया कंपनी के प्रशासन की प्रमुख चिंता थी. खेती अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार और इसलिए आय का प्रमुख स्रोत थी, और इस कारण वसूली बढ़ाने की जल्दी में मालगुजारी के अनेक प्रयोग किए गए.''[56]

मालगुजारी की दरें भयंकर अकालों के बाद भी निरंतर बढ़ाई जाती रही. प्रारंभ में अंग्रेज और भारतीय जनता के बीच नवाब भी हुआ करते थे, लेकिन शीघ्र ही उन्होंने वसूली की इस प्रक्रिया को भारतीयों से मुक्त करने का प्रावधान बनाया. 1769–70 के अकाल, जिसमें बंगाल की एक तिहाई जनता मर गई थी, के बाद 1772 में वारेन हेस्टिंग्ज एक नियम लागू कर वसूली का जिम्मा यूरोपियों के हाथ में सौंप दिया. ''बंगाल के नव नियुक्त गवर्नर वारेन हेस्टिंग्स की यह इच्छा थी कि मालगुजारी प्रशासन को भारतीयों से एकदम मुक्त करा कर अंग्रेजों को प्रांत के संसाधनों का एकमत्र नियंत्रक बना दिया जाए. 1772 में उसने फ़ार्मिंग के नाम से एक नई व्यवस्था आरंभ किया.

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, जिलों के यूरोपीय कलक्टरों कों अब मालगुजारी की वसूली का नियंता बना दिया गया.''[57] वसूली करने वाले ने उत्पादन की चिंता किए बग़ैर इतना अधिक शोषण किया कि कृषकों को भयानक हानि हुई. जनसंख्या का बड़ा भाग तबाही का शिकार हो गया.

भूमि व्यवस्था की नई नीतियों को लागू करने के लिए लॉर्ड कार्नवालिस को गवर्नर जनरल बनाया गया., जिसने स्थाई बंदोबस्त(इस्तमरारी बंदोबस्त) लागू किया. यह व्यवस्था नई थी पर किसानों की दशा सुधारने में इसका भी कोई योगदान नहीं रहा. हाँ, कंपनी की आय 1765 व 1793 के बीच लगभग दोगुनी हो गई. ''1793 का स्थाई बंदोबस्त जमींदारों के साथ किया गया. बंगाल, बिहार और उड़ीसा की एक–एक इंच जमीन अब एक जमींदार का हिस्सा बन गई, और जमींदार को उस पर तय मालगुजारी देनी थी.''[58]

ब्रिटिश सत्ता से पूर्व जमीन राजा की नहीं होती थी. जमीन ईश्वर की समझी जाती थी तथा उस पर लगा कर खेती के पश्चात् अदा कर दी जाती थी. साम्राज्यवादियों ने जमीन पर से श्रम करने वालों का अधिकार समाप्त कर दिया. अब जमीन जमींदार की समझी जाने लगी, जो उसे बेच सकता था अथवा रेहन रख सकता था परंतु लगान अदा न होने पर जमीन उससे छीनी जा सकती थी. कहने की आवश्यकता नहीं कि जमींदारों ने कृषकों से मनमाने धन की वसूली की. यही नहीं, उनके अधिकारों की वृद्धि की गई. ''1799 और 1812 के कानूनों(रेग्युलेशंस) ने जमींदारों को अधिकार दिया कि लगान न देने की स्थिति में किसी अदालत की अनुमति के बिना भी काश्तकारों की संपत्ति जब्त कर सकते थे. इसलिए आश्चर्य नहीं कि जमींदारों की इस असीमित शक्ति के समर्थन के संचयी परिणाम (cumulative effect) के रुप में स्थाई बंदोबस्त से वास्तविक काश्तकारों (खेतिहरों) की हालत बिगड़ी.''[59] 'आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास' में सव्यसाची भट्टाचार्य लिखते हैं, ''बंगाल में जमींदारी बंदोबस्त के परवर्ती कुछ दशकों में प्रजा के स्वत्व अधिकार का प्रायः लोप हो गया. विशेषकर 1812 के पंचम कानून(रेग्युलेशन 5) के कारण ऐसा हुआ. जमींदार किसी भी प्रजा से किसी भी दर पर लगान ले सकता था और लगान न अदा करने की हालत में उसे जमीन से महरूम कर सकता था या उसे उजाड़ सकता था.''[60] बेतहाशा लगान बढ़ाने के लिए और भी कानून बने. ''1862 में कलकत्ता हाइकोर्ट के एक विख्यात मुकदमें में न्यायधीश बार्न्स पिकिल ने मत व्यक्त किया कि जमींदार काश्तकार से मनचाही दर पर लगान का दावा पेश कर सकता है.''[61]

भूमि की इस व्यवस्था के बाद रैयतवारी बंदोबस्त लागू किया गया यानी जमींदार के स्थान पर सीधे रैयत (खेतिहर) के साथ अलग–अलग मालगुजारी तय की गई. इस व्यवस्था में जो भी नियम बने, व्यवहार में वे भी खेतिहरों की दशा न सुधार सके. मालगुजारी की दरें अत्यधिक होने से पैदावार का पूरा हिस्सा लगान के रुप में देने के बाद भी किसान कर्जदार बनकर रह जाते. ''मालगुजारी की माँग अकसर इतनी अधिक होती थी कि उसे बड़ी कठिनाई से वसूल किया जाता था, या वह वसूल नहीं भी होती थी. इसलिए किसानों को ऐसे अनुचित बंदोबस्तों पर सहमति के लिए बाध्य किया जाता था.''[62]

किसानों पर मालगुजारी में वृद्धि तक ही बात नहीं रुकी. अंग्रेजों ने अपनी वार्षिक नीतियों को लागू कर के कृषि का वाणिज्यिकरण किया. भारतीय कृषि व्यवस्था परिवर्तित कर देने से असंतुलन उत्पन्न हो गया. अब तक खाद्यान्न फसलों का उत्पादन होता था. पर नई नीतियों ने खाद्यान्न फसलों के पूरे चक्र को ध्वस्त कर डाला. अंग्रेजों ने कृषि को व्यापार से जोड़ दिया. कृषि उनके आय का प्रमुख स्रोत बन गई. अब तक कृषि जीवन यापन व आत्मनिर्भरता के लिए थी अब वह व्यापारिक महत्व के लिए हो गई. फलतः उन फसलों का उत्पादन कराया जाने लगा जिनसे अधिक मूल्य प्राप्त किया जा सके. इसने जीवन में भारी अस्थिरता पैदा की. ''19 वीं शताब्दी के मध्य तक अंग्रेजों ने भारतीय कृषि व्यवस्था को परिवर्तित कर दिया जिससे ग्राम की आत्मनिर्भरता तथा स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया. उद्योग तथा कृषि का संतुलन नष्ट हो गया. अभी तक कृषि एक जीवन–यापन का तरीका था न कि व्यापारिक हितों की पूर्ति का साधन. ग्राम की पैदा हुई अनेक वस्तुओं को केवल स्थानीय या देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं , बल्कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का विषय बना दिया गया था. अब केवल अतिरिक्त पैदावार का ही व्यापार न होता था बल्कि यह व्यापार का आवश्यक अंग बना दिया गया. अब भारत का निर्यात मुख्य रुप से कृषि द्वारा पैदा की हुई वस्तुओं का होने लगा. इसमें कपास, पटसन, तिलहन, गन्ना, तम्बाकू, चाय , रबड़, मूँगफली, मसाले , फल आदि थे. अब विशेष फसलों का उत्पादन ग्रामीण उद्योग के लिए नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय मंडियों के लिए होने लगा.'' [63] इस नई व्यवस्था में कृषि की अवनति और शोषण बड़ी तेजी से बढ़े. फसलों के वाणिज्यिकृत होने से कृषकों को जबरन वही फसलें उगानी पड़ती थी जो अंग्रेजों के महत्व की होती. सिंचाई की व्यवस्था न होने पर भी उन्हें वही कार्य करना पड़ता था. ''अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों द्वारा ऐसी स्थिति का निर्माण कर दिया गया जिसके कारण कृषि का वाणिज्यिकरण कृषकों के लिए आर्थिक मजबूरी बन गया था. भारतीय कृषि मुख्य रुप से वर्षा पर निर्भर थी. अंग्रेजों द्वारा सिंचाई के विभिन्न साधनों के विकास की ओर कोई ध्यान न दिया गया.''[64]

इन फसलों की खेती के लिए पेशगी रुपया भी दिया जाता था. परिणामस्वरुप कृषक दास बन जाते. ''श्रमिकों की भरती दूर–दराज के क्षेत्रों से अनुबंधों की पद्धति के द्वारा की जाती थी जो लगभग दासता जैसी ही थी. मध्य बंगाल में नील की खेती मुख्यतः किसान स्वयं करते थे किंतु अनिच्छापूर्वक क्योंकि गोरे साहब उन्हें जबरन पेशगी रुपया देकर नील की खेती करने को बाध्य करते थे.''[65] अंग्रेजों की नीतियों के फलस्वरुप किसान निरंतर कर्ज से लदते गए और अकाल की स्थिति आ गई. ''सरकार की भूमि प्रबंध की विभिन्न प्रथाओं जैसे जमींदारी, रैयतबाड़ी तथा महालबाड़ी ने कृषक की हालत खराब कर दी थी. उदाहरणतः जमींदारी प्रथा में अनुपस्थित जमींदार वर्ग कृषकों के लिए अभिशाप ही था जिसने सामान्य किसानों को कर्जदार बना दिया था. बढ़ते हुए अकालों ने भी किसानों की हालत बदतर कर दी थी. अंग्रेजों ने भूमि लगान अत्यधिक लगा दिया था जिसे देने के लिए ऋण तथा उस पर ब्याज देना पड़ता था. अतः कृषि का वाणिज्य अंग्रेजों की नीति का एक भाग था. तथा भारतीयों की मजबूरी थी. कुछ अर्थों में यह अंग्रेजों द्वारा भारतीय कृषि का बलात् व्यवसायीकरण था.''[66]

वस्तुतः लगान की दरें अधिक होने पर किसानों को पेशगी रुपया लेने की बाध्यता हो जाती थी. इस प्रक्रिया में पड़ कर वे अपना सर्वस्व गंवा बैठते थे. ''जहाँ तक बहुसंख्यक निर्धन किसानों का प्रश्न था, वे बाध्य होकर वाणिज्यिकरण की प्रक्रिया में पड़ते थे क्योंकि राजस्व एवं भूमि का भाड़ा चुकाने के लिए नकद रुपयों की आवश्यकता होती थी. कोयम्बटूर के किसानों ने एक बार एक अंग्रेज जिलाधीश से कहा था कि वे कपास की खेती केवल इस कारण कर रहे हैं कि वे कपास को खा नहीं सकते. यदि वे अन्न उगाते तो उसे खा डालते और फिर लगान भरने को पैसा कहाँ से आता! अब वे आधे पेट रहते हैं, किंतु लगान तो चुका सकते हैं. राजस्व एवं दबाव के कारण खेती का रुख गरीबों के खाद्यान्नों जैसे ज्वार, बाजरा या दालों से हट कर नकदी एवं गेहूँ जैसी अधिक मूल्य दिलाने वाली फसलों की ओर हो गया जिसके कारण प्रायः अकाल के समय संकट उत्पन्न हो जाया करता था.''[67]

अपने लाभ के लिए अंग्रेजों ने ऐसी फसलों का उत्पादन करवाया जिससे कृषक वर्ग को कोई फायदा न होता था. कृषि के वाणिज्यिकरण के फलस्वरुप नगदी फसलों का उत्पादन उनकी बाध्यता बन गई. '' 1860–1890 वर्षों में बंबई प्रसीडेंसी में रूई, बंगाल में (विशेषकर पद्मा नदी के उस पार अर्थात वर्तमान बाग्लादेश में) पटसन, संयुक्त प्रांत में अर्थात् वर्तमान् उत्तर प्रदेश में चीनी के लिए ईख, मद्रास में चीनी बादाम यानी मूँगफली (तमिल और तेलुगू अंचलों में चिन्ना का अर्थ है छोटा) की खेती ने विस्तार प्राप्त किया. इस प्रकार की फसलों को प्रायः नकद फसल(cash crop)

कहा जाताए है. कृषि उत्पादनों के बीच इन चीजों की बिक्री के लिए ही मूल रुप से उपजाया जाता है.''[68] इन फसलों के उत्पादन में लगातार वृद्धि हुई; जबकि खाद्यान्न फसलों का उत्पादन दर गिरता गया. ''ब्रिटिश भारत (बर्मा से लेकर) 1901–1937 में खाद्य पदार्थों (अर्थात् धान , गेहूँ, ज्वार, बाजरा, मक्का, दाल इत्यादि) की खेती वाली जमीन के इलाके में केवल 16प्रतिशत बढ़े, जबकि नकदी फसल की खेती वाले इसकी तुलना में बहुत ज्यादा बढ़े–ईख 69 % , रुई 50 % , सरसों 36 % .''[69] खाद्यान्न फसलों के उत्पादन में भारी गिरावट तथा वाणिज्यिकृत फसलों में हुई बेतहाशा वृद्धि आश्चर्यजनक है. ''1893 से 1946 तक जॉर्ज ब्लिन द्वारा प्रस्तुत कृषि से संबंधित आँकड़े तो ठहराव, यहाँ तक कि पतन का चकरा देने वाला चित्र प्रस्तुत करते हैं. 1893–96 को आधार–अवधि मानने पर 1936–46 के बीच फसलों के उत्पादन का दस वर्षीय औसत इस प्रकार था : खाद्यान्नों के लिए 93, वाणिज्यिक फसलों के लिए 185 और कुल कृषि उत्पादन के लिए 110. 1921 के पश्चात् जनसंख्या में परिवर्तन के साथ तो प्रति व्यक्ति उत्पादन की दर वस्तुतः गिरने लगी. 1986–46 तक उत्पादन की यह दर सभी फसलों के लिए खाद्यान्न फसलों के लिए 68 रह गई.''[70] किसानों का अपनी उपज पर कोई अधिकार न था. ''किसानों को जबरन अपनी उपज बेचनी पड़ती थी और इसे विदेशी निर्यात अभिकरणों द्वारा बाहर भेज दिया जाता था ताकि दोहन के लिए आवश्यक रोकड़बाजी का संतुलन बनाए रखा जा सके.''[71]

सरकार ने ऐसे नियम बना रखे थे जिसके तहत् निर्यात पर कम शुल्क लगे और भारत से अधिक से अधिक उत्पादन निर्यात किया जा सके. हिंदुस्तान की उपज का हिस्सा जबरन छीन कर बाहर भेज दिया जाता. इस संबंध में सव्यसाची भट्टाचार्य का कहना है, ''सबसे बड़ी बात यह है कि सरकारी कर–नीति कृषि उपज के निर्यात के पक्ष में थी. 1860 में प्रथम बजट के निर्माता भारत के प्रथम अर्थ मंत्री (उन दिनों उन्हें गवर्नर जनरल की कौंसिल का फाइनेंस मेंबर कहा जाता था) जेम्स विल्सन ने यह नीति चालू की थी. उनका वक्तव्य था–भारत की स्वाभाविक सुविधा है–कृषि उपज बढ़ाना. उसी से भारत यथासंभव विदेशी व्यापार में आय अर्जित करेगा. इसके निर्यात पर कर–भार बढ़ाने से बाहर का व्यापार नष्ट होगा आर्थात भारत एक कृषि प्रधान देश के रुप में कच्चे माल का निर्यात कर के उद्योगों की समृद्धि में इंग्लैण्ड के साथ योगदान करेगा. यह कर नीति अर्थात् कृषि उपज पर निर्यात शुल्क कम रखना, 1882 के बाद प्रायः संपूर्ण अबाध वाणिज्य का रुप लेकर सामने आई. इस शताब्दी के अंतिम वर्षों में चावल के अलावा प्रायः सभी प्रधान कृषि उत्पाद बिना भाड़ा के निर्यात होते थे.''[72]

निर्यात शुल्क हटने से भारत की उपज निर्बाध बाहर की ओर खिचने लगी. निर्यात के आँकड़े दिन–ब–दिन तेजी से बढ़ते जा रहे थे. निर्यातक देशों में भारत की स्थिति शीघ्र ही ऊपर हो गई. ब्रिटिश साम्राज्य की आर्थिक नीतियों के कारण केवल कृषि की ही अवनति न हुई, वरन् हिंदुस्तान के उद्योग–धन्धे भी पूरी तरह चौपट हो गए. यहाँ प्रचलित हस्त कला, जो उच्च कोटि और विश्व प्रसिद्ध थी, का विनाश हो गया. अंग्रेजों की व्यापारिक नीति के निशाने पर हिंदुस्तान के निम्नलिखित पक्ष थे,'' 1. निरुद्योगिकरण का सिद्धांत अर्थात् देशी उद्योगों का विनाश, सरकारी समर्थन के अभाव में इंग्लैण्ड के कारखानों के साथ उनकी असमान प्रतिस्पर्धा. 2. मुक्त व्यापार नीति (free trade) से प्रभावित ब्रिटिश भारत की शुल्क नीति(tariff-policy) का दुष्परिणाम, विदेशी औद्योगिक वस्तुओं की बाढ़, कच्चे माल की सस्ती दर में प्राप्ति, यहाँ तक कि अन्नहीन देश के खाद्यान्न का विदेश निर्यात. 3.अतिरिक्त ऊंची दर पर भू–राजस्व का शोषण कर के कृषि–व्यवस्था का सर्वनाश. , फलस्वरुप बार–बार पड़ने वाले अकाल. 4.राजस्व को देश की उन्नति (जैसे सिंचाई व्यवस्था) के लिए खर्च न करके अंग्रेजों के हित में (जैसे रेल कंपनियां) खर्च करने की सरकारी नीति. 5. धन का बहिर्गमन सिद्धांत (Drain of wealth theory) अर्थात् देश से रुपये या पण्य के रुप में धन को विदेश भेजना., अंशतः गैर–सरकारी व्यवसाय के बहिर्गमन पथ से. अंशतः भारत सरकार के इंग्लैण्ड में दर्ज खर्च के खाते में.''[73] इसके अतिरिक्त तमाम बिन्दु थे जिससे भारत की धन–सम्पदा, उपज विदेश की ओर खिंचती चली गई. फसलों के उत्पादन पर ब्रिटिश सत्ता का पूर्ण अधिपत्य था. उन फसलों से जिनसे उन्हें लाभ प्राप्त होता था., उनके उत्पादन की दर बढ़ी. ''अनेक कृषि उद्योगों पर , नील की खेती जिसमें ब्रिटिश उद्योगपतियों ने मनमाने ढंग से लाभ कमाये. परिणामस्वरुप नील की खेती करने वाले किसानों में असंतोष पैदा हुआ जिस कारण उन्होंने विद्रोह किया. इसी तरह चाय, कहवा, तेल के बीज आदि उद्योगों को बढ़ावा मिला. उदाहरण के लिए तेल के बीजों का 1899–1900 में निर्यात 17 मिलियन क्विंटल जो 1903–04 में बढ़कर 245 मिलियन क्विंटल हो गया. इस दिशा में 1939–40 में भारत विश्व का चौथा प्रमुख देश बन गया.''[74]

अंग्रेजी शासन में कृषि के अतिरिक्त हिंदुस्तान की अन्य उन्नत कला शीघ्र ही अवनति की ओर ठेल दी गई. भले ही यहाँ उद्योग व कारखाने कम थे पर कलाकार घर–घर में थे और कला पूरे विश्व में प्रसिद्ध थी. जन–जीवन आत्मनिर्भर था. ''अंग्रेजों के आगमन के समय भारत देश–विदेश में अपनी कलाकृतियों तथा हस्तकला उद्योग में जाना जाता था. के. एम. अशरफ के अनुसार–यह सही है कि वर्तमान दृष्टि से भारत एक औद्योगिक देश नहीं था और न ही यहाँ बड़े–बड़े उद्योग लगे थे,

कारखाने भी बहुत कम तथा निर्यात मुख्यतः तटीय नगरों से होता था परन्तु औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व यहाँ का बना हुआ माल विपुल मात्रा में विदेशी बाजारों में जाता. था. ''[75]

भारत में निर्मित वस्तुएं उच्चकोटि की मानी जाती थी. वे अपनी खूबसूरती और अद्वितीयता के लिए विख्यात थी. ''हस्तकला उद्योग के लिए भारत सदा ही विश्व में अग्रणी रहा है. भारत के बने सूती एवं रेशमी वस्त्र, ढाका की मलमल तथा ऊनी वस्त्र विश्व में बड़े चाव से उपयोग में लाए जाते रहे. विश्व का कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने लाहौर के गलीचे, काशमीर के शाल, बनारस का जरी का काम पसन्द न किया हो. हाथी दांत का काम, लकड़ी पर खुदाई, चमकदार जड़ाऊ गहने सभी की विश्व के सभी देशों में बड़ी मांग रही.''[76] अपने उद्योगों की वृद्धि के लिए विदेशी सत्ता ने अपने देश में भारत की वस्तुओं को रोकने के लिए प्रतिबंध लगाने शुरु किए. '' विदेशी सरकार ने विभिन्न प्रकार के प्रतिबंधों द्वारा भारत के सूती वस्त्रों के निर्यात को रोकने की बड़ी कोशिश की. उदाहरणार्थ इंग्लैण्ड ने 1700 के एक नियम द्वारा इन पर प्रतिबंध लगाया पर कोई लाभ न हुआ. 1702 में सामान्य कपड़े पर 15 प्रतिशत कर लगाया परंतु बढ़िया वस्त्र की मांग बढ़ गई. 1720 में भारतीय वस्त्र पहनने पर प्रतिबंध लगा दिया था, तथा 5 पौंड जुर्माने का प्रावधान भी लगाया., जो बढ़ कर 20 पौंड कर दिया था, पर सफलता नहीं मिली.''[77]

अपनी लूट–खसोट जारी रखने के लिए भारतीय उद्योगों को ध्वस्त करने की रणनीति प्रारम्भ से ही थी. भारतीय वस्तुओं की बराबरी न कर पाने पर अपने देश में उनके आयात पर प्रतिबंध लगाया. ''17 वीं 18 वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड की ईस्ट इण्डिया कंपनी के अलावा फ्रांसीसी, पुर्तगाली आदि कंपनियां भी प्रचुर भारतीय शिल्प पदार्थ–जैसे सूती और रेशमी कपड़े, नील तरह–तरह के कुटीर उद्योगों में उत्पन्न होने वाली विलास–सामग्री भारत से निर्यात करती थीं, अपने–अपने देशों में उत्पन्न होने वाली आपूर्ति के लिए. कोई कोई भारतीय शिल्प पदार्थ–जो ऊँचे दाम का था–जैसे कुछ बहुत महीन सूती कपड़े. यूरोप का शिल्प उद्योग उनके साथ प्रतियोगिता नहीं कर पा रहा था इसलिए कानून बना कर भारत से उन सब पदार्थों का आयात बंद कर दिया गया. कुछ इतिहासकारों ने यह भी लिखा है कि अंग्रेजों ने भारतीय शिल्प उद्योग को नष्ट करने के लिए षणयंत्र किया था, जैसे बंगाल के जुलाहों के अँगूठे काट कर उन्हें बुनाई के अयोग्य बना देना.''[78] इसके अतिरिक्त उन्होंने कारीगरों पर यह प्रतिबंध भी लगाया कि वे उनका संरक्षण स्वीकार करें तथा अपने माल अति सस्ते दाम पर उन्हें ही बेचें. ऐसा न करने पर उनके ऊपर काफी जोर–जबर्दस्ती की जाती थी. '' भारत में सस्ती दर पर खरीद कर यूरोप में बिक्री करने के लोभ में ईस्ट इण्डिया कंपनी आदि ने परंपरागत भारतीय कारीगरों के ऊपर दबाव डालना शुरु किया.

–कपड़ा सस्ता दो, कंपनी का संरक्षण स्वीकार करो, कंपनी को छोड़ कर और किसी को माल की बिक्री न करो और अगर तुम यह सब नहीं करोगे तो कंपनी के लठैतों और गुमाश्तों और साहबों के जूते खाओ.''[79]

भारतीय उद्योग–धन्धों को पूरी तरह नेस्तनाबूद करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने और भी नियम बनाए. उन्होंने कच्चे माल की लूट शुरु कर दी तथा तैयार माल पर प्रतिबंध लगाये. इन तैयार माल पर भारी निर्यात कर लगाये, जिससे ये वस्तुएं विदेशी बाजार में न जा सकें. दूसरी ओर अपने तैयार माल की भारतीय बाजारों में बाढ़ ला दी. ''अंग्रेजों ने इस तरह के नियम बनाये जिनसे भारतीय उद्योगों का ह्रास किया जा सके, तथा ब्रिटेन में तैयार माल की खपत हो सके. 1769 ने कंपनी ने बंगाल में कच्चे रेशम की पैदावार को बढ़ावा दिया परंतु सिल्क से तैयार माल पर प्रतिबंध लगाये, इसी प्रकार तट कर नीति तथा आंतरिक चुंगी व्यवस्था को तैयार करते समय ब्रिटिश हितों को प्रमुखता दी. अतः कंपनी ने विभेदकारी कानूनों से भारतीय हस्त कलाएं नष्ट हो गईं और इनका स्थान ब्रिटिश सामग्री ने ले लिया.''[80] इतिहासकार आर. सी. दत्त ने भी चर्चा की है कि अपने तैयार माल की खपत के लिए भारतीय मालों पर भारी निर्यात कर लगा दिया गया. ''भारतीय रेशमी और सूती कपड़ों पर इतना अधिक निर्यात कर लगा दिया गया कि वे इंग्लैण्ड के बाजारों में प्रवेश ही न पा सकें. इसके विपरीत इंग्लैण्ड का माल भारत की मंडियों में, निर्बाध था. यह बहुत साधारण सा कर चुकाने पर ही मांगाया जा सकता था.''[81] यही नहीं अंग्रेजी सरकार ने बुनकरों से जबरन काम करवाये. कीमतों में कमी की साथ ही उनके किसी अन्य काम करने पर भी पाबंदी लगाई. ''कंपनी का मुनाफा बढ़ाने के लिए उसके एजेंटों ने कपड़ा तथा अन्य वस्तुओं के भारतीय उत्पादकों को मजबूर किया कि वे उनसे बाजार भाव से 20 से 40 प्रतिशत तक कम कीमत लें. उस समय ढाका की मलमल के उत्पादन का सबसे बड़ा केन्द्र था. ढाका के उत्पादकों ने कीमतें घटाने का विरोध किया और ऊँची कीमतों की माँग की, तो उनके खिलाफ बल प्रयोग किया गया. अनेक बुनकरों के नाम बही में लिख लिए गए और उनके किसी अन्य का काम करने पर पाबंदी लगा दी गई.''[82]

इसके अलावा चुंगी का भी प्राधान था. भारत से बाहर वस्तुओं को भेजने पर भारी चुंगी लगती थी लेकिन आने वाली वस्तुओं पर नहीं. कपड़ों के मामले में यह अधिक लागू था, विशेषकर सूती वस्त्र. ''इंग्लैण्ड से भारत आने वाली वस्तुओं पर चुंगी नहीं लगती थी. दूसरी ओर भारत से इंग्लैण्ड पहुँचने वाली वस्तुओं पर वहाँ ऊँची चुंगी लगती थी.''[83]

अंग्रेजों ने यहाँ से कच्चे माल का निर्बाध दोहन किया व उसी से तैयार माल की भारत के बाजारों में बाढ़ ला दी. परिणामस्वरुप यहाँ के उद्योग–धन्धे तेजी से अवनति की ओर जाने लगे. ''अंग्रेज

लोग अपने उपनिवेशों से कच्चा माल बहुत कम दाम में आयात कर लेते थे. औद्योगिक क्रांति के फलस्वरुप इंग्लैण्ड का आर्थिक हित भारत के सूती और रेशमी कपड़ों के आयात में नहीं रह गया था, बल्कि भारत से कच्चे माल का आयात और औद्योगिक माल के वहाँ निर्यात में निहित था.''[84] इस प्रकार भारतीय कारीगरों द्वारा तैयार माल के निर्यात में कमी और ब्रिटेन के तैयार माल के आयात में भारी वृद्धि दिखाई पड़ती है. 19 वीं शताब्दी के आरम्भ से आयात–निर्यात के हिसाब से देखा जा सकता है कि कुटीर उद्योग में पैदा होने वाले शिल्प पदार्थों का निर्यात एक ओर कम हुआ है, तो दूसरी ओर इंग्लैण्ड के शिल्प पदार्थों का आयात बढ़ा है, विशेषकर सूती कपड़ों के आयाम में बढ़ोत्तरी लक्ष्य करने योग्य है : 1860 (मूल्य 96 लाख पौंड स्टर्लिंग) से 1880 के बीच तक (एक करोड़ 70 लाख पौंड स्टर्लिंग) और 1900 में (27 करोड़ पौंड स्टर्लिंग).''[85]

इतना ही नहीं अंग्रेजों ने और भी ऐसे नियम बनाए जिनसे हस्तकलाओं पर बुरा असर पड़ा. यहाँ के लोग हथियारों को बतौर शौक अपने घर में रखते थे, उस पर पाबंदी लगा दी गई. 1879 में लॉर्ड लिटन के कार्यकाल में आर्म्स एक्ट पास हुआ., जिसके तहत भारतीय अपने घरों में हथियार नहीं रख सकते थे. इस प्रतिबंध के कारण हथियारों को बनाने वाले बहुत से कारीगर बेकार हो गए. इसके अलावा वेशभूषा में परिवर्तन करना भारतीय उद्योगों को नष्ट करने की चाल थी.. ''अंग्रेज सरकार कुछ इस प्रकार के नियम बनाये जिनसे हस्त कलाओं का विकास रुक गया. उदाहरण के लिए हथियारों को रखने तथा उनके प्रयोग पर रोक लगा दी. भारतीय हथियार नियम के द्वारा लॉर्ड लिटन ने अस्त्र–शस्त्रों के बनाने पा प्रतिबंध लगा दिये. उदाहरण के लिए एक ऐसा नियम था जब कभी कोई विशिष्ट ब्रिटिश व्यक्ति आता था तो भारतीयों को पेटेंट चमड़े के जूते पहन कर आना होता था., वे बेल वेलबूटे की कढ़ाई वाले भारतीय जूते न पहन सकते थे.''[86] जाहिर है, इस प्रकार के तमाम प्रतिबंधों का भारतीय व्यवस्था पर कितना बुरा असर पड़ा. यह भारत के आर्थिक विकास पर बड़ा घातक हमला था. इससे संपूर्ण अर्थ व्यवस्था चरमरा गई.

1.2.4 धार्मिक एवं सांस्कृतिक :

गुलाम भारत में अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए अंग्रेजों ने हिंदुस्तान में पाबंदियों का खेल शुरु किया., जिससे वे यहाँ नियंत्रण रख सकें.. यह प्रतिबंध जीवन के हर क्षेत्रों में(राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक) थे. इनका उल्लंघन अपराध की श्रेणी में आता था तथा इसके लिए सजाओं के भी प्रावधान थे. हर जगह बन्दिशें थीं. व्यक्तिगत जीवन भी इन पाबन्दियों का शिकार था. हर प्रकार की स्वतंत्रता पर पहरे थे. भारतीयों कों अपने धार्मिक रीति–रीवाजों को निभाने की स्वतंत्रता ब्रिटिश काल में सीमित की गई. अंग्रेजों ने अपने नियमों में भारत के धार्मिक

विश्वासों, मान्यताओं को कोई जगह नहीं दी. महाराज नंद कुमार की फाँसी एक ऐसी ही घटना थी. 1775 में महाराज नंद कुमार पर जालसाजी का आरोप लगा कर उन्हें बन्दी बना लिया गया. न्यायधीश जो वारेन हेस्टिंग्स का सहपाठी व मित्र था, उसने नंद कुमार द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों की उपेक्षा की व उन्हें फाँसी की सजा दे दी. ''न्यायालय ने मुर्शिदाबाद के भूतपूर्व दीवान महाराजा नंदकुमार को जालसाजी के अभियोग में मौत की सजा सुनाई थी. उस समय ब्रिटिश कानून के अनुसार जालसाजी के लिए मृत्यु दंड दिया जा सकता था. मगर नंदकुमार ब्राह्मण था और ऐसे अपराध के लिए भारत में ब्राह्मण को मृत्युदंड नहीं दिया जा सकता था,'' [87] नंदकुमार के ब्राह्मण होने के बावजूद भारतीयों की धार्मिक भावना की उपेक्षा की गई.

अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए अंग्रेजों ने भारतीयों को अपनी सेना में भर्ती किया. परंतु वहाँ सैनिकों को सिर पर पगड़ी रखने, माथे पर तिलक लगाने व कानों में बालियाँ पहनने की मनाही थी. सर जॉर्ज बार्लो (1805–07) के शासन काल में हुआ 'वेलोर का विद्रोह' इसी बात के खिलाफ था. जब सेनापति ने वेलोर के सिपाहियों को सिर पर पगड़ी रखने और तिलक लगाने पर पाबंदी लगाई तो अपने धर्म के विरुद्ध कार्रवाई होते देख सैनिकों ने विद्रोह कर दिया. इसके अलावा भारत में ईसाई धर्म प्रचारकों को खुली छूट थी. 1813 के चार्टर एक्ट के अनुसार ईसाइयों को भारत में धर्म प्रचार की छूट मिल गई और गिरिजाघरों की स्थापना होने लगी. भारत के संबंध में इंजीलवादियों ने भारत को सभ्य बनाने का ठेका ले रखा था. उन्होंने यहाँ के लोगों को ईसाइ बना कर सभ्य कहलाने योग्य बनाना चाहते थे. ''इंजीलवाद ने अपना अभियान भारतीय बर्बरता के विरुद्ध शुरु किया और ''हिंदोस्तान की प्रकृति'' को ही बदलने के लिए ब्रिटिश राज के स्थायित्व का समर्थन किय. भारत में इस विचार के प्रवक्ता कलकत्ता के पास श्रीरामपुर के मिशनरी थे, पर ब्रिटेन में इसका मुख्य प्रतिपादक चार्ल्स ग्रांट उसने 1792 में ही कहा था कि भारत की प्रमुख समस्या वे धार्मिक विचार हैं, जो भारतीय जनता को अज्ञान में जकड़े हुए हैं. ईसाइयत की रोशनी फैला कर इन्हें बखूबी बदला जा सकता है और भारत में ब्रिटिश राज का श्रेयस ध्येय यही होना चाहिए. अपने आलोचकों को शांत करने के लिए ग्रांट ने विरोध की आशंका के बिना या अंग्रेजों की स्वाधीनता की किसी इच्छा के बिना सभ्यताकारी प्रक्रिया और भौतिक समृद्धि के बीच की संपूरकता को भी दिखाया. संसद में उसके विचार को और अधिक प्रचार विलियम विल्वर फोर्स ने 1813 के चार्टर एक्ट के पारित होने के पहले दिया, जिसमें ईसाई मिशनरियों को बिना किसी प्रतिबंध के भारत में आने की छूट दी गई . ''[88] उन्हें धर्म प्रचार की अनुमति मिल गई थी. ये लोग कई बार लोगों की इच्छा के विरुद्ध जबरन ईसाइ बनाते थे. 1891 में कोयंबटूर में ऐसी ही एक घटना का उदाहरण मिलता है, ''एक ईसाई पादरी ने किसी 16 वर्ष के हिन्दू बालक के धर्म परिवर्तन करने की व्यवस्था

की. बच्चे के मां–बाप को जब पता चला तो उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि उनका लड़का उनके हवाले कर दिया जाय.''[89]

हिन्दू धर्म में समुद्र पार करना धर्म के विरूद्ध समझा जाता था. इसलिए भारतीय सैनिक युद्धों के लिए समुद्र पार नहीं करना चाहते थे. अंग्रेज सेनापति उन्हें जबरन इस कार्य के लिए भेजते थे. 1824 में बर्मा के युद्ध के समय बैरक पुर के हिन्दू सैनिकों को समुद्र पार भेजा जाने लगा फलस्वरुप बैरकपुर के सैनिकों ने विद्रोह किया.

यही नहीं, लॉर्ड केनिंग ने सामान्य सेना भर्ती अधिनियम पारित कराया जिसके तहत नियुक्त सैनिकों को कहीं भी युद्ध के लिए भेजा जा सकता था. उन्हें इस शर्त की स्वीकृति लिखित रुप में देनी पड़ती थी. 1857 की क्रांति के पश्चात् 1858 में भारत की सत्ता कंपनी के हाथ से निकल कर ब्रिटिश साम्राज्ञी के हाथ में चली गई. उसने घोषणा की कि भारतवासियों की धार्मिक भावनाओं में कोई दखल न दिया जायेगा, ''इस घोषणा में न केवल इस बात की गारंटी दी गई कि देश की जनता के धार्मिक विश्वासों की और पूजा आदि के मामलों में दखल नहीं दिया जायेगा, बल्कि यह भी आश्वासन दिया गया कि चाहे 'वह' किसी भी जाति या धर्म को मानता हो उसे स्वतंत्र और निष्पक्ष रुप से उस सरकारी सेवा का मौका दिया जायेगा जिसके लिए उसकी शिक्षा, योग्यता और सत्यनिष्ठा के आधार पर बुलाया जायेगा.''[90] कहना न होगा कि यह घोषणा नाम मात्र की थी और प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् भारतवासियों पर और भी कड़े प्रतिबंध लगे.

लॉर्ड लिटन के कार्य काल में सन् 1879 में भारतीय शस्त्र अधिनियम पास हुआ. जिसके तहत् बगैर लाइसेंस शस्त्र रखना अपराध था. इसका उल्लघंन करने पर 3 वर्ष के कारावास अथवा जुर्माने अथवा दोनों दण्ड़ों का प्रावधान था. उसको छुपाने के प्रयत्न पर 7 वर्ष का कारावास, जुर्माने अथवा दोनों दिए जा सकते थे. यह अधिनियम भारतीयों पर लागू होता था. जबकि अपने साथ शस्त्र रखना बिशेष वर्ग के लोगों का धार्मिक अधिकार था.

इस प्रकार अंग्रेजों ने अनेक ऐसी नीतियां बनाई जिसके सहारे हिंदुस्तान पर नियंत्रण रखा जा सके. सभी क्षेत्रों पर उनका अधिपत्य था. देश की स्वतंत्रता तेजी से छिनती जा रही थी. स्वतंत्र विचारों को लेकर साम्राज्यवादी शक्तियां सबसे अधिक आतंकित थी. उन्होंने व्यक्तियों के भाषण , सभाओं, उनकी पुस्तकों को प्रतिबंधित घोषित करना शुरु किया. लेखनी पर नियंत्रण पाने के लिए अनेक कानून पास किए गए. सजाओं का प्रावधान किया गया. सांस्कृतिक गतिविधियों पर रोक लगाया गया. 13 मई 1799 को लॉर्ड वेलेजली द्वारा पारित कराये गये नियम भारतीय संपादकों पर अंकुश

लगाने के लिए थे. इस के अनुसार पत्रों में स्वामी व मुद्रक का नाम देना तथा प्रकाशित सामग्री को सचिव के सम्मुख शपथपूर्वक घोषित करना अनिवार्य था. इसके उल्लघंन की सजा कठोर थी. इसके बाद 1807 में पत्र के अतिरिक्त पैम्फलेटों पर भी यही नियम लागू हो गया. 1813 में लॉर्ड हेस्टिंग्स ने पत्रों के अतिरिक्त समस्त छिटफुट प्रकाशनों को भी सचिव के सम्मुख प्रस्तुत करना अनिवार्य कर दिया.

आगे चलकर 18 दिसम्बर 1823 में जान एडम द्वारा लाइसेंस का प्रावधान बनाया गया। सभी प्रकार के मुद्रण या प्रकाशन के लिए अब सरकार से लाइसेंस लेना अनिवार्य कर दिया गया. बगैर लाइसेंस प्रकाशन करने पर 1000 रु. जुर्माना व 6 मास कारावास की सजा का प्रावधान था. इसके अलावा सरकार को कुछ आपत्तिजनक लगने पर लाइसेंस रद्द कर दिया जाता। इसके बाद नीतियां दिन–ब–दिन कठोर होती रही. 1857 की क्रांति के बाद प्रेस अधिनियम बड़ी कड़ाई से लागू किया गया. पत्रों, अखबारों, पुस्तकों पर सख्त पाबंदिया लगीं. सभाओं पर पुलिस की जबर्दस्ती, व्यक्तियों की यात्राओं, जुलूस वगैरह पर रोक आम बात सी हो गई थी. 1860 में प्रेस अधिनियम और भारतीय दण्ड संहिता को साथ जोड़ दिया गया. 1867 में'प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक्स एक्ट' लागू हुआ जिसके तहत् प्रकाशित पुस्तक की 1 प्रति 1 महीने के भीतर सरकार को सौंपनी थी. 1878 में लॉर्ड लिटन के कार्य काल में पारित हुए वर्नाक्यूलर एक्ट के तहत बगैर न्यायालय के आदेश के ही प्रकाशक के नाम वारंट जारी हो सकता था. उसकी किसी भी प्रकाशित सामग्री को जब्त किया जा सकता था तथा इस एक्ट की सबसे खतरनाक बात यह थी कि इसके खिलाफ किसी न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती थी. स्वातंत्र्य चेतना से घबराई सरकार ने 25 जून 1891 ई. में एक ऐसा नियम पारित किया जो हिंदुस्तान के उन प्रांतों पर भी लागू होता था , जो उसके हिस्से में नहीं थे अर्थात देशी रियासतों की वैचारिक स्वतंत्रता पर भी कठोर पाबंदी लागू हो गई. 1898 में धारा 124 ए तथा 153 ए जोड़ दिया गया. 1908 का समाचार पत्र अधिनियम, 1910 ई. का भारतीय मुद्रणालय अधिनियम, 1911 में राजद्रोहात्मक सभा प्रतिबंध कानून, 1922 में प्रेस प्रोटेक्शन बिल, 1930 में 'प्रेस अध्यादेश' समेत अनेक कानून पास किए गए. यह सिलसिला 1947 तक चलता रहा.

इस प्रकार साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा लोगों की हर प्रकार की स्वतंत्रता अपने अधीन रखी जाने लगी. लोग समूहों में नहीं रह सकते थे. जुलूसों सभाओं पर सरेआम घोड़े दौड़ाए जाते, लोग गिरफ्तार किए जाते, उन्हें पीट–पीट कर पानी में फेंक दिया जाता. उनके ऊपर पैर रख कर पुलिस

रास्ते पार करती थी. जुल्म करने के तमाम तरीके इजात किए जाते. ऐसे समय में बोलना, लिखना, सभाएं करना बेहद खतरनाक था. बंदिशों और जुल्मों से पूरा देश आक्रान्त था.

1.3 प्रतिबंधित साहित्य का इतिहास और प्रतिबंधित रचनाएं

हिंदुस्तान को उपनिवेश बनाने के लिए साम्राज्यवादी शक्तियों ने आजादी की भावना को प्रसारित करने वाले समस्त साहित्य पर प्रतिबंध लगाया. यह प्रक्रिया उनके हिंदुस्तान आगमन के साथ ही शुरु हो गई भी. प्रारम्भ में यह सीमित और अव्यवस्थित रुप में थी लेकिन क्रमशः आगे चल कर ये प्रतिबंध अधिक मुखर और जीवन के हर क्षेत्रों में लागू होने लगे. ब्रिटिश सरकार ने कई नियम पास किये और अपने लिए खतरनाक साबित हो सकने वाले किसी भी प्रकार के विचारों पर पाबंदी लगााई. उस समय देश में आजादी पाने की ललक सबके मन में जाग उठी थी कवियों व लेखकों ने इस चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. हर भारतीय भाषा में अंग्रेजों के खिलाफ लिखा जा रहा था. ये रचनाएं वास्तव में उनके लिए चुनौती साबित हो रही थी. 1918 में प्रथम विश्व युद्ध समाप्त हुआ. रूस की जनवादी क्रांति 1917 में संपन्न हो चुकी थी. इस विजय का व्यापक प्रभाव भारत पर भी पड़ा. 1916 में जब रोजा लक्जमबर्ग ने घोषणा की कि, '' आधुनिक साम्राज्यवाद के ऐतिहासिक परिवेश में.....अब राष्ट्रीय आत्मरक्षा के लिए युद्ध चलाना संभव नहीं रहा.....' इस पर लेनिन ने जवाब दिया कि' साम्राज्यवाद के खिलाफ राष्ट्रीय युद्ध न सिर्फ संभव और संभाव्य हैं, बल्कि वे अनिवार्य, प्रगतिशील और क्रांतिकारी हैं.....'[91] भारत में भी साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ विद्रोह के झण्डे बुलंद किए जा रहे थे. विश्व युद्ध में भारतवासियों को अंग्रेजों की सहायता के बदले बर्बरता और जुल्म का सामना करना पड़ा. उनका मोहभंग हो चुका था. लिहाजा प्रतिरोध के स्वर में उग्रता आई. जनता को जागरूक करने के उद्देश्य से अनेक भाषाओं में शहीद भगतसिंह आदि क्रांतिकारियों की गाथाएँ लिखी गई. पंजाबी में हीरासिंह जी द्वारा रचित 'बाबा गुरदीत सिंह जी' , कृपालसिंह 'पंछी' द्वारा रचित 'शहीदी जीवन', तमिल भाषा में 'सरदार भगतसिंह चरित्रम्', राखालचन्द्र घोष की रचना 'विप्लवी अंबानी मुखर्जी', भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से प्रकाशित बांग्ला भाषा में 'नवम्बर विप्लव दिवसे कम्युनिस्ट पार्टिर डाक' इत्यादि समेत अनेक रचनाएँ ज़ब्त की गई. इनकी सूची निम्नलिखित हैः

1.3.1 भारतीय साहित्य

उड़िया :

1. बालासूरे कांग्रेस कमेटी . राधामोहन राणा ; आंग्लो संस्कृत प्रेस , कलकत्ता
2. दशवर्षारा उड़िसा – हरेकृष्ण मेहताब , कर्म मन्दिर, 1935

पंजाबी :

1. जीवन वृत्तांत;मास्टर मोट्ठा सिंह जी – गुरूमुख सिंह , सेवक बुक एजेंसी, जालनधर 1923
2. जीवन चरितेर;बाबा गुरदीत सिंह जी – हीरा सिंह ('दर्द') अकाली एजेंसी , लाहौर 1923
3. शहीदी जीवन – कृपाल सिंह ('पंछी'), आजाद खालसा परदेशी प्रेस, अमृतसर 1930
4. कृति लहर –2, नं0 3 , 15 जनवरी 1939, आजाद प्रेस , मेरठ
5. अकाली ते परदेशी–1 नं0 203 2 अप्रैल 1923, ओंकार प्रेस, अमृतसर

सिन्धी :

1. कम्यूनिस्ट – 3 ; 5 जून 1940
2. कम्यूनिस्ट –1 ; 5 मई 1940
3. बन्दी जीवन – सचीन्द्रनाथ सान्याल ; अग्नानिप्रिंटिंग वर्कर्स : करांची 1915 (सिन्धी)

तमिल :

1. राष्टपति सुभाषचन्द्र बोस – टी. एस. चोकालिंगम् ; मद्रास एलियंस 1943
2. बैरीस्टर वीर सावरकर – दीनाकरण तिरू ; वी. सुब्बाराय्युलू नायडू प्रेस, 1940
3. कांग्रेस चरित्रम् – एम. एस. सुब्रमणयं अय्यर ; मद्रास एलियंस 1935
4. सरदार भगतसिंह चरित्रम् – एम. एन. मुथ्थुकुमार स्वामी('पालावार') ; तिरूप्पाथिरीपुलीयुर : कांडालूर एजेंसीज 1931
5. भगतसिंह – टी. एस. कनक साबाई; मद्रास 1931 तेलगू :

तेलगू :

1. विप्लव युगामु – क्रान्ति कुमार ; मद्रास : क्रान्ति प्रसाद , 1941
2. भारते स्वातन्त्रा प्रथमा युद्धामु – पी. एस. आचार्य ; सत्यपुरोहित संघामु, 1939
3. गांधी महात्मुनि निरबांधमु – गिरिधर शुक्ला , वेंकटसुब्बीयाह गोरापति , मूसलीपत्तम् : कृष्ण मुद्राखरशाला , 1922
4. भारतदेशा स्वातन्त्रम् – सी. एफ. आन्द्रेव्स ; उपेन्द्र प्राचुरानालायामु, मद्रास ; 1921
5. सी. एफ. आन्द्रेव्स– पूर्णस्वातन्त्रम्, कोणा वेंकटारायाशर्मा. पेडाचेरूकुरू : के. वी शर्मा , 1923
6. विप्लव युगामु – क्रान्ति कुमार ; मद्रास : क्रान्ति प्रसाद , 1941

बंगाली :

1. विप्लावी अम्बांनी मुखर्जी– राखालचन्द्र घोष ; काशी प्रिंटिंग प्रेस, 1936
2. कारागारे बन्दी स्वाधीनता जोद्दार अभाव अभिजोगेर प्रतिकार चाई ; कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया , 1940
3. देशेर डाक – ज्ञानन्जन नियोगी ; बंगीया प्रादेशिक समीति, कलकत्ता ,1928
4. नवम्बर विप्लव दिवसे कम्यूनिस्ट पार्टिर डाक – भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी. बंगाल कमेटी , 1940
5. पाथ समस्या ओ अमादेर कर्तव्य कृषक सर्कुलर नं0 5 ; बंग कम्यूनिस्ट प्रादेशिक कमेटी , 1941
6. छत्र सम्बादिका; नं0 1 , अगस्त 1940 , छत्र फेडरेशन, कलकत्ता
7. छत्र सम्बादिका; नं0 2, 1 जुलाई 1940, फेडरेशन, कलकत्ता
8. प्रादेशिक राजनीतिक पत्र ; नं0 1, 1940 ; बंग प्रादेशिक कम्यूनिस्ट कमेटी.
9. प्रस्तुत हवो ; राजनीतिक सर्कुलर नं0 4, भरतीय कम्यूनिस्ट पार्टी , बंग प्रादेशिक कमेटी ; 1940
10. राज बंदिरा आज 11 दिन उपवासे तादेर जान्या अपनी की कार्चै , 1940
11. काकोरी षणजन्त्रा – मानिन्द्र नारायण राय ; कलकत्ता 1929

गुजराती :

1. 1857; बलवानी बिजि बाजु – चुन्नीलाल पुरूषोत्तम , प्रस्थान कार्यालय , अहमदाबाद 1928
2. भाथी – चन्द्राभाई भट्ट ; नवीं दुनियां कार्यालय, अहमदाबाद 1939
3. क्रान्तिने मार्गे– प्रभाकर लाल बिहारी ; प्रस्थान कार्यालय , अहमदाबाद , 1931
4. दर्शकः1857 ; ड्रामा आन म्यूटिनी आफ 1857, सौराष्ट्र कार्यालय, रणपुर 1935
5. जलियांवाला दर्शक : सौराष्ट्र कार्यालय मंदिर, रणपुर, 1934
6. धर्मयुद्धना रहस्य – रणछोड़जी मिस्त्री. केसरबाई ; प्रस्थान कार्यालय , अहमदाबाद 1930
7. मुस्लिम गुजरात; पार्ट–4, नं0–35, 30 मई 1941 , मुस्लिम गुजरात प्रेस, सूरत
8. शहीद भगतसिंह जी – भद्रकुमार यागनिक ; बसंत प्रिंटिंग प्रेस , अहमदाबाद , 1931
9. सत्याग्रह आने असहयोग –त्रयंबकलाल मानेकलाल शुक्ला ; सस्तुसाहित्यवर्धक कार्यालय , अहमदाबाद, 1921
10. सत्यजीवन ; पार्ट–2 ,नं0–1, चन्दूलाल एम. मुदी , भारत महिलाशाम प्रेस : बाम्बे , 1925
11. उर्मि ; पार्ट–10 , नं0–1,अप्रैल 1940 , भारतीय साहित्य संघ : अहमदाबाद
12. आजकालो सुधारो रामानिय . भयंकरता मुम्बई ; गुजराती प्रिंटिंग प्रेस ,1909 (गुजराती)
13. सत्संग; 3 नं0 20 ,16 मई 1912 , सूरत (गुजराती).

कन्नड :

1. नादा गुड़ी – कृष्णहरि कुलकर्णी ; कर्नाटक प्रिंटिंग वर्कस, धारवाढ़ 1931
2. महारानी कित्तूर चान्नामा – शाष्त्री, श्रीकण्ठ और नालावाड़ी ; गड़ग, हुैसनासाब राजासाब अलाबख्श अन्नीगेरी, 1931

मलयालीः

1. अगस्त बाथिनु मुम्बा ; सरस्वती इलेक्ट्रिक प्रिंटिंग एंड पब्लिशिंग हाउस, त्रिचूर 1942

मराठी :

1. अंसार , पार्ट–4, नं0–52 13 दिसंबर 1940, अमीरूद्दीन एम. काजी
2. लोखण्डी मोर्चापार्ट–1, नं0–2, 15 जून 1939, एम. के. डाम्ले
3. शकुन्तल – एम. सी. फड़के , कन्टीनेंटल बुक सर्विसः पूने 1943
4. बरवे , अननतवर्मन. संगीत महाराणा प्रताप सिंह नाटक, राजीव श्रीधर गोण्डालेकर : पूने 1909 (मराठी)
5. जीनतमहल – भागवत, अनंतनारायण , पूने : एम. पी. देवल 1908 (मराठी)
6. लोहभीम – वी. पी. साठे ; जय विजय छापखना ,बाड़ोद .1909 (मराठी)
7. श्रीकृष्ण चरित्र पूर्वार्धि;आत्मोद्धार –वी. पी. साठे ; जय विजय छापखना , बाड़ोद . 1907 (मराठी)
8. तिलकांचा जयजयकार– एस. जी. पुरोहित , पूने 1908 (मराठी)

उर्दू :

1. असीशन–ए–वतन – मुश्ताक लखनवी , विद्या भण्डार प्रेस , लखनऊ 1931
2. यादें रफ्तागाँ – रहमतुल्लाह महाज़ीर ; मुहम्मद इब्राहिम भट्ट, गुरूदासपुर 1938
3. पयामे जंग, पार्ट–1, नं03– इकबाल सिंह, लाहौर, 5 फरवरी 1930
4. जमींदार ; पार्ट–18, नं0– 260, मंसूर प्रेस , लाहौर, 8 सिम्बर 1931
5. जेल से बहार का हफ्ता , जवाहर प्रेस, दिल्ली , 1930
6. ख़िलाफत ; पार्ट–2, नं0–51, –अब्दुल घनी , खिलाफत प्रेस, बाम्बे, 15 मार्च 1923
7. मजदूर–किसान ; पार्ट–1, नं0–7, – रतन सिंह , कीर्ति प्रेस , अमृतसर , 14 जून 1931
8. तकरीर–ए–अजीत – लालचन्द फ़लक ; लाहौर सेवक प्रेस 1909 (उर्दू)

अंग्रेजी :

1. भवानी दयाल सन्यासी; ए पब्लिक वर्कर ऑफ साउथ अफ्रीका – प्रेम नारायण अग्रवाल , इण्डियन कोलोनियल एशोसिएसनः इटावा , 1939
2. बुलेटिन ऑफ इन्फारमेशन – ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी : इलाहाबाद 1930
3. एन अटैक ऑफ द इण्डियन रूपी – गोवा कांग्रेस कमेटी , बाम्बे 1944
4. यंग सोशलिस्ट लैंग्वेज – एम. एन. रॉय (लाइफ स्केच ऑफ एम. एन. राय), 1935
4. ऑनवर्ड; स्पेशल पार्ट–1, नं0–3 ओंकार प्रेस, अमृतसर , 23 फरवरी 1923 (साप्ताहिक)
5. रिवोल्यूशनरी ; पार्ट–1, नं0–1 , 1जनवरी 1925

6. डिक्लेरेशन ऑफ इंडिपेंडेंस ; टू द डेलिगट्स ऑफ द 44 सेशन ऑफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस एट लाहौर , दिसंबर 1929 , जागरण प्रेस : चन्दननगर
7. बन्देमातरम् – हरि रघुनाथ भागवत ; पूना ,1909 (अंग्रेजी)
8. लिबर्टी – 20 जुलाई 1913 ; (अंग्रेजी)
9. कुमार सिंह ; 10 मई 1910 (अंग्रेजी)
10. इण्डियन वार ऑफ इंडिपेंडेंस ऑफ 1857 . एन. इण्डियन नेशनलिस्ट, लंदन 1909 (अंग्रेजी)

असमी :

1. कम्यूनिस्ट इश्तिहार ; नं0–1, कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया . आसाम प्रादेशिक शाखा
2. समाजतन्त्रवाद किया लागो – पन्नालाल दासगुप्ता , प्रगति प्रकाश भवन : गुवाहाटी

1.3.2 हिन्दी में प्रतिबंधित साहित्य का इतिहास

हिन्दुस्तान में ब्रिटिश राज की स्थापना और उसके विस्तार के साथ प्रतिबंध का इतिहास भी सामने आता है. अपने शुरुआती दिनों से ही नियंत्रण स्थापित करने के उद्देश्य से अंग्रेजों ने ऐसे नियमों पर विचार व उनके निर्माण पर ध्यान दिया, जिसके सहारे उनकी प्रगति के रास्ते सुगम हों. इस कड़ी में समय–समय पर अनेक कानूनों को तैयार किया गया , जो उनके विरोधी तत्वों पर अंकुश लगाते थे. एक ओर ऐसे कानून बने जिनके सहारे राजनैतिक स्थिति सुदृढ़ की जा सके, दूसरी ओर सामाजिक रुपरेखा को ध्यान में रख कर कानून बने ताकि साम्राज्य विस्तार में मदद मिले. आर्थिक पक्ष पर एकाधिकार स्थापित करने के लिए भी अनेक नियम लागू हो गए. यहाँ तक कि धार्मिक भावनाओं को भी नहीं बख्शा गया. यह ऐसा समय था जब बोलना, लिखना–पढ़ना भी खतरनाक था. प्रेस कानूनों की लम्बी सूची से ज्ञात होता है कि इस दौर में अभिव्यक्ति के कितने खतरे थे. आगे प्रेस कानून के साथ भारतीय दंड संहिता भी जोड़ दी गई. इन नियमों के उल्लघंन पर कड़ी सजा दी जाती थी. ऐसी पुस्तकों, समाचार–पत्रों, पैम्फलेटों, चित्रों को छापने की मनाही थी जिससे स्वतंत्रता की भावना का प्रसार होता था. या जिनमें ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ कोई बात लिखी गई हो. लेखकों, प्रकाशकों के घरों की तलाशी, जमानतें जारी करना, प्रकाशित सामग्री को जब्त कर लेना, उन्हें बेचने, पढ़ने पर पाबंदी आम बात सी हो गई थी. इन सब के बावजूद लेखक समुदाय बड़ी लगन और हिम्मत के साथ आजादी की लड़ाई को एक मुकाम तक पहुँचाने के लिए जुटा रहा. प्रतिबंध के कानून सभी भाषाओं में छपी सामग्री पर लागू होते थे. इस कारण जब्त की गई सामग्री की सूची बहुत लम्बी है. अनेक सामग्रियां सरकार द्वारा ढूँढ कर जला दी गई.

बात जहाँ तक हिन्दी भाषा में जब्त की गई सामग्री की है तो जहाँ तक सूचना प्राप्त हो सकी उसके अनुसार विवरण प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है. 'हिन्दी का प्रथम दैनिक समाचार सुधावर्षण' के सम्पादक श्यामसुंदर सेन पर राजद्रोह का आरोप लगाया गया. इस पत्र का प्रकाशन 1854 में कलकत्ता से हुआ था. ''१३ जून १८५७ को लॉर्ड केनिंग ने भारत के समाचार पत्रों पर एडम रेगूलेशन पुनः लागू कर दिया गया था, जिसके कारण अनेक समाचार–पत्र बन्द हो गए. इस कानून को 'गलाघोंटू कानून' की संज्ञा दी गई.''[92] इस घोषणा के चौथे रोज यानी 17 जून 1857 को श्यामसुंदर सेन को कोर्ट में पेश होना पड़ा.''संपादक श्यामसुंदर सेन पर आरोप था कि उन्होंने अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर का एक फ़रमान छापा, जिसमें भारतीयों से कहा गया था कि वे भारत से अंग्रेजों को बाहर निकाल दें.''[93] इसी प्रकार बालकृष्ण भट्ट की पत्रिका 'हिन्दी–प्रदीप' पर भी प्रेस कानून लगा कर इसे बंद कर दिया गया. इस पत्रिका ने राष्ट्रीय विचारों के प्रचार–प्रसार में बड़ी भूमिका निभाई. ब्रिटिश सरकार को यह स्वीकार न था. इसमें पं. माधवशुक्ल की कविता प्रकाशित करने के अरोप में इसे जब्त कर लिया गया. ''इलाहाबाद का हिन्दी प्रदीप जिसके संपादक श्री बालकृष्ण भट्ट थे. यह मासिक १ सितम्बर १८७७ को आरंभ हुआ और सन् १६0६ में 'जरा सोचो तो यारों, यह बम क्या है?' नामक कविता छापने पर इसे नए प्रेस कानून के अंतर्गत बंद कर दिया गया.''[94]

इसके पश्चात् अल्मोड़ा अखबार भी बंद कर दिया गया. अंग्रेजी अफसर द्वारा कुली पर गोली चलाने पर इस अखबार ने विरोध प्रगट किया था. परिणामस्वरुप इसे प्रतिबंधित किया गया. ''सन् १८७१ में 'अल्मोड़ा समाचार' शुरु हुआ. सन् १६१८ में अंग्रेज कलेक्टर के विरुद्ध समाचार छापने के आरोप में इसे बंद करा दिया गया.''[95] अल्मोड़ा समाचार के बंद होने का विवरण कुछ इस प्रकार है, ''सन् १६१८ का होली अंक बड़ी सजधज के साथ निकला. 'जी हजूरी होली' नामक ग़जल बड़ी लोकप्रिय हुई. इसने जी हुजूरों व अफसर जगत् में हलचल मच गई. इस अंक में राय बहादुरों के ऊपर कटाक्ष तो थे ही, डिप्टी कमिश्नर लोमस के विषय में यह समाचार भी छपा कि उसने निरपराध कुली के ऊपर गोली चलाई है. वस्तुतः लोमस शासन कार्य की अवहेलना कर स्याही देवी के जंगलात के बँगले में सुरा–सुंदरी में डूबा रहता था. एक कुली ने शराब व सोडा लाने में विलंब किया तो भारतीय को अपदार्थ मानने वाले साहब ने क्रोधित होकर गोली चला दी. कुली बुरी तरह घायल हो गया. लोमस ने सफाई दी कि मुर्गी मारने में कुली को छर्रे लगे. किंतु अप्रैल माह में मुर्गी का शिकार खेलना मना था. इसलिए यह युक्ति खोखली थी. इतना भारी अन्याय देख कर भी चुप रह सकने वाले व्यक्तियों में दादाजी नहीं थे. लोमस द्वारा झूठी सफाई दिए जाने पर उन्होंने सही हाल जानने के लिए लोमस को पत्र भेजा. 'अल्मोड़ा अखबार' में यह प्रश्न उठाया गया कि यदि छर्रे

मुर्गी को मारने में लगे तो स्वयं कानून के रक्षक ने मुर्गी का शिकार न खेलने का कानून क्यों तोड़ा? अखबार के प्रकाशक एवं मुद्रक श्री सदानंद सनवाल अत्यंत सीधे व सज्जन व्यक्ति थे. लोमस ने दो राजभक्तों द्वारा उन्हें बुलवाया और धमकी देकर इस्तीफा लिखवा लिया. अतः अखबार बंद हो गया. एक हजार रुपये की जमानत इसे फिर से चलाने के लिए माँगी गई. डायरेक्टरों की मीटिंग में आठ सदस्य संपादक के पक्ष में व आठ विरुद्ध थे. कोई निर्णय न होने से दादा जी ने इस्तीफा दे दिया.''[96] 1885 में प्रकाशित होने वाले 'राजपूताना गजट' के संपादक को भी जेल जाना पड़ा था. यह पत्र हिंदी व उर्दू दोनों भाषाओं में प्रकाशित होता था. ''इसके संपादक थे मौलवी मुराद अली 'बीमार'. यह बारह पृष्ठों का पत्र था और इसमें चार पृष्ठ हिंदी के होते थे. यद्यपि पत्र ब्रिटिश भारत क्षेत्र अजमेर से निकलता था, परंतु रियासती अत्याचारों का भंड़ाफोड़ करना इसका मुख्य उद्देश्य था. इसलिए इसके संपादक को जेल जाना पड़ा'''.[97]

इसके अलावा प्रयाग से 1909 में प्रकाशित होने वाले पत्र 'कर्मयोगी' से भी जमानत माँगी गई. परिणामस्वरुप पत्र का प्रकाशन बंद हो गया. इस पत्र के संपादक श्री सुंदरलाल जी थे. यह पत्र बड़ा लोकप्रिय था. ''पाँच महीने तक यह पत्र पाक्षिक रहा. उसके बाद (अगले वर्ष बसंत पंचमी से) अपनी लोकप्रियता के कारण यह साप्ताहिक हो गया. परंतु जब सन् 1910 का प्रेस कानून पारित हो गया और इस पत्र से तीन हजार रुपए की जमानत माँग ली गई तो यह पत्र बंद हो गया.''[98] पत्रों के जब्त होने की सूचना सरकारी रिपोर्टों से भी मिलती है. ''भारत सरकार की रिपोर्ट में 'कर्मयोगी', 'स्वराज' और 'हिन्दी प्रदीप' को सन् १६0८ तथा १६१0 के कानून के अंतर्गत बंद करने का उल्लेख किया गया था.''[99]

लोकमान्य तिलक के विचारों के प्रकाशन के आरोप में 'हिंदी केसरी' के संपादक पर भी मुकदमा चलाया गया. ''सन् १६0७ में ही नागपुर से हिंदी केसरी निकला. इसके प्रकाशक डॉ. बालकृष्ण शिवराम मुंजे थे. इसका उद्देश्य लोकमान्य तिलक के 'केसरी' के लेखों को हिंदी में प्रस्तुत करना था. सन् १६0८ में लोकमान्य तिलक को जिस राजद्रोहात्मक लेख 'ये उपाय टिकाऊ नहीं हैं' के कारण छह वर्षों की सजा दी गई थी, वह लेख 'हिंदी केसरी' में भी छपा था. इसलिए उसके संपादक श्री माधवराव सप्रे पर राजद्रोह का मुकदमा चला. बाद में हिंदी केसरी बंद हो गया.''[100] इसी प्रकार गणेश शंकर 'विद्यार्थी' का प्रसिद्ध पत्र 'प्रताप' भी प्रेस कानून का शिकार हुआ. यह कानपुर से प्रकाशित होता था. ''श्री गणेश शंकर विद्यार्थी ने देवात्थान एकादशी ६ नवंबर, १६१३ को कानपुर से इसका प्रकाशन प्रारंभ किया.''[101] 'प्रताप' के आक्रामक रवैये से उसे कई बार चेतावनी मिली तथा कई बार जमानत माँगी गई. पुलिस ने गणेश शंकर विद्यार्थी के घर पर छापा मारा.

कार्यालय की तलाशी ली गई. ''प्रताप का प्रकाशन प्रारंभ होने के चंद महीने बाद ही प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया. और 'भारत रक्षा कानून' लागू हो गया. 'प्रताप' को भी इसका दुष्परिणाम भोगना पड़ा. 'प्रताप' ने जनवरी १९१५ का एक अंक 'राष्ट्रीय अंक' के नाम से प्रकाशित किया, जिसमें गांधी जी पर श्री मैथिलीशरण गुप्त की लिखी हुई एक कविता 'अफ्रीका प्रवासी भारतवासी' छपी. फीजी में प्रवासी भारतीयों की विषम स्थिति पर 'प्रताप' में बराबर ध्यान दिया गया. उसके अप्रैल १९१५ के अंक में लक्ष्मण सिंह का 'कुली–प्रथा' नाटक छपा, जिसमें फीजी के प्रवासी भारतीयों की दुर्दशा का चित्रण था. प्रताप कार्यालय ने इस नाटक को अलग से पुस्तक के रुप में भी प्रकाशित किया. इस अंक के प्रकाशित होते ही पुलिस ने प्रताप प्रेस तथा श्री गणेश शंकर विद्यार्थी और श्री शिवनारायण मिश्र के मकान पर छापा मारा. कार्यालय में दो अन्य पुस्तकें बिक्री के लिए रखी हुई थीं. पुलिस उन्हें उठा कर ले गई और ग्राहकों के पतों के रजिस्टर भी ले गई. इसके बाद जो एजेंट 'प्रताप' मगाँते थे उन पर दबाव डाला गया कि वे एजेंसी समाप्त कर दें. कई ने तो समाप्त भी कर दी. 'कुली–प्रथा' नाटक जब्त कर लिया गया. और ३0 अक्तूबर १९१६ को प्रताप प्रेस से एक हजार रुपये की जमानत माँगी गई. इसके कारणों में लिखा गया कि प्रेस से आपत्तिजनक साहित्य मिला है तथा वहाँ से प्रकाशित 'कुली–प्रथा' नामक पुस्तक को सरकारी ने जब्त कर लिया है.''[102] इसके बाद 'प्रताप' से भी जमानत माँगी गई. ''जब 'प्रताप' ने चंपारण में गांधी जी के सत्याग्रह समाचार छापे तो फिर ९ अगस्त १९१७ को विद्यार्थी जी को चेतावनी दी गई. कि वे ऐसे समाचार न छापें. 22 अप्रैल १९१८ को एक कविता छापने के आरोप में एक हजार रुपये की जमानत जब्त कर ली गई.''[103]

इसके अलावा जब मुंशीगंज में किसानों की सभा के दौरान सरदार वीरपाल सिंह ने गोलियाँ चलाई, जिसमें किसानों की मौत हो गई. 'प्रताप' ने इस घटना को प्रकाशित किया. ''फलतः सरदार वीरपाल सिंह ने नोटिस भेजा कि श्री गणेश शंकर विद्यार्थी और श्री शिवनारायण मिश्र इस समाचारों और अग्रलेखों के प्रकाशन के लिए माफी माँगें वरना उन पर भारतीय दंड विधान की धारा ५00 के अंतर्गत मुकदमा चलाया जायेगा.''[104] माफी न माँगने पर उन पर मुकदमा चला और सजा मुकर्रर की गई. ''मजिस्ट्रेट महोदय ने ३0 जुलाई १९२१ को दोनों अभियुक्तों श्री गणेश शंकर विद्यार्थी और श्री शिव नारायण मिश्र को तीन–तीन महीने की कैद की सजा दी और पाँच–पाँच रुपए जुर्माना कर दिया.''[105] यही नहीं, ''मुकदमे के दौरान विद्यार्थी और मिश्र जी से दफा १0८ के अंतर्गत पंद्रह–पंद्रह हजार रुपए के जमानती मुचलके माँगे गए थे.''[106]

पटना से प्रकाशित होने वाले पत्र 'पाटलिपुत्र' को भी सरकार की कुदृष्टि का शिकार होना पड़ा. ''सन ्१९१३ में ही पटना से एक पत्र निकला. इतिहास और पुरातत्व के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल का नाम इसके साथ जुड़ा हुआ है. इस पत्र का नाम था–'पाटलिपुत्र'. इसका प्रकाशन हथुआ नरेश के पटना में स्थापित 'एक्सप्रेस प्रेस' से होता था. इस पत्र ने भी राष्ट्रीयता को जाग्रत करने में अभूतपूर्व योगदान दिया. जब डॉ. जायसवाल यूरोप चले गए तो बाबू सोना सिंह चौधरी इसके संपादक हुए. असहयोग आंदोलन को समर्थन देने के अपराध में ३ मई १९२१ को शासन के आदेश से 'पाटलिपुत्र' को बंद कर दिया गया.''[107] 1913 में अमेरीका में 'गदर–पार्टी' स्थापना के साथ–साथ गदर पत्र का संपादन किया गया. ब्रिटिश सरकार ने उस पर सख्त पाबंदी लगाई. ''गदर पार्टी की स्थापना के साथ 'गदर' पत्र की स्थापना हुई, जिसका पहला अंक नवंबर १९१३ में प्रकाशित हुआ. 'गदर' पत्र के अंक हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी, गुजराती आदि विभिन्न भाषाओं में निकले और भारत भेजे गए. ब्रिटिश सरकार उस पत्र से इतनी दुःखी थी कि उसकी प्रति रखना भी अपराध माना जाने लगा.''[108] इसी प्रकार 'भविष्य' नामक पत्र भी जमानत न अदा कर पाने की सूरत में बंद कर दिया गया. ''श्री सुंदरलाल ने देश के तेवर को देख कर सन् १९१९ में 'भविष्य' नाम से एक साप्ताहिक पत्र निकाला. उससे पहली बार तीन हजार रुपए की जमानत माँगी गई, फिर पाँच हजार रुपए की, फिर दस हजार रुपए की. तीनों बार सर तेजबहादुर सप्रू ने 'भविष्य' की ओर से इलाहाबाद उच्च न्यायालय में चुनौती दी; परंतु जमानत का आदेश रद्द नहीं हुआ और तीस हजार रुपए की जमानत न देने के कारण 'भविष्य' अंततः बंद हो गया.''[109] 1919 में प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्र 'विजय' भी जमानत की रकम न दे पाने के कारण बंद हो गया. ''यह पहला राष्ट्रीय पत्र था, जो खूब बिकने लगा. उस पर सरकार की कोप दृष्टि पड़नी ही थी, जमानत माँगी गई और सेंसरशिप लगाया गया. फलतः पत्र बंद करना पड़ा.''[110]

सन् 1920 में कलकत्ता से श्री अंबिकाप्रसाद वाजपेयी ने 'स्वतंत्र' नामक पत्रिका निकालनी शुरु की. परंतु 1930 के एक्ट के अनुसार उसे भी बंद कर दिया गया. ''स्वतंत्र भी सन् १९३0 तक चला. तब (सन् १९३0 में) प्रेस एक्ट की चपेट में आकर जमानत अदा न कर पाने पर उसे बंद होना पड़ा.''[111] खंडवा से प्रकाशित होने वाला पत्र 'मध्य भारत' भी सेंसरशिप की शिकार हुआ. ''श्री आगरकर ने सन् १९२३ में खंडवा से 'मध्य भारत' का प्रकाशन प्रारंभ किया. जब भोपाल तथा अन्य राज्यों ने उसके प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया तो पत्र बंद करना पड़ा''.[112] उस समय जो भी पत्र या सामग्री प्रकाशित होती सरकार की नजरों से बचना मुश्किल होता था. ऐसी न जाने कितनी सामग्रियां जबत की गई. न जाने कितनों से जमानत माँगी गई. '' उन समाचार पत्रों और अखबारों के विरुद्ध, जो प्रेस एक्ट से पहले विद्यमान थे, प्रेस एक्ट के अधीन जिस प्रकार की कार्रवाई की उनकी संख्या

लगभग एक हजार यानी नौ सौ इक्यानबे थी. इनमें से दो सौ छियालीस को चेतावनी दी गई, जो इस बात के लिए काफी थी कि हमेशा से उनके लिए उनकी उन्नति और विस्तार को रोक दे तथा छोटे उद्योगों को अपंग बना दे. शेष सात सौ पाँच से भारी जमानतें माँगी गई और वे जब्त कर ली गई. वर्ष १९१७ तक बाईस समाचार पत्रों में से अठारह का प्रकाशन जमानत माँगने के बाद ही बंद हो गया. इसी तरह जिन अट्ठासी पुराने प्रेसों से, जो समाचार पत्र भी छापते थे और अन्य छपाई का काम भी करते थे, जमानत माँगी गई तो विवश होकर चालीस को बंद करना पड़ा. इस अधिनियम के लागू होने से पहले पाँच वर्षों के अंदर सरकार ने पाँच लाख रुपए की जमानतें जब्त की. १९१८ के एक सरकारी आंकड़े के अनुसार अधिनियम के अंतर्गत पांच सौ समाचार पत्रों को जब्त कर लिया गया. ''[113]

दिल्ली से प्रकाशित होने वाले एक अन्य पत्र को सरकारी आदेश से बंद कर दिया गया. ''दिल्ली से सन् १९२५ श्री रामचंद्र शर्मा ने 'महारथी' नामक मासिक पत्रिका शुरु की. इस पत्र के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. इस कारण इस पत्र से जमानत माँगी गई और संपादक को नौ महीने की सजा हुई. ''महारथी के शक्ति अंक, राजपूत अंक, प्रताप अंक, आदि स्फूर्तिदायक विशेषांक निकले थे. चौवन अंक निकलने के बाद अप्रैल १९३0 में जब प्रेस अध्यादेश लागू हो गया और 'महारथी' से जमानत माँगी गई तो उसका प्रकाशन बंद कर दिया गया. श्री रामचंद्र शर्मा ने 'महारथी' को ४ जून १९३0 से दैनिक पत्र के रुप में छापना शुरु कर दिया और लाला लाजपतराय की दूसरी पुण्य तिथि पर २0 नवंबर १९३0 को उनके नाम से एक विशेषांक निकाला. इसी विशेषांक में प्रकाशित 'कफन की कीलों पर' शीर्षक अग्रलेख लिखने के कारण शर्मा जी को नौ महीने की सजा हुई. ''[114] मई 1931 में 'अभ्युदय' का भगतसिंह विशेषांक प्रकाशित हुआ. यह अंक जब्त किया गया''[115] ''अभ्युदय का ही अंक फिर से 18 नवंबर 1931 का किसान अंक प्रान्तीय सरकार द्वारा जब्त किया गया.''[116] 1932–33 में शंखनाद के अंक राजद्रोहात्मक स्वीकार करते हुए जब्त घोषित किए गए.''[117] कानपुर से प्रकाशित होने वाले पत्र वर्तमान भी जब्त किया गया। इसके संपादक रमाशंकर अवस्थी थे. इसका प्रकाशन 22 अक्टूबर 1920 को हुई थी. राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थन करने के कारण सरकार ने कई बार चेतावनी दी तथा जमानत के आदेश जारी किए. ''6 फरवरी 1934 के 'वर्तमान' के अंक में पं. जवाहरलाल नेहरु के 'पूर्वी बंगाल में राजनीतिक भूकम्प' शीर्षक लेख (जिसमें बंगाल में सरकारी दमन नीति पर विस्तृत प्रकाश डाला गया था.) को प्रकाशित करने के अपराध में 'वर्तमान' का उक्त अंक सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया और पत्र से पन्द्रह सौ रुपए की जमानत मांगी गई.''[118] इसके अलावा उसके संपादक पर भी मुकदमा चलाया गया. ''वर्तमान के प्रकाशन में तीन वर्ष बाद सोलह अग्र लेखों पर राजद्रोह भड़काने

का आरोप करते हुए श्री रमाशंकर अवस्थी पर मुकदमा चलाया गया और सन् १९२४ में उन्हें दो वर्ष की सपरिश्रम कारावास की सजा मिली.''[119] ''लखनऊ से 1927 में सुधा का प्रकाशन शुरु हुआ. इसके संपादक दुलारेलाल भार्गव थे. यह मासिक पत्र था. 'भगतसिंह के लिए' शीर्षक कविता प्रकाशित होने के कारण जुलाई 1931 का अंक सरकार द्वारा जब्त घोषित किया गया. ''[120] होम पोलिटिकल फाइल, राष्ट्रीय अभिलेखागार से प्राप्त जानकारी के अनुसार 'हलधर' नामक पत्र भी 15 तथा 30 जुलाई 1939 का अंक भारतीय दंड़ विधान की धारा 153 ए और 124 ए के तहत् उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जब्त किया गया.''[121]

आगरा से एक और महत्वपूर्ण पत्र 'सैनिक' का प्रकाशन हुआ. इसके संपादक कृष्णदत्त पालीवाल थे. इसकी शुरुआत 1 जून 1925 को हुई. ब्रिटिश सरकार ने इस पत्र से आतंकित होकर इस पर कई बार जब्ती के आदेश दिए. यह मुख्यतः राजनीतिक पत्र था. इसने राष्ट्रीय चेतना जगाने में पुरजोर योगदान दिया. ''सैनिक' पत्र से अनेक बार जमानतें मांगी गई और जब्त हुई. बीच–बीच में उन्हें यह पत्र बंद करना पड़ा और जब सन् १९४१ में महात्मा गांधी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारंभ किया तो श्री विनोवा भावे की गिरफ्तारी का समाचार छापने के अपराध में 'सैनिक' कार्यालय पर सरकार ने ताला लगा दिया.''[122] इसका विवरण इस प्रकार है, ''प्रातः काल का समय था. श्री पुरुषोत्म विजय ड्यूटी पर थे. एक पुलिस इंस्पेक्टर कार्यालय को बंद करने का आदेश लेकर कुछ सिपाहियों के साथ आया. मुद्रक तथा प्रकाशक को आदेश दिखाया गया. मैं उस समय कार्यवश 'सैनिक' कार्यालय में गया हुआ था. मेरे सामने ही श्री श्रीपति लाल दूबे को आदेश थमा दिया गया और सबको बाहर निकाल कर प्रेस पर ताला लगा दिया गया.''[123] प्रयागराज से प्रकाशित होने वाले पत्र 'नया हिंदूस्तान' को भी साम्राज्यवादी शक्तियों का कोपभाजन बनना पड़ा. इसके संपादक सज्जाद जहीर व शिवदान सिंह चौहान थे. सितंबर 1939 में इस पत्र को प्रतिबंधित घोषित किया गया. गोरखपुर से 6 अप्रैल 1919 को प्रकाशित होने वाला पत्र 'स्वदेश' को भी जब्त घोषित किया गया. 1924 में पण्डेय बेचनशर्मा उग्र के संपादन में इसका विजयांक निकाला गया जिसके कारण यह जब्त हुआ. ''पाण्डेय बेचनशर्मा उग्र पर ('स्वदेश के विशेषांक का संपादन करने के कारण') ताजिरात हिन्द की दफा 124 के अनुसार राजद्रोह का मुकदमा चल रहा था, वह आज खत्म हो गया. जिला मजिस्ट्रेट ने उनको नौ महीने सख्त कैद की सजा दी है''[124] टोडर सिंह तोमर के पत्र 'वालंटियर'(कानपुर) को भी जब्त किया गया.

सन् 1922 में 'चांद' पत्रिका का प्रकाशन हुआ. इसके संपादक रामरख सिंह सहगल थे. इसका फांसी अंक प्रतिबंधित किया गया. फांसी अंक का प्रकाशन नवंबर 1928 में हुआ. फांसी अंक के

संपादक आचार्य चतुर्सेन शास्त्री थे. इन पर इस कारण मुकदमा भी चलाया गया. यही नहीं, लाहौर से प्रकाशित होने वाले पत्र 'बलिदान' के नव वार्षिक अंक को भी सरकार द्वारा जब्त घोषित किया गया. इस पत्र की शुरुआत धर्मवीर महाराज राजपाल थे. इसमें ऐसी सामग्री प्रकाशित हुई जो सरकार द्वारा काफी आपत्तिजनक मानी गई. आचार्य देवशर्मा 'अभय' एवं भीमसेन विद्यालंकार के सहयोग से 'अलंकार' का संपादन हुआ. दिसंबर 1934 का अंक जब्त किया गया. 'क्रान्ति' (राजाराम शास्त्री) ने सितंबर 1939 तथा अक्टूबर 1939 लगातार प्रतिबंधित किए गए.''[125] क्रांति उस दौर की महत्वपूर्ण पत्रिका थी. इसमें प्रकाशित सभी सामग्री काफी आपत्तिजनक थी. इसने उग्र विचारों के प्रसार में बहुत मदद की. 'भूखेराम की डायरी', 'भगतसिंह और सुखदेव' जैसे लेख काफी चर्चित रहे. इस प्रकार सरकार ने लगातार कई पत्रों , पुस्तकों को जब्त किया.

1.3.3 हिन्दी की प्रतिबंधित रचनाओं की सूची

ग़द्य रचनाएं :

ज़ब्त की गई प्रतिबंधित रचनाओं की सूची निम्नलिखित है–

कहानी :

1. बाग़ी की बेटी– मुनिश्वरदत्त अवस्थी ; चौधरी एण्ड संस , बनारस 1932
2. जवाहर दिग्विजय– श्यामजी पाराशर ; राष्ट्रीय निर्माण ग्रंथमाला 1938
3. क्रांतिकारी कहानियाँ –पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ; साहित्य सेवक कार्यालय , बनारस 1939
4. हड़ताल– ऋषभचरण जैन ; इन्द्रप्रस्थ पुस्तक भण्डार , दिल्ली , 1939

आत्मकथा :

1. काकोरी की भेंट–रामप्रसाद 'बिस्मिल' ; लक्षमण'पथिक' दिल्ली, 1931
2. आजादी के शहीद(आत्मकथा)– त्रिमूर्ती ; नवरत्न साहित्य मण्डल , कानपुर, 1939
3. बन्दी जीवन (2 भाग)–सचीन्द्रनाथ सान्याल ; हिन्दी भवन , लाहौर(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

जीवनी :

1. बलिदान– महाशय राजपाल ; राजपाल एण्ड संस , लाहौर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
2. चन्द्रशेखर आजाद की जीवनी – बलदेव प्रसाद शर्मा ; आदर्श पुस्तक भण्डार, बनारस 1933
3. भारत के दो महात्मा(जीवनी) – धर्मेन्द्र देव शर्मा ; आदर्श हिन्दू प्रकाशन , विराटनगर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
4. यतीन्द्रनाथदास– शिवचरणलाल गुप्त ; गोरखपुर (उ0प्र0) 1939
5. नेताजी के साथी– इमदाद साबरी , 1946
6. सरदार भगत सिंह– के. एल. गुप्ता ; आगरा (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

उपन्यास :

1. पैरोल पर– ब्रजेन्द्रनाथ गौड़ ; शिवाजी बुक डिपो , लखनऊ , 1943
2. ग़दर– ऋषिचरण ; हिन्दी पुस्तक कार्यालय, दिल्ली 1930

इतिहास पुस्तकें :

1. पराधीनों की विजय यात्रा –नवजादिक लाल श्रीवास्तव ; नरेन्द्र पब्लिशिंग हाउस , 1934
2. भारतीय आतंकवाद का इतिहास– चन्द्रशेखर शास्त्री ; एडमैन साहित्य मंदिर, कानपुर , 1939
3. भारत में अंग्रेजी राज्य(2 भाग) – सुन्दरलाल ; चाँद कार्यालय , इलाहाबाद 1929
4. संसार की भीषण राज्य क्रान्तियाँ –शंकरलाल तिवारी ; चौधरी एण्ड संस, बनारस 1939
5. एशिया की क्रान्ति– सत्यनारायण ; सस्ता साहित्य मण्डल, अजमेर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
6. भारत में सशस्त्र क्रांतिचेष्टा का रोमांचकारी इतिहास – मन्मथनाथ गुप्त ; साम्यवादी पुस्तक प्रकाशन मंदिर , प्रयाग 1930
7. भारत सन् 57 के बाद – शंकरलाल तिवारी ; चौधरी एण्ड संस 1939
8. जयहिन्द(1857 से 1945) – सत्यदेव विद्यालंकार ; प्रभात कार्यालय, जयपुर 1945
9. क्रांतिकारी आन्दोलन और राष्ट्रीय विकास ; मन्मथनाथ गुप्त ; लेफ्टविंग पब्लिशिंग हाउस , लखनऊ(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

अन्य प्रतिबंधित सामग्री :

1. भगवान गान्धी – समाज सुधार कार्यालय , लखनऊ (लेखक का नाम और प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
2. राणा निमन्त्रण – गया प्रसाद भरतीय ; कांग्रेस कमेटी , नवाबगंज (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
3. दो माई के लाल पिंजरे में – बी. एल. भार्गव ; कानपुर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
4. आजाद हिन्द फौज – वीरेन्द्र ; हिन्दू कालेज, दिल्ली , 1946
5. भारत में दमनचक्र – मदनमोहन मालवीय ; काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 20 अप्रैल 1932

6. काली करतूतें – महात्मा गान्धी ; शुद्ध खादी भण्डार , कलकत्ता , 1930
7. शहीदों की टोली – प्रबोध चन्द्रा मिश्र और हर्षवर्धन शुक्ला ; मातृभाषा मंदिर, 1939
8. युद्ध और जनता – नरेन्द्र देव ; उ0 प्र0 कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी , लखनऊ (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
9. युवक और स्वाधीनता – रघुनाथ प्रसाद पारसी ; स्वदेश पुस्तक माला , खण्डवा , 1934
10. आजादी के दीवाने – विद्यालंकार शुक्ला ; युगान्तर पुस्तक भण्डार , प्रयाग(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
11. सत्याग्रह युद्ध; सैनिकों के लिए जानने योग्य बातें – नवजीवन प्रकाशन मंदिर : अहमदाबाद (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
12. अगले सात साल ; सन् 1927 से 1931 तक होने वाली खण्ड प्रलय के वर्णन – सत्यभक्त ; सोशलिस्ट बुक शॉप 1924
13. औपनिवेशिक प्रश्न – एस. पी. त्रिपाठी ; काशी विद्यापीठ, काशी(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
14. क्रांति के मंदिर में – इन्द्र ब्रम्हचारी/इन्द्रदेव सिन्हा ; देशबन्धु पुस्तक भण्डार , मैनपुरी, 1929
15. स्वतन्त्रता के प्रेमी – पंजाब धार्मिक मिल , (लेखक का नाम और प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
16. जवालामुखी – गोपीनाथ वैद्य ; कांग्रेस कमेटी , बिजनौर , 1930
17. स्वराज्य मार्ग – एन. डी. लाहोरी ; सहगल एण्ड संस (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
18. शरत साहित्य–धन्ना कुमार जैन ; हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बाम्बे 1931
19. स्वराज के असली सिद्धांत– अयोध्या प्रसाद ; श्रमजीवी साहित्य प्रकाशन , झांसी 1934
20. असहयोग का वृक्ष और महात्मा गांधी–एन. डी. लाहोरी ; सहगल एण्ड संस(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
21. जेल से बाहर के आठ दिन – जवाहरलाल नेहरू ; जवाहरलाल प्रेस , दिल्ली , 1930
22. संघर्ष क्यों – मारवाड़ लोक परिषद , जोधपुर (लेखक का नाम और प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
23. राष्ट्रीय डायरी – जनरल प्रिंटिंग प्रेस , कलकत्ता 1941
24. आजादी की लड़ाई – लक्ष्मीचन्द गुप्त ; शान्ति प्रिंटिंग प्रेस , सहारनपुर 1939
25. राष्ट्र को राष्ट्रपति का संदेश(लेखक और प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
26. भारतीय साम्यवादी डाल – कानपुर(लेखक और प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
27. किसान सुख साधन – देवनारायण द्विवेदी ; काशी पुस्तक भण्डार , 1941
28. देश के नौजवान क्या करें – स्टुडेन्ट यूनियन , कानपुर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
29. कराचीं की कांग्रेस –जीतमल लूनिया ; हिन्दी साहित्य मन्दिर , अजमेर 1931
30. सहचर वृंदा (लेखक का नाम और प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
31. मजदूर–किसान –प्रयागनारायण श्रीवास्तव ; कांग्रेस सोशलिस्ट पब्लिशिंग कम्पनी , बाम्बे 1934
32. जनसमुदाय की रामकहानी – राधाकृष्ण तोषनीवाल ; राजस्थान हिन्द उपासना मंदिर , अजमेर , 1937
33. किसानों के साथ जुल्म –श्रीप्रकाश/वी. एन. तिवारी ; उ0 प्र0 कांग्रेस कमेटी 1931
34. वीर शिवराम राजगुरू (लेखक का नाम और प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
35. नमक पर कैसी बीती ; जाँच कमेटी की रिर्पोट : तहसील कांग्रेस कमेटी, रानीखेत , 1931

36. सरकार की लड़ाई में चंदा मत दो – कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
37. अंग्रेजों से मेरी अपील – महात्मा गांधी ; सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
38. लगान का एक पैसा भी देना पाप है; किसानों के नाम कांग्रेस का हुकुम ; जिला कांग्रेस कमेटी , उन्नाव (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
39. लगान बंद कर दो – संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी , प्रयाग (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
40. मजदूरों , किसानों और गरीबों सब मिलकर एक हो जाओ(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
41. जिन्दा बनो – दत्तात्रेय बालकृष्णन कालेलकर ; शुद्ध खादी भण्डार(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
42. खून का बदला खून , पार्ट–1(लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
43. किसान भइया– रफी अहमद किदवई ; अभ्युदय प्रेस (प्रकाश (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
44. किसान भाइयों के प्रति – जिला कांग्रेस कमेटी, कानपुर(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
45. इंकलाब जिंदाबाद(लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
46. जेल के यात्री – विश्वामित्र कार्यालय, कलकत्ता 1922
47. किसान श्रेणी सजग हो–हर्षदेव ; हर्षदेव भारती भवन , इलाहाबाद (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
48. पुलिस कर्मचारियों से अपील – इन्दूमति गोयनका ; राष्ट्रीय महिला समिति , कलकत्ता(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
49. कैदी दिवस 13 जून 1932 को हड़ताल जुलूस सभा
50. ब्रिटिश अदालत बहिष्कार दिवस 22 अक्टूबर 1932 – काशी सत्याग्रह संग्राम
51. बिहार के पुलिस हड़तालियों की फरियाद – अजितकुमार मित्रा ; पटना (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
52. बलिया दमन विद्रोही दिवस मनाओ – बनारस स्टेट खेत मजदूर यूनियन, बनारस (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
53. चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का भाषण – दिवानगर, जिला गुरदासपुर, 20 जुलाई 1941
54. देश–दशा चित्रावली, नं0–1 ; देव चित्रालय , कलकत्ता(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
55. पुलिस फौज और सी. आई. डी. के हिन्दूस्तानी कर्मचारियों सें अपील – कन्हैयालाल गौतम (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
56. मान्यवर बादशाह की सेवा में अर्ज ; लेख नं0–38 –शिवलाल , 1930 में झांसी से प्रकाशित
57. गुलाम सन्तों के नाम स्वर्ग से पुरखों की चिट्ठी – रामनारायण अग्रवाल ; नेशनल प्रेस , कानपुर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
58. विद्यार्थियों – शम्भूनारायण ; सत्याग्रह बोर्ड , फर्रूखबाद (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
59. महात्मा गान्धी की फौज में भर्ती हो सत्याग्रह सिपाहियों में नाम लिखाओ – सत्याग्रह कमेटी , रायबरेली (लेखक का नाम और प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
60. द्वितीया दोआबा ; किसान सम्मेलन , सभापति का भाषण (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
61. किसानों का कर्त्तव्य : लगान बन्दी ही आपकी मुसीबत दूर करेगी – बैजनाथ कपूर ; जिला कांग्रेस कमेटी, प्रयाग(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
62. पेशावर जाँच समिति की रिपोर्ट – बी. जे. पाटिल ; पेशावर जाँच समिति , 1930

63. पूर्ण स्वाधीनता का महत्वपूर्ण दिवस – कांग्रेस कमेटी : मैनपुरी (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
64. पूर्ण स्वाधीनता दिवस की स्मृति के पास होने वाला दूसरा प्रस्ताव – कांग्रेस कमेटी : मैनपुरी
65. कांग्रेस के प्रस्ताव 1885 से 1931– कन्हैयालाल ; नवयुग प्रकाशन मंदिर 1931
66. प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का किसानों को आदेश; लगान एक पैसा ना दो – सुखदेव पालीवाल ; संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
67. कांग्रेस को साम्राज्यवाद विरोधी संस्था बनाओ ; कांग्रेस मेम्बरों से अपील – सेवा प्रेस ; इलाहाबाद (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
68. कांग्रेस कमेटी का ऐलान : कोई किसान अब लगान ना दे – जिला कांग्रेस कमेटी : बुलन्दशहर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
69. बुलेटिन ; विशेष अंक ; बाम्बे के दंगे का रहस्य, 1932 ; कांग्रेस कमेटी , बाम्बे
70. कांग्रेस बुलेटिन : नं0– 11 , 16 मई 1932 ; उ0प्र0 कांग्रेस
71. कांग्रेस बुलेटिन : नं0– 12 , 1जून 1932 , हिन्दी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
72. कांग्रेस बुलेटिन : नं0– 14 ; 1 जुलाई 1932 , हिन्दी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
73. कांग्रेस बुलेटिन ; नं0– 15 , 1 अगस्त 1932 , हिन्दी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
74. कांग्रेस बुलेटिन ; नं0– 16 ; 16 अगस्त 1932 , हिन्दी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
75. कांग्रेस बुलेटिन ; नं0– 17 ; 25 अगस्त 1932 , हिन्दी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
76. कांग्रेस बुलेटिन ; नं0– 426 ; 12 मार्च 1933 , नगर कांग्रेस कमेटी ; प्रयाग
77. कांग्रेस बुलेटिन ; नं0–23 ; 1 जुलाई 1932 ;हिन्द प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
78. कांग्रेस बुलेटिन ; नं0 – 15–16 ; 15 जुलाई ; 1932 ; हिन्द प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
79. कांग्रेस बुलेटिन ; नं0 – 14 ; 16 जुलाई 1932 , हिन्द प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
80. कांग्रेस बुलेटिन ; नं0 –16 ; 16 सितम्बर 1932 , हिन्द प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
81. कांग्रेस बुलेटिन ; नं0 –19 ; 1 अक्टूबर 1932 : हिन्द प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
82. कांग्रेस बुलेटिन ; नं0 –20 ; 16 अक्टूबर 1932 : हिन्द प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
83. कांग्रेस बुलेटिन ; नं0–15–16 ; 15 जनवरी 1933 ;हिन्द प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी

<u>पत्र–पत्रिकाएँ</u> :

1. .अलंकार, भाग–4, नं0–11 , 11 दिसम्बर 1934 , आफिस आफ द अलंकार : लाहोर
2. बलिदान : नववर्ष अंक , भाग–2 , नं0–1 , 1 अप्रैल 1935 ; – भीमसेन वर्मा और सत्यकाम विद्यालंकार ; राजपाल एण्ड संस
3. बुन्देलखण्ड केसरीः नं0–53 , 18 दिसंबर 1932 – रणधीर ; बुंदेलखण्ड
4. चाँद : फांसी अंक , नवंबर 1928 – आचार्य चतुर्सेन शास्त्री – चाँद कार्यालय , इलाहाबाद
5. कल्याण ; अक्टूबर 1946 ; गीता प्रेस गोरखपुर (मासिक)
6. क्रांति ; भाग–1 , नं0–2 ; सितम्बर 1939 – राजाराम शास्त्री ; नेशनल प्रेस , कानपुर (मासिक)
7. क्रांति , भाग–1 , नं0–3 , अक्टूबर 1939 – राजाराम शास्त्री ;नेशनल प्रेस , कानपुर (मासिक)

8. नया हिन्दूस्तान : भाग–1 , नं0–41 , 17 सितम्बर 1939 , नया हिन्दूस्तान : इलाहाबाद (साप्ताहिक)
9. सैनिक ; भाग–3 ,नं0–14, –कृष्णदत्त पालीवाल 31 अगस्त 1927 ; सैनिक प्रेस, आगरा (साप्ताहिक)
10. सैनिक ; भाग–3 ,नं0 –3, – कृष्णदत्त पालीवाल 8 फरवरी 1928 ;सैनिक प्रेस, आगरा (साप्ताहिक)
11. सैनिक ; भाग–3 ,नं0 –36, –कृष्णदत्त पालीवाल 8 फरवरी 1928 ;सैनिक प्रेस, आगरा
12. सत्याग्रही : भाग–1, नं0–2 , – हनुमान सिंह बघेल ; 6 अप्रैल 1930 ; सत्याग्रह कार्यालय , रायबरेली
13. सत्याग्रही : भाग–1, नं0–2 , – हनुमान सिंह बघेल ; 18 अप्रैल 1930 ; सत्याग्रह कार्यालय , रायबरेली
14. शंखनाद ;भाग–1 , नं0–123 ; 7 नवंबर 1932 (साप्ताहिक)
15. शंखनाद ;भाग–1 , नं0–124 ; 14 नवंबर 1932
16. शंखनाद ;भाग–1 , नं0 –130 ; 2 जनवरी 1933
17. शंखनाद ;भाग–1 , नं0 –131 ; 9 जनवरी 1933
18. शंखनाद ;भाग–1 , नं0 –137 ; 20 फरवरी 1933
19. स्वदेश का विजयांक ; नं0– 38–39 , – पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ; स्वदेश प्रेस : गोरखपुर
20. विप्लव ; नं0–6 ; अप्रैल 1936 (मासिक)
21. वालेन्टीयर ; भाग–1, नं0–1, – टोडर सिंह तोमर ; दिसंबर 1924 , कानपुर (मासिक)
22. हिन्दी प्रदीप – बालकृष्ण भट्ट ; (फरवरी 1910–प्रतिबंधित होने का वर्ष)

पद्य रचनाएं –

हिन्दी की पद्य रचनाओं में लगभग 300 पुस्तकें प्रतिबंधित की गईं. ज़ब्त हुई पद्य रचनाओं में कविताएँ व गीत शामिल हैं जिनमें मुक्ति का संदेश भरा पड़ा है. इस प्रकार की कविताएँ व गीत लिखने के कारण लेखकों को कारागार की तमाम यातनाओं का भी सामना करना पड़ता था. जनता पर इन कविताओं व गीतों का प्रभाव कहानियों व उपन्यास से कहीं अधिक पड़ता था. 'कविता की समाज में भूमिका दोहरी है. एक ओर तो वह समाज से प्रभाव ग्रहण करती है, दूसरी ओर समाज को प्रभावित करती है. वह अपने समय को अंकित करते हुए भी, कभी–कभी समय के पार जाकर नए मूल्य स्थापित करती है. उसकी भूमिका मनुष्य को अधिक मानवीय और अधिक बेहतर मनुष्य बनाने की होती है. जहाँ वह उसके कोमल मनोभावों का स्पर्श करती है, वहीं वह मनुष्य की चेतना को भी जगाती है और उसमें नई स्फूर्ति और नया उत्साह भरती है. कविता का इतिहास साक्षी है कि कविता ने अलग–अलग युग में जन चेतना को जागृत किया है और उसे संघर्ष के लिए प्रेरित किया है. कविता ने स्वयं हमारी आजादी की लड़ाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. ब्रिटिश शासन के विरूद्ध संघर्ष का शंखनाद फूँकते हुए उसने आम आदमी को जान देने तक के लिए प्रेरित किया और लोगों ने हंसते–हंसते अपने वतन के लिए अपनी जिन्दगी कुर्बान कर दी.[1] प्रतिबंधित पद्य रचनाओं की सूची निम्नलिखित है–

1. आग का गोला –सेवक कुन्दनलाल ; रमेश फाइन प्रिंटिंग (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
2. आवाहन – सूर्यप्रसाद अवस्थी ; अग्रवाल प्रेस , कानपुर(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
3. अहिंसा का झंडा – विश्वनाथ शर्मा ; सरस्वती प्रेस , बनारस , 1930
4. अहिंसा की शमसीर – ठाकुर प्रसाद ; खिचड़ी समाचार , मिर्जापुर(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
5. अंग्रेजों का फंदा – भारत पुस्तक भण्डार , जबलपुर , 1922
6. अंग्रेजों की अकड़ फूँ निकल गयी – बाबूराम दनौरिया ; भारत बुक डिपो , आगरा(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
7. अंग्रेजों की टाँय–टाँय फिस्स – पं0 बाबूराम शर्मा ; मार्तण्ड प्रेस , दिल्ली(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
8. असहयोग मार्ग प्रचारक(भाग 1 और 2) – रघुनाथ प्रसाद शर्मा ; अलीगढ़(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
9. असहयोगी दीवाने की तरंग– संगमलाल अग्रवाल ; मिश्रा प्रिंटिंग वर्कस , इलाहाबाद(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

10. अटल राज की कुंजी अर्थात् महात्मा जी की पुकार –सरयूलाल राजा प्रेस , इलाहाबाद (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
11. आजाद भारत के गाने –'प्रकाश' छपरा ; देशबन्धु स्मारक भण्डार, सरस्वती प्रेस, बनारस(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
12. आजाद भारत ट्रैक्ट नं0–3 यानी क्रांति की गीतांजलि – मेहरचन्दर 'मस्त'/गिरधारी लाल ; दिल्ली(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
13. आजाद भारतवर्ष – प्रभुनारायण मिश्र ; श्री प्रेस , बनारस , 1931
14. आजाद गीतांजलि – एन. एम. उपपाध्याय ; कर्मवीर खण्डवा , 1931
15. आजाद हिन्द उर्फ मुबारकवादी पं0 रामगोपाल शुक्ल('प्रकाश')– मुंशी सिंह ('रतन') ; विष्णु प्रयाग प्रेस , कानपुर , 1930
16. आजादी की बिगुल – कसमचन्द्र रस्तोगी ; सरस्वती प्रेस , बनारस 1930
17. आजादी का बम – जगन्नाथप्रसाद अरोरा ; लक्ष्मी प्रेस , बनारस , 1930
18. आजादी का डंका – विश्वनाथ शर्मा और कसमचन्द्र रस्तोगी ; सरस्वती प्रेस , बनारस 1930
19. आजादी का झंडा – हिन्दी साहित्य बुक डिपो, ए. बी. प्रेस : आगरा(लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
20. आजादी का जौहर यानी नमक का पुजारी – हरिशंकर ; अभय प्रेस , देहरादून 1930
21. आजादी के नुस्खे – यमुना सिंह ; लक्ष्मी विलास प्रेस , कलकत्ता , 1930
22. आजादी के तराने और कौमी झंडा – सूर्यबली सिंह ; काशी पुस्तक भण्डार, सरस्वती प्रेस, बनारस 1930
23. आजादी की आग – चिरंजीलाल शर्मा ; श्री यन्त्रालय , बनारस, 1939
24. आजादी की चमक – शिवराम परिव्राजक ,सरस्वती प्रेस , बनारस ,1930
25 आजादी की गर्जना उर्फ बेकसों की हाय – गंगाप्रसाद ; प्रेम प्रिंटिंग प्रेस , कानपुर 1930
26. आजादी की तरंग –काले सिंह(सोनीपत) सरला हिन्दी पुस्तकालय, राजेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस , दिल्ली , 1932
27. आजादी की उमंग अथवा राष्ट्रीय गान – कन्हैयालाल दीक्षित , इंदिरा पुस्तकालय, भरतभूषण प्रेस , लखनऊ 1930
28. आजादी या मौत –रामस्वरूप गुप्त ; एच. पी. प्रिंटिंग वर्कस , मथुरा 1931
29. बागे जलियाँ – रामस्वरूप गुप्ता एवं बेनीराम ; सुदर्शन प्रेस , हाथरस , 1923

30. बहरों को चेतावनी – एक 'बेचैन' ; कानपुर , 1930
31. बलिदान की चिंगारी – विश्वनाथ शर्मा ; श्री प्रेस , बनारस , 1931
32. बलिवेदी पर (सरदार) – युवक हृदय (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
33. बंदे मातरम् : पुलिस की करतूत – रतन ; श्री पंचानन प्रेस(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
34. बावन की लड़ाई का सूक्ष्म कांग्रेस आल्हा का इतिहास – छेदीलाल पाण्डेय , अर्जुन प्रेस ,फतेहपुर(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
35. बेकसों के आँसू – त्रिभुवनाथ (''आजाद'') ; लक्ष्मी प्रेस , बनारस 1930
36. भगतसिंह – हर्षदत्त पाण्डेय(''श्याम'') ; बाम्बे पुस्तकालय, सुरसरि प्रेस , कानपुर , 1939
37. भगवान गांधी अथवा स्वतन्त्र भारत का बिगुल – ठाकुर मुंशी सिंह ; जगदीश प्रेस , लखनऊ 1930
38. भजन चर्खा या झंडा – सियारामशरण मिश्र/छंगुर त्रिपाठी ; गोरखपुर प्रिंटिंग प्रेस , गोरखपुर , 1930
39. भंडा फोड़ इतब – रघुवर दयाल शिवनारायन ; आदर्श प्रेस , आगरा 1931
40. भारत का महाभारत – जानकीप्रसाद 'बेधड़क' ; रंगेश्वर प्रेस , बनारस , फत्तेहपुर 1931
41. भारत की राष्ट्रीय आल्हा– बाबूराम तेनगुरिया ; जैन प्रेस , आगरा 1930
42. भारत माता के जख्मी लाल – आर. एन. शारदा/राम रिचपाल ; मार्तण्ड प्रेस एवं स्वाधीन प्रेस , दिल्ली 1930
43. भारत माता की लताड़ – बाबूराम शर्मा ; स्वाधीन प्रेस , आगरा(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
44. भारत माता की पुकार अर्थात् गाांधी विजयी –नैनीताल शर्मा ; बिजनौर , 1930
45. भारत पिकेटिंग भजन – मार्कण्डेय शायर ; श्री बागेश्वर प्रेस , बनारस 1930
46. भूखी दुनियां –सत्यनारायण सिंह ; अमर भारती प्रेस , बनारस(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
47. बिजली – रामदास जायसवाल ''चकोर'' ; कुमार प्रेस ; गोरखपुर 1930
48. बम के गोले – बलभद्र प्रसाद गुप्त ''विशारद'' ; साहित्य सदन कार्यालय , मिश्रा प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
49. बुन्देलखण्ड केसरी , नं0–53 , – रणधीर , 15 दिसंबर 1933 ; बुन्देलखण्उ स्वतन्त्रता प्रेस
50. चरखे का तार – रामदास पाण्डेय ; हिन्दू मित्र प्रेस , गोरखपुर 1931
51. चमकता स्वराज्य – रणछोड़दास खत्री ; गोकुल प्रेस , बनारस , 1930
52. चमकते सितारे – राजाराम नागर ; यूनियन जॉब प्रेस , इलाहाबाद (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

53. चन्द्रशेखर आजाद – हर्षदत्त पाण्डेय 'श्याम' ; प्रभात प्रेस , बाम्बे पुस्तकालय, कानपुर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
54. चुनार का राष्ट्रीय झंडा – जनार्दन मिश्रा ; खिचड़ी समाचार प्रेस , मिर्जापुर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
55. कांग्रेस बिगुल – प्यारेलाल अग्रवाल और गणेश जोग ; सत्याग्रह कमेटी, अग्रवाल प्रेस 1930
56. कांग्रेस का बिगुल – ठाकुर देवी सिंह ; स्वाधीन प्रेस 1930
57. कांग्रेस की धूम – ठाकुर गंगाधर ; भारतभूषण प्रेस 1931
58. दैवी शक्ति – शिवशंकर द्विवेदी ; हितैषी प्रिंटिंग वर्कस 1930
59. देशभक्ति की पुकार – मोहनलाल ''अरमान'' ; शंकर प्रेस , कानपुर 1931
60. देश का राग –चिरंजीलाल विद्यार्थी ; पथिक एंड कम्पनी , दिल्ली(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
61. देशभक्तों के गीत – सत्येन्द्रनाथ ; सरस्वती आश्रम , लाहौर, 1932
62. दिल के आँसू –नत्थूलाल महार ;श्री भगवानदास जोशी बसंत प्रेस , 1931
63. दुखिया भारत– प्यारेलाल वैश्य ; सिंघल प्रिंटिंग प्रेस , शाहजहाँपुर 1931
64. ऐतिहासिक घटना . महाराजा कुँवर सिंह('मनोरंजन') – प्रभुदयाल डण्डावाले ; स्वाधीन प्रेस , दिल्ली(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
65. ऐतिहासिक पुष्पांजलि–कुँवर सुखलाल 'मुसाफिर' ; पथिक पुस्तकालय ; नवयुग प्रिंटिंग प्रेस 1929
66 फौजी ऐलान अर्थत् आजादी की देवी – मोहरचन्द 'मस्त' ; द्वादश श्रेणी प्रेस , दिल्ली(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
67. गांधी बिगुल – सत्याग्रह कमेटी अग्रवाल प्रेस , कानपुर(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
68. गांधी गौरव – लाल महाबली सिंह ; भगवान प्रेस , इलाहाबाद 1930
69. गांधी गौरव गान – रामनारायण वर्मा ; सिंघल प्रिंटिंग वर्कस , बरेली(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
70. गांधी गीतांजलि– घासीराम शर्मा ; शर्मा मशीन प्रेस , मुरादाबाद , 1930
71. गांधी गीतागार – लाल बाबू लाल ; सुरसरि प्रेस , कानपुर , 1930
72. गांधी टोप वालों का जौहर अर्थात् स्वराज का डंका – रामसिंह वर्मा ; केसरी प्रेस , आगरा , 1930
73. गांधी का तोपखना तथा सत्याग्रह का पैगाम ; बी. आर. शर्मा ; मार्तण्ड प्रेस , दिल्ली (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

74. गांधी जी का चर्खा – मुंशी रामनन्द बिहारी लाल , पन्नालाल वर्मा ; राजा प्रेस , इलाहाबाद 1930
75. गांधी की आँधी – चन्द्रभान गुप्ता ; मॉडल प्रिंटिंग वर्कस, आगरा 1930
76. गांधी का तीर – स्वामी रामानन्द सरस्वती एवं पं0 रामप्रसाद गौर ; रामेश्वर प्रेस , अलीगढ़ 1930
77. गांधी की धूम – प्यारेलाल वैश्व ; सिंघल प्रिंटिंग वर्कस , शाहजहाँ 1931
78. गांधी की लड़ाई उर्फ सत्याग्रह इतिहास – पी. एम. वर्मा ; मार्तण्ड प्रेस , दिल्ली(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
79. गांधी की तोप – रामचन्द्र ; शिवाजी प्रेस , अलीगढ़ 1930
80. गांधी संग्रामः भाग 2 – स्वरूपानन्द सन्यासी ; द्वादश श्रेणी प्रेस, दिल्ली (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
81. गांधी विजय – विश्वनाथ शर्मा ; देशबन्धु प्रेस , बराबंकी 1930
82. गरीबों के नाले – शीतलप्रसाद विश्नोई ; आदर्श प्रेस , कानपुर 1922
83. गरीबों की आह – गंगाराम सिंह ; सिंघल प्रिंटिंग वर्कस , 1935 , बरेली
84. गोरे कुत्तें का हरामीपन – उत्साही प्रेस(लेखक का नाम और प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
85. गुड़गाँव की आल्हा ,भाग3 – नियादर सिंह 'बेचैन' ; भानु प्रिंटिंग वर्कस(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
86. हिन्द दा सितारा – एम. एस. पंछी ; रामप्रसाद विरजानन्द प्रेस , लाहौर(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
87. हिन्द के लुटेरे – मसूरिया तिवारी ; यूनियन जॉब प्रिंटिंग प्रेस , इलाहाबाद(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
88 इंकलाब की लहर , भाग4 – गोविन्दराम गुप्त ; मार्तण्ड प्रेस , दिल्ली (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
89. जालिमों की चाल यानी हिन्द में अंग्रेजों का दखल – द्वारका प्रसाद शर्मा ; मार्तण्ड प्रेस , दिल्ली(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
90. जवाहीर सन्देश – गोरखपुर प्रिंटिंग प्रेस 1930
91. जंग आजादी – महाशय मोतीराम वर्मा ; जे. एम. प्रेस , दिल्ली 1930
92. जवाहरात के टुकडे – भागवत प्रसाद 'वनपति' ; यूनियन जॉब प्रेस 1930
93. झांकेर – चन्द्रदत्त 'आर्य' ; आदर्श प्रेस , आगरा(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

94. झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीरता – प्रभुदयाल डण्डेवाले ; केसरी प्रेस, अलीगढ़ (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

95 .झांसी की रानी रणचण्डी लक्ष्मीबाई – सुन्दरसेन मिश्र 'चक्र' ; शहीद स्मृति पुस्तकमाला , कानपुर(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

96. कलम का जौहर यानी स्वराज देवी – स्वामी हरिशंकर 'सोहन' , अभय प्रेस 1930

97. कंगाल भारत यानी स्वराज का झण्डा – पं0 बाबूराम शर्मा ; सिंघल प्रिंटिंग , बरेली 1930

98. खून का आँसू –रामचन्द्र 'चन्द्रदेव'; श्री यन्त्रालय , बनारस 1931

99. खून के छींटे – बलभद्रप्रसाद गुप्त 'रसिक' ; यूनियन जॉब प्रेस 1931

100. खूनी गजलें – सिद्धगोपाल गुप्त ; राष्ट्रीय सरस्वती सदन , कानपुर 1923

101. क्रांति भजनावलि– नन्दलाल 'आर्य' (गाजीपुर) ; यूरेका प्रिंटिंग प्रेस , बनारस(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

102 .खूनी नजारा– पं0 शिवशंकर लाल , देवीप्रसाद ; भारत प्रिंटिंग प्रेस 1930

103. क्रांति गीतांजलि –हुलसवर्मा 'प्रेमी' ; भास्कर प्रेस , देहरादून 1929

104. क्रांति गीतांजलि – रामप्रसाद 'बिस्मिल ; लक्ष्मण 'पथिक' दिल्ली 1931

105. क्रांति का बिगुल – जी. आर. त्रिपाठी ; माधव प्रिंटिंग वर्कस , इलाहाबाद(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

106. क्रांति का पुजारी –मोहनलाल 'अरमान' ; शंकर प्रेस , कानपुर(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

107. क्रांति का संदेश – बाबूराम शर्मा ; अर्जुन प्रेस , बनारस 1930

108. क्रांति का सिंहनाद – राष्ट्रीय साहित्य प्रचारक मण्डल ; ब्राम्हण प्रेस 1930

109. क्रांति का सिंहनाद – अवधबिहारीलाल 'शर्मा' ; विमल ग्रंथमाला , लखनऊ(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

110. क्रांति की झलक– के. एल. गुप्ता ; लक्ष्मी प्रिंटिंग प्रेस 1930

111. क्रांति पुष्पांजलि– पं0 वंशीधर 'विमल' ; राष्ट्रीय पुस्तक भण्डार , कानपुर 1930

112. क्रांति पुष्पांजलि– सोमेन्द्र मुखर्जी ; शर्मा मशीन प्रिंटिंग प्रेस , मुरादाबाद 1931

113. महात्मा गांधी का स्वातन्त्र आल्हा–मिट्ठानलाल ; सुरसरि प्रेस , कानपुर , 1930

114. लाहौर की फाँसी उर्फ भगत सिंह का तराना – एन. एल. ए. – श्री यन्त्रालय , बनारस 1931

115. लाहौर की सूली अर्थात् सरदार भगत सिंह मस्ताना, राजगुरू,सुखदेव – प्रभु नारायण मिश्र ; श्री प्रेस , गया 1931

116. महात्मा गांधी का चर्खा – गिरिराज किशोर वैश्य ; आर्य भास्कर प्रेस , आगरा , 1930

117. महात्मा गांधी का चर्खा – गिरिराज किशोर अग्रवाल ; केसरी प्रेस , आगरा (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
118. महात्मा गांधी का राष्ट्रीय बिगुल– मुंशी सिंह 'रत्न' (हरदोई) ; भारत प्रिंटिंग प्रेस , कानपुर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
119. महात्मा गांधी का रिसाल – बाबूराम दनौरिया(आगरा) ; जे. एम. प्रेस , दिल्ली(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
120. महात्मा गांधी का संदेश – उमाचरण दीक्षित 'उमेश' ; ब्राम्हण प्रेस , कानपुर 1930
121. महात्मा गांधी की आँधी– आर. एन. शर्मा ; द्वादश श्रेणी प्रेस , दिल्ली 1930
122. महात्मा गांधी की घोषणा अथवा सत्याग्रह की आवाज – आर .एन. शर्मा ; द्वादश श्रेणी प्रेस , दिल्ली (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
123. महात्मा गांधी की ग्यारह शर्तें– आर. एन. शर्मा ; द्वादश श्रेणी प्रेस , दिल्ली (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
124. महात्मा गांधी की लड़ाई –रामचन्द्र शर्मा , द्वारिका प्रसाद शर्मा ; मार्तण्ड प्रेस , दिल्ली (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
125. महात्मा गांधी की स्वदेशी होली– 'विनोद' ; हिन्दी पुस्तक भण्डार, लखनऊ 1922
126. महात्मा गांधी का चर्खा – गिरिराज किशोर अग्रवाल ; केसरी प्रेस आगरा(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
127. महिला राष्ट्रीय बिगुल–सत्याग्रह कमेटी ; अग्रवाल प्रेस , कानपुर(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
128. मनहरण श्याम–मनोहर लाल शुक्ला ; राजा प्रेस , इलाहाबाद(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
129. मर्दाना भगतसिंह – प्रतापसिंह 'स्वतन्त्र' ; राजेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
130. मारवाड़ी राष्ट्रीय गीत – राम शर्मा ; श्री ईश्वर प्रिंटिंग प्रेस , बनारस(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
131. मस्ती के तराने – यदुनन्दन शर्मा 'प्रयलंकर' ; लहरिया सराय विजय प्रेस(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
132. मतवाला गायन– माताप्रसाद शुक्ल ; श्री प्रेस , बनारस 1931
133. मौसम बहार– राजेन्द्र प्रसाद ; बिहार स्टैंडर प्रेस, मुजफ्फरपुर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
134. मजदूर झण्डे की प्रार्थना– सूर्यप्रसाद अवस्थी , अग्रवाल प्रेस, कानपुर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
135. मजलूमों की आह– द्वारका शर्मा ; मार्तण्ड प्रेस , 1931
136.मुक्त संगीत – अभिराम शर्मा ; विष्णु प्रयाग प्रेस , कानपुर 1932

137. मुसाफिर के भजन– कुँवर सुखलाल 'मुसाफिर' ; लक्ष्मण 'पथिक' दिल्ली (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

138. नादिरशाही जख़्में – रघुवीर प्रसाद शर्मा ; रेखाविलास प्रेस , अलीगढ़(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

139.नगों की रानी – नाथूराम द्विवेदी 'शंख' ; कृष्णा प्रेस , कानपुर 1939

140. नई कजली 'बमकेस' – प्रभुनारायण मिश्र ; श्री प्रेस , बनारस 1931

141. नमकीन जंग – नाथूराम कुंज ; प्रेम प्रिंटिंग प्रेस , कानपुर , 1930

142. निर्भय भजनावली – नेमिचन्द्र 'आर्य' ; आदर्श प्रेस , आगरा(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

143. नमक का गोला –रामचन्द्र ; मार्तण्ड प्रेस , दिल्ली (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

144. नवरंग गर्जना – उमाशंकर मिश्र ; सरजूलाल राजा प्रेस , इलाहाबाद (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

145. निजाम हैदराबाद का सत्याग्रह का इतिहास – तेजसिंह वर्मा ; हिन्दी पुस्तकालय , हरिहर प्रेस , मथुरा(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

146. पाप का घड़ा – ज्ञानसिंह वर्मा ; जगदीश प्रेस , अलीगढ़ 1923

147. फाँसी के शहीद – राजाराम नागर – यूनियन जॉब प्रेस , इलाहाबाद (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

148. पुलिस की करतूत –'रत्न' ; पंचानन प्रेस , बनारस(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

149. पुलिस का अत्याचार – तमुक भिठार ; चिरंजीलाल विद्यार्थी , दिल्ली (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

150. प्रभात फेरी – पी. बी. पाठक ; श्री पांडुरंग वैभव प्रेस , मुम्बई(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

151. प्रभात फेरी – मंत्री नगर परिषद ; राजस्थान प्रेस 1930

152. प्रभात फेरी –ग्राम सेवा संघ ; हर्दा : भारवी छापखना 1939

153.प्रभाती बहार – पी. बी. पाठक ; वैभव प्रेस , बाम्बे(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

154. रणभेरी – नारायण प्रसाद ; केसरी प्रेस , आगरा 1930

155. राष्ट्र वीणा – ब्रम्हचारी रामानन्द ; सरस्वती प्रेस , बनारस 1930

156. राष्ट्रीय आल्हा – राजबली वर्मा ; विश्वनाथ प्रेस , आजमगढ़ , 1931

157. राष्ट्रीय आल्हा – पीताम्बरलाल सिंघल ; प्रेम प्रिंटिंग प्रेस , कानपुर 1930

158. राष्ट्रीय आल्हा – मनिराम शर्मा , महादेव प्रसाद तथा राजाराम त्रिपाठी ; विजय फाइन आर्ट्स प्रेस , कानपुर 1939

159. राष्ट्रीय आल्हा – पोखपाल सिंह वर्मा ; ए. डब्ल्यू. प्रेस , लखनऊ 1930

160. राष्ट्रीय आल्हा यानी भगतसिंह की लड़ाई – सूर्यप्रसाद मिश्र ; ब्राम्हण प्रेस , कानपुर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

161. राष्ट्रीय बहार उर्फ भगतसिंह की पुकार – ठाकुर प्रसाद और सूर्यप्रसाद ; खिचड़ी समाचार प्रेस , मिर्जापुर 1930
162. राष्ट्रीय बिगुल – द्वारका प्रसाद ; गुरूकुल प्रेस , देहरादून 1930
163. राष्ट्रीय चमक – रामचन्द्र शरद ; सरस्वती प्रेस , काशी (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
164. राष्ट्रीय डंका उर्फ स्वदेशी खादी – चंद्रिका प्रसाद 'जिज्ञासु' ; हिन्दू समाज कार्यालय , लखनऊ 1930
165. राष्ट्रीय गान – छन्नूमणि गुप्ता ; द्वादश श्रेणी प्रेस , दिल्ली 1931
166. राष्ट्रीय गान – गौरीशंकर प्रसाद 'शाक्य' ; पंचानन प्रेस , बनारस(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
167. राष्ट्रीय गायन – रामदास गौड़ ; मस्त मतवाला प्रेस , कलकत्ता 1930
168. राष्ट्रीय गायन अथवा उबलता खून – हजारीलाल ; राजपाली प्रेस , इलाहाबाद 1930
169. राष्ट्रीय गायन – रामस्वरूप गुप्ता ; दवाखाना प्रिंटिंग वर्क्स 1931
170. राष्ट्रीय गीत –बेनीमाधव गुप्ता ; आनन्द प्रेस , फतेहपुर 1930
171. राष्ट्रीय गीत , वैद्य की लचारी – पं0 रामकुमार वैद्य ; श्री केशव प्रेस , जौनपुर 1940
172. राष्ट्रीय गीत , वैद्य का विरहा – पं0 रामकुमार वैद्य ; श्री केशव प्रेस , जौनपुर 1940
173. राष्ट्रीय गीत – मतवाला मण्डल ;बींसवी सदी प्रिंटिंग प्रेस (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
174. राष्ट्रीय गीत – अवस्थी बोस ; नारायण प्रेस , इलाहाबाद 1930
175. राष्ट्रीय गुलदस्ता – एच. एल. गुप्ता ; जैन प्रेस , आगरा 1930
176. राष्ट्रीय लहर – उमाचरण लाल ; गोरखपुर प्रिंटिंग प्रेस , गोरखपुर 1931
177. राष्ट्रीय मल्हारें अथवा जख़्मी भारत – आर. एन. शर्मा ; स्वदेश श्रेणी प्रेस , दिल्ली(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
178. राष्ट्रीय पद्य मंजरी – हरि मदन सिंह शर्मा ; सेन्ट्रल प्रिंटिंग प्रेस 1922
179. राष्ट्रीय पद्यावली – श्रीकान्त डी. पालेकर ; न्यू मनोहर प्रेस , बाम्बे (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
180. राष्ट्रीय पुकार – गौरीशंकर प्रसाद ; श्री बागेश्वरी प्रेस , बनारस (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
181. राष्ट्रीय समर हार – सीताराम पाठक ; एस. वी. वी. प्रेस , गाजीपुर 1931
182. राष्ट्रीय समर – के. एल. वर्मन ; श्री यन्त्रालय , बनारस 1930
183. राष्ट्रीय संगीत माला का प्रथम कुसुम – कुँवर नरेन्द्र सिंह वर्मा आर्य ; विद्या भास्कर प्रेस , कनखल 1922
184. राष्ट्रीय संग्राम – सुन्दर लाल शर्मा ; जार्ज प्रेस , (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)
185. राष्ट्रीय सावन बहार – प्रसिद्ध नारायण सिन्हा ; स्वाधीन साहित्य मण्डल , सेवा प्रेस 1940

186. राष्ट्रीय शंखनाद – ' यति' यतनलाल ; साहित्य प्रचारक मण्डल , कानपुर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

187. . राष्ट्रीय सिंहनाद – विश्वनाथ शर्मा ; सरस्वती प्रेस , बनारस (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

188.. राष्ट्रीय तरंग – बुद्धूराम ; मोहनलाल शिशु प्रेस , इलाहाबाद , 1930

189. राष्ट्रीय तरंग – के. एल. वर्मन ; लक्ष्मी प्रेस , बनारस 1930

190.. राष्ट्रीय तूफान – के. एल. वर्मन ; लक्ष्मी प्रेस , बनारस 1930

191. राष्ट्रीय उमंग – उमाचरणलाल ; गोरखपुर प्रिंटिंग प्रेस , गोरखपुर 1931

192. राष्ट्रीय वीणा – प्रभुनारायण मिश्र (गया) ; श्री बागेश्वरी प्रेस , बनारस(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

193. संगीत सरोवर – विश्वनाथ लाल श्रीवास्तव 'विशारद' ; सरस्वती प्रेस , बनारस 1931

194. सावन का सेनापति – गोपाल लाल गुप्ता ; श्री बागेश्वरी प्रेस , बनारस(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

195. सरोजिनी सन्देश – गोविन्द राम गुप्ता 'शहबर' ; मार्तण्ड प्रेस , दिल्ली

196. सत्याग्रह गीतावली – स्वर्णसिंह वर्मा 'आनन्द' ; केसरी प्रेस , आगरा (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

197. सत्याग्रह की लहर – गोकर्ण नाथ शुक्ल ; नेशनल प्रेस , कानपुर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

198. सत्याग्रह संग्राम – पन्नालाल वर्मा ; राजा प्रेस , इलाहाबाद (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

199. सत्याग्रह संग्राम का बिगुल – रघुवरदयाल विद्यार्थी ; आदर्श प्रेस , आगरा 1930

200. सत्याग्रही झंकार – भास्कर : गोरखपुर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

201. सत्याग्रही – महावीर सिंह वर्मा ; प्रेम प्रिंटिंग प्रेस , कानपुर

202. भगतसिंह की फाँसी और बनारस के दंगे की नई कज़ली – मार्कण्डेय महाद्विज , अर्जन प्रेस (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

203. सावन का सत्यग्रह – गोपाल लाल गुप्ता ; जार्ज प्रिंटिंग प्रेस , बनारस (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

204. सावन का शहर उर्फ बनारस का बलवा – प्रभुनारायण मिश्र ; श्री प्रेस 1931

205. सावन का स्वाधीनता – रामचन्द्र सर्राफ ; श्री बागेश्वरी प्रेस , बनारस(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

206. शहीद आजाद – शारदा सदन , यूनियन जॉब प्रेस, प्रयाग (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

207. शहीद गर्जना – बेनी माधव गुप्ता ; यूनियन जॉब प्रेस , इलाहाबाद 1930

208. शहीदे नवरत्न – शर्मा 'विमल' ; एन. के. प्रेस , कानपुर 1931

209. शहीदों की गर्जना उर्फ क्रांति की लहरें – देवी सिंह जाट , स्वाधीन प्रेस , दिल्ली(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

210. शहीदी नाज – गैड़ा लाल 'दीक्षित' ; राजेन्द्र प्रेस , दिल्ली , 1931

211. शहीदों का संदेश – मोहर चन्द्रा 'मस्त' ; द्वादश श्रेणी प्रेस , दिल्ली(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

212. शहीदों की गर्जना – ठाकुर देवी सिंह जाट ; स्वाधीन प्रेस , दिल्ली 1931

213. शहीदों की यादगारी – सत्यनारायण लाल धौरिया ; अभ्युदय प्रेस , इलाहाबाद (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

214. सिंहनाद –जोरावर सिंह 'सिंहकवि' ; आर्य प्रिंटिंग प्रेस , लखनऊ 1940

215. सुलह और राष्ट्र पुकार – रामविलास अवस्थी ; दयाल प्रिंटिंग वर्क्स 1931

216.सुराजी रसिया – हरनन्दनसिंह 'किशन' ; आदर्श प्रेस , आगरा 1929

217. स्वदेशी गान – उमाशंकर दीक्षित ; विजय प्रेस , इलाहाबाद 1930

218. स्वदेशी गायन रत्न – मुंशी सिंह 'रत्न' ; शुक्ला प्रिंटिंग प्रेस 1930

219. स्वदेश का संदेश – पं0 अवधबिहारी लाल शर्मा 'विमल' ; शुक्ला प्रिंटिंग प्रेस 1930

220. स्वदेश का मंगलाचार – रामस्वरूप शर्मा ; सुदर्शन प्रेस(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

221. स्वदेशी प्रचार माला – बालकृष्ण विद्यार्थी ; चैतन्य प्रिंटिंग प्रेस , बिजनौर 1930

222. स्वाधीनता का बिगुल – रामेश्वर नाथ मालवीय ; राजा प्रेस , इलाहाबाद 1930

223.स्वराज गीत गुंजन – काली प्रसाद (मुजफ्फरपुर) ; सेन्ट्रल प्रिंटिंग प्रेस ,पटना(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

224.स्वराज की देवी –गोवर्धनदास धर्मदास ; शान्ति प्रिंटिंग प्रेस , 1921

225. स्वराज आल्हा – लराली प्रसाद श्रीवास्तव ; किशन मजदूर संघ , झांसी , 1931

226. स्वराज आल्हा – लाल भगवान दास ; हिन्दू प्रेस , इटावा 1931

227. स्वराज गीतांजलि – शैलेन्द्र चतुर्वेदी ; हिन्दी नवयुग ग्रंथमाला, लहरी प्रेस, काशी 1923

228. स्वराज का बिगुल – नित्यानन्द पाण्डेय ; अभय प्रेस ,1931

229. स्वराज का तेरहमासा – दुर्गाप्रसाद गुप्ता ; भारतभूषण प्रेस , लखनऊ 1930

230. स्वराज का तूफान – आ. एन. शर्मा ; द्वादश श्रेणी प्रेस , दिल्ली 1930

231. स्वराज की वंशी – ज्ञानसिंह वर्मा ; जगदीश प्रेस , अलीगढ़ 1922

232. स्वराज की गूँज– अक्सीर सियालकोट ; एंग्लो ओरियंटल प्रेस , लाहौर 1930

233. स्वराज की हाय – रामलाल छेदीलाल राठौर ; प्रेम प्रिंटिंग प्रेस , कानपुर 1930

234.स्वराज की कुंजी – सीताराम गुप्त (अमरोहा) ; शर्मा प्रिंटिंग प्रेस , मुरादाबाद 1930

235. स्वराज की पुकार अथवा देश की चेतावनी – कन्हैयालाल दीक्षित 'इन्द्र' ; भारतभूषण प्रेस 1930

236. स्वराज संग्राम का बिगुल – के. एल. गुप्ता ; लक्ष्मी प्रिंटिंग प्रेस, आगरा 1930

237. स्वराज संग्राम का बिगुल – प्रभुदयाल ; सुधाकर प्रेस, इटावा (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

238. स्वतन्त्र भारत का आल्हा –मिट्ठान लाल अग्रवाल ; प्रेम प्रिंटिंग प्रेस, कानपुर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

239. स्वतन्त्र भारत का शंखनाद – अवधबिहारी लाल शर्मा ; भारतभूषण प्रेस , लखनऊ1930

240. स्वतन्त्र भारत का सिंहनाद – चन्द्रिकाप्रसाद 'जिज्ञासु' ; अर्जुन प्रेस , बनारस 1930

241. स्वातन्त्र्य का बिगुल– भास्कर प्रेस ; गोरखपुर , 1930

242. स्वतन्त्रता की देवी – गिरिराज किशोर अग्रवाल ; केसरी प्रेस, आगरा 1931

243.स्वतन्त्रता की तलवार – जगन्नाथ प्रसाद अरोरा ; लक्ष्मी प्रेस , बनारस 1930

244. स्वतन्त्रता की लहर –ठाकुर प्रसाद ; कमला आर्ट प्रेस, मिर्जापुर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

245. तराने आजाद – कंवर प्रताप चन्द्रा 'आजाद' ; आनन्द प्रेस , बरेली (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

246. तराने आजाद – सरयूनारायण शुक्ल /गंगाप्रसाद शुक्ल , कानपुर 1923

247. तोड़ी बच्चा वा राष्ट्रीय मल्हार – उर्मिला संदेश ; मार्तण्ड प्रेस ,दिल्ली

248. इंकलाब की लहर – गोन्दि राम गुप्त ;मार्तण्ड प्रेस ,दिल्ली (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

249. तूफान – प्रह्लाद पांडेय 'शशि' ; युगप्रचारक ग्रंथमाला , उज्जैन 1943

250. वैद्य की लाचारी – रामकुमार उपाध्याय ; कल्याण प्रेस , कानपुर 1940

251. वंदेमातरम् – रूपचन्द पंजाबी ; पंचानन प्रेस , बनारस (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

252. वंदेमातरम् – सरस्वती प्रेस , बनारस(प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

253. विचार तरंग – स्वामी विचारानन्द सरस्वती ; अभय प्रेस , देहरादून 1931

254. विद्रोहिणी – प्रह्लाद पांडेय 'शशि' ; युगप्रचारक ग्रंथमाला , उज्जैन 1942

255. विजय दुंदुभी – रामसहाय शर्मा ; जैन प्रेस , आगरा 1930

256. विजय सुंदरी – रामलगन राय ; बिहार बंधु प्रेस , मुफ्फरपुर 1924

257. वीरों की गर्जना –नारायण प्रसाद ; केसरी प्रेस , आगरा 1930

258. व्यग्र बमगोले – पांडेय हीरालाल 'व्यग्र' ; हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स 1929

259. व्याकुल भारत – रामकृष्ण त्रिपाठी ; रंगेश्वर प्रेस , इलाहाबाद 1931

260. युवक गर्जना – काशी रा तिवारी ; यूनियन जॉब प्रेस, इलाहाबाद 1931

261. युवक उत्साह – अमरनाथ असी ; जगदीश प्रेस , काशीपुर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

[1] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य : भाग2 –रूस्तम राय, राधाकृष्ण प्रकाशन 1999 पृ 5
[2] भारतीय पत्रकारिता का इतिहास : जे. नटराजन, प्रकाशन विभाग पृ. 3
[3] हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2011, भूमिका
[4] भारतीय पत्रकारिता का इतिहास : जे. नटराजन, प्रकाशन विभाग पृ. 12
[5] वही, पृ. 9
[6] हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2011, भूमिका
[7] भारतीय पत्रकारिता का इतिहास : जे. नटराजन, प्रकाशन विभाग पृ. 15
[8] आलोचना के सौ बरसः भाग 2 पृ392

[9] भारतीय पत्रकारिता का इतिहास : जे. नटराजन, प्रकाशन विभाग पृ.29
[10] आलोचना के सौ बरसः भाग 2 पृ392
[11] वही 392
[12] भारतीय पत्रकारिता का इतिहास : जे. नटराजन, प्रकाशन विभाग पृ.88
[13] आलोचना के सौ बरसः भाग 2 पृ393
[14] आलोचना के सौ बरसः भाग 2 पृ393
[15] आलोचना के सौ बरसः भाग 2 पृ394
[16] भारतीय मुक्ति आन्दोलन का वैचारिक पक्ष, डॉ व्रजकुमार पाण्डेय, मेखला प्रकाशन दिल्ली 2011 पृ 20
[17] भारतीय मुक्ति आन्दोलन का वैचारिक पक्ष, डॉ व्रजकुमार पाण्डेय, मेखला प्रकाशन दिल्ली 2011 पृ 24
[18] पलासी से विभाजन तक– शेखर बंधोपाध्याय, ओरियंट ब्लैकस्वान,, संस्करण 2013, पृ. 48
[19] वही, पृ 52
[20] पलासी से विभाजन तक– शेखर बंधोपाध्याय, ओरियंट ब्लैकस्वान,, संस्करण 2013, पृ. 53
[21] आधुनिक भारत के निर्माता– वी. के. नरसिंहम्, प्रकाशन विभाग, पृ. 3
[22] पलासी से विभाजन तक– शेखर बंधोपाध्याय, ओरियंट ब्लैकस्वान,, संस्करण 2013, पृ. 59
[23] वही, पृ. 54
[24] पलासी से विभाजन तक– शेखर बंधोपाध्याय, ओरियंट ब्लैकस्वान,, संस्करण 2013, पृ. 113
[25] वही, पृ. 115
[26] वही, पृ. 115–116
[27] पलासी से विभाजन तक– शेखर बंधोपाध्याय, ओरियंट ब्लैकस्वान,, संस्करण 2013, पृ. 116
[28] वही , पृ. 117
[29] वही, पृ. 212
[30] वही, पृ. 109
[31] वही, पृ. 111
[32] वही, पृ. 212
[33] आधुनिक भारत के निर्माता–वी. के. नरसिंहन, प्रकाशन विभाग, पृ. 169
[34] वही, पृ. 170
[35] आधुनिक भारत–सुमित सरकार, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1999, पृ. 207
[36] भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास 1758–1947,–डॉ. सतीशचंद्र मित्तल, हरियाणा साहित्य अकादमी, पृ. 1
[37] वही, पृ. 2
[38] वही, पृ. 18
[39] भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास 1758–1947,–डॉ. सतीशचंद्र मित्तल, हरियाणा साहित्य अकादमी, पृ. 13
[40] वही, 13
[41] वही 13
[42] पलासी से विभाजन तक–शेखर बंधोपाध्याय, ओरियंट ब्लैकस्वान, सं.2013 पृ. 89
[43] पलासी से विभाजन तक–शेखर बंधोपाध्याय, ओरियंट ब्लैकस्वान, सं.2013 पृ. 105
[44] पलासी से विभाजन तक–शेखर बंधोपाध्याय, ओरियंट ब्लैकस्वान, सं.2013 पृ. 106
[45] वही,, पृ. 107
[46] वही, पृ. 111

[47] वही, पृ. 111
[48] भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास 1758–1947– डॉ. सतीशचंद्र मित्तल, हरियाण साहित्य अकादमी, पंचकूला, सं 2005 पृ. 13
[49] भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास 1758–1947– डॉ. सतीशचंद्र मित्तल, हरियाण साहित्य अकादमी, पंचकूला, सं 2005 पृ. 21
[50] वही, पृ. 21
[51] वही, पृ. 22
[52] वही, पृ. 23
[53] वही, पृ. 23
[54] वही, पृ. 27
[55] भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास, 1758–1947 : डॉ. सतीशचन्द्र मित्तल , हरियाना साहित्य आकादमी, पंचकूला, सं 2005, पृ. 183
[56] पलासी से विभाजन तक : शेखर बंधोपाध्याय, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, सं 2013 पृ. 82
[57] वही, पृ. 82
[58] पलासी से विभाजन तक : शेखर बंधोपाध्याय, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, सं 2013 पृ. 84
[59] वही, पृ. 84
[60] आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास : सव्यसाची भट्टाचार्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं–2009, पृ. 77
[61] वही,, पृ. 77
[62] पलासी से विभाजन तक : शेखर बंधोपाध्याय, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, सं 2013 पृ. 87
[63] भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास, 1758–1947 : डॉ. सतीशचन्द्र मित्तल , हरियाना साहित्य आकादमी, पंचकूला, सं 2005, पृ. 240–241
[64] वही, पृ. 241
[65] आाधुनिक भारत : सुमित सरकार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं, 1999 पृ. 249
[66] भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास, 1758–1947 : डॉ. सतीशचन्द्र मित्तल , हरियाना साहित्य आकादमी, पंचकूला, सं 2005, पृ. 241
[67] आधुनिक भारत : सुमित सरकार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं : 1999 पृ. 50
[68] आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास : सव्यसाची भट्टाचार्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं : 2009 , पृ. 62
[69] वही, पृ. 62
[70] आधुनिक भारत : सुमित सरकार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली सं: 1999 पृ. 55
[71] वही, पृ. 105
[72] आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास : सव्यसाची भट्टाचार्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं : 2009 , पृ. 60
[73] आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास : सव्यसाची भट्टाचार्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं : 2009 , पृ. 21
[74] भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास, 1758–1947 : डॉ. सतीशचन्द्र मित्तल , हरियाना साहित्य आकादमी, पंचकूला, सं 2005, पृ. 243
[75] वही, पृ. 151
[76] वही, पृ. 152
[77] भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास, 1758–1947 : डॉ. सतीशचन्द्र मित्तल , हरियाना साहित्य आकादमी, पंचकूला, सं 2005, पृ. 153
[78] आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास : सव्यसाची भट्टाचार्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं : 2009 , पृ. 95
[79] वही, पृ. 95
[80] भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास, 1758–1947 : डॉ. सतीशचन्द्र मित्तल , हरियाना साहित्य आकादमी, पंचकूला, सं 2005, पृ. 156
[81] वही, पृ. 157
[82] आधुनिक भारत, 12 वीं कक्षा ,: एन. सी. ई. आर. टी. पृ. 79
[83] वही, पृ. 80
[84] आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास : सव्यसाची भट्टाचार्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं : 2009 , पृ. 95
[85] आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास : सव्यसाची भट्टाचार्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं : 2009 , पृ. 94

[86] भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास, 1758–1947 : डॉ. सतीशचन्द्र मित्तल , हरियाना साहित्य आकादमी, पंचकूला, सं 2005, पृ. 157
[87] आधुनिक भारत का इतिहास (12 वी.) :एन. सी. ई।. आर. टी. पृ 68
[88] पलासी से विभाजन तक : शेखर बंधोपाध्याय, आरियंट ब्लैकस्वॉन, सं 2013 पृ. 71
[89] आधुनिक भारत के निर्माता : वी. के. नरसिंहन , प्रकाशन विभाग, पृ. 20
[90] वही, पृ. 6
[91] भारत में कम्यूनिस्ट आन्दोलन खण्ड–एक(1917–'39) ; संपादन– अरिंदम सेन और पार्थ घोष ; 1992 पृ. 28
[92] हिंदी प्रत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं–2011 पृ. 40
[93] वही, पृ. 38
[94] हिंदी प्रत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं–2011 पृ. 54
[95] वही, पृ. 56
[96] वही, पृ. 94
[97] वही, पृ. 84
[98] हिंदी प्रत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं–2011 पृ. 121
[99] वही, पृ. 121
[100] वही, पृ. 122
[101] वही पृ. 126
[102] हिंदी प्रत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं–2011 पृ. 128
[103] वही, पृ. 128
[104] वही, 132
[105] वही, पृ 133
[106] वही, पृ 133
[107] वही, पृ. 134
[108] हिंदी प्रत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं–2011 पृ. 137
[109] वही, पृ. 152
[110] वही, पृ. 154
[111] वही, पृ. 130
[112] वही, पृ. 156
[113] हिंदी प्रत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं–2011 पृ. 157
[114] वही, पृ 170–171
[115] होम पोलिटिकल फाइल 230/1932 पृ. 6 भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
[116] गवर्नमेंट नोटिफिकेशन, 3391/8–1684/1931(होम पोलिटिकल फाइल 117/1932 पृ.258, राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली)
[117] होम पोलिटिकल फाइल 149/1932, 207/1932, 2081/1932, 48/4/1932. राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
[118] पुलिस फाइल 1205/1932, पृ. 29 उत्तर प्रदेश अभिलेखागार, लखनऊ
[119] हिंदी प्रत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं–2011 पृ. 203
[120] होम पोलिटिकल फाइल 117/1932, पृ. 204, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
[121] 37/34/1932, पृ 9, सीरियल नं. 5, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
[122] हिंदी प्रत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं–2011 पृ. 205
[123] वही, पृ. 205
[124] स्वदेश अंक 25 जून 1925
[125] होम पोलिटिकल फाइल 37/34/1939, पृ. 9 सीरियल नं. 5 राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली

दूसरा अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य और उसमें मुक्ति का स्वरूप

2.1 राष्ट्र मुक्ति का सवाल

2.2 आर्थिक मुक्ति का सवाल

2.2.1 अंग्रेजी राज में किसान

2.2.2 अंग्रेजी राज में मजदूर

2.2.3 अंग्रेजी राज में बुनकर

2.3 सामाजिक मुक्ति का सवाल

2.3.1 स्त्री

2.3.2 दलित

दूसरा अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य और उसमें मुक्ति का स्वरूप

2.1 राष्ट्र मुक्ति का सवाल

प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य में राष्ट्र मुक्ति का प्रश्न सर्वोपरि है. हिन्दुस्तान को अंग्रेजों की दासता की बेड़ियों से मुक्ति दिलाने के लिए जनता को ललकारा गया. इस समय रचे जा रहे साहित्य में मुक्ति चेतना की लहर चल पड़ी थी. एक ओर सरकार विभिन्न कानूनों का निर्माण करती तो दूसरी ओर इन साहसी लेखकों की भावनाएं और भी अधिक उग्र हो जाती. पुस्तकें प्रकाशित होती अथवा प्रकाषन से पूर्व ही जब्त हो जाती. जमानतें मांगी जाती, संपादकों, लेखकों, प्रकाश्कों को सजाए दी जाती फिर भी लेखन का ज्वार थमा ही नहीं. अंग्रेजों के ख्लिाफ, आजादी की भावना से पूरित, लहकते शब्दों में अभिव्यक्ति जारी रही. देश की आजादी के लिए लोग घर–परिवार का त्याग कर जेल जाते, फांसी के फन्दों पर लटकने में किंचित न घबराते. ऋषभचरण जैन के उपन्यास 'गदर' को ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त घोषित किया गया. यह उपन्यास 1857 के स्वतंत्रता संग्राम को लेकर लिखा गया खूबसूरत उपन्यास था. इसमें प्रेम और कर्तव्य दोनों हैं. देश की वेदी पर दी गई कुरबानियों की कथा है इसमें. नाना साहब के मंत्री अजीमुल्ला खां की वीरता और देश के लिए उनके समर्पण की गाथा है. 'गदर' उपन्यास के नायक अज़ीमुल्ला खां और नाना साहब की पुत्री मैना नायिका. दोनों एक दूसरे से बेहद प्रेम करते हैं लेकिन देश के प्रति कर्तव्य प्रमुख है. यहां दोनों के बीच द्वंद्व उभर पड़ा है, '' एक तरफ कर्तव्य है दूसरी तरफ प्रेम, एक तरफ देश की भलाई है– दूसरी तरफ अपनी, एक तरफ वीरतापूर्ण मृत्यु है दूसरी तरफ कायरतापूर्ण जीवन, समझ में नहीं आता किस रास्ते को पकड़े और मोह के फन्दे से किस प्रकार निकलें?''[1] अज़ीम के प्रेम निवेदन करने पर मैना उनको कर्तव्य का ध्यान दिलाती है और आजादी प्राप्त कर लेने की शर्त पर उनका सामिप्य स्वीकार करने की बात करती है, '6अच्छा सुनो, जिस दिन तुम भारत वसुन्धरा को विदेशियों के शासन से मुक्त करोगे और विजय का सेहरा बांध कर मेरे पास आवोगे उस दिन मुझे पाओगे.''[2] ...अज़ीम तुम मेरे स्वामी हो, मैं तुम्हारी हूं, जीती भी, मर कर भी परंतु सावधान् 'मुझे छूने का अधिकार अभी तुम्हें नहीं है. मुझे छू कर तुमने मेरा प्रण भंग किया है, अपने आप को भ्रष्ट किया और अपनी अधीरता के कारण पुण्य को पाप, अमृत को विष और सत को असत बना दिया...''[3] मैना अजीमुल्ला खां को उनके कर्तव्य की याद दिलाती है और देश को विदेशियों के हाथ से मुक्त कराने की बात करती है, ''अज़ीम, जाओ फिरंगियों के हाथ से देश की रक्षा करने का प्राण–पण से चेष्टा करो. मुझे भूल कर मेरा मोह त्याग कर–कार्य क्षेत्र में जुट पड़ो. यही तुम्हारा प्रायश्चित है और

इसी से मुझे संतोष की प्राप्ति होगी.''[4] देश की आजादी प्रमुख थी. इसके लिए देश प्रमियों ने सर्वस्व न्यौछावर कर दिया. इसी प्रकार पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की प्रतिबंधित कहानी 'उसकी मां' में भी देश की आजादी की भावना प्रबल है. जानकी का बेटा लाल कहता है, ''आप ने गलत सुना, चाचाजी. मैं किसी षणयंत्र में नहीं. हां, मेरे विचार स्वतंत्र अवश्य हैं, मैं जरुरत–बेजरुरत जिस–तिस के आगे उबल अवश्य उठता हूं. देश की दुरवस्था पर उबल उठता हूं, इस पशु–हृदय परतंत्रता पर. ''[5] इस प्रकार परतंत्र देश को बेड़ियों से मुक्त करने के लिए वह दृढ़ संकल्प है, ''मेरी कल्पना यह है कि....'' उत्तेजित स्वर से लाल ने कहा, ''ऐसे दुष्ट, नाशक, व्यक्ति राष्ट्र के सर्वनाश में मेरा भी हाथ हो''.[6] इसी प्रकार 'वह दिन' शीर्षक कहानी में आनंद मोहन और जगदीश की बातचीत में प्रिंस के भारत आगमन पर हड़ताल करने की योजना है. ''आनंद मोहन– मैं शहर की हड़ताल को अधिक सफल बनाने की चेष्टा करुंगा.''

जगदीश–'' और यदि गिरफ्तार हो गए.''

आनंदमोहन–'' तो क्या परवाह है? चलेंगे जेलखाने. दो चार महीने उस दुनियां के मज़े भी लेंगे. मैं तुमसे पहले ही पकड़ा जाउंगा.''[7] क्रांति की चेतना बालक, वृद्ध, युवक सब में भरी पड़ी थी. देश की मुक्ति के लिए सभी बलिदान देने को उतावले रहते. वृद्ध ठाकुर बहोल सिंह के गीत में जन्मभूमि के लिए सब कुछ निछावर करने का संकल्प है,

''ऐसी होली
ऐसी होली खेलो लाल! ऐसी होली–
जन्मभूमि का दुख हरने को माता का मंगल करने को।
भरने को पीड़ित हृदयों में, सुख का झर–झर झरने को।।
लेकर मैं कराल करवाल,
ऐसी होली–
ऐसी होली खेलो, लाल!''[8]

इसी प्रकार मुनीश्वर दत्त अवस्थी की जब्त की गई कहानी 'क्रांति कामना' का हरसुख को अनुभव हो गया था कि उसकी दुर्दशा का कारण सरकार है और वह क्रांति के लिए दृढ़ संकल्प ले लिया. '6हमारी दुर्दशा का कारण यह शरीर नहीं है. वस्तुतः सरकार की कृपा से मैंने स्वास्थ्य खोया, धन खोया, माता खोई, दर–दर धक्के खाए. शरीर को दंड देना अन्याय है. कुछ क्षण पश्चात् उसके चित्त में क्रांति की कामना उत्पन्न हुई ओर वह उन्मत्त की भांति तेजी से दिल्ली की ओर चल दिया.

''[9] देश की आजादी के लिए शहीदों की टोली में नाम लिखवाने की अपील की जा रही थी. जब्त 'पैरोल पर' उपन्यास में जगह–जगह ऐसी चेतना भरी पड़ी है. ''फिर अमिता उठी, धीरे–धीरे गुनगुनाती रही और तब सामने रखे पियानो के पास पहुंची. कानपुर के बच्चे–बच्चे की ज़बान नर उन दिनों जो गीत थिरक रहा था, उसी को झूम–झूम कर गाने लगी–

शहीदों की टोली में नाम लिखा लो।
कफन सर पे बांधो,
चलो आगे–आगे।
कफन सर पे बांधो बढ़ो आगे–आगे।
सुबु के सितारे को शाम दिखा दो
शहीदों की टोली में नाम लिखा लो।''[10]

प्रतिबंधित पुस्तक 'आगरा सत्याग्रह संग्राम' में लोगों के भीतर आजादी का जोश देखते ही बनता है. 'आगरा सत्याग्रह संग्राम' की मूल प्रति राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में सुरक्षित है. इस पुस्तक को ब्रिटिश राज में जब्त घोषित किया गया. इसमें प्राप्त विवरण के अनुसार लोगों में अभूतपूर्व उत्साह था., ''लाहौर–कांग्रेस में स्वाधीनता–संग्राम की घोषणा कर दी थी. कार्यकत्री कमेटी की आज्ञानुसार छब्बीस जनवरी (1930) को देश भर में स्वाधीनता –दिवस मनाया गया. उसी दिन आगरे में जीवन और जागृति का जाज्वल्यमान ज्योति जगी हुई दिखाई दी. शहर में पच्चीस की शाम तक ही दस हजार से ऊपर झंडा बैज और दो हजार के करीब झंड़े बिक चुके थे. छब्बीस को ठीक आठ बजे जिला कांग्रेस के सभापति श्री कृष्णदत्त पालीवाल चुंगी कचहरी के सामने राष्ट्रीय झंड़ा फहराया. उस समय झंड़े के नीचे लगभग बीस हजार लोग उपस्थित थे. ''[11] राष्ट्र की मुक्ति के लिए अनगिनत लोग इकट्ठे होत थे. पुलिस के आतंक के बावजूद झंड़े फहराए जाते. स्वराज को सफल बनाने के लिए सभी उत्साहित थे. ''जैन अनाथालय और दयानंद अनाथालय के बैण्ड़ों ने झंडे का अभिवादन किया. सारे शहर में झंड़े ही झंड़े दिखाई देते थे मानो झण्ड़ों का ही शहर हो. तीसरे पहर के जुलूस में भी बीस हजार से ज्यादा की भिड़ थी. शाम को नयेगंज की मीटिंग में चालीस हजार से अधिक जन–समूह सम्मिलित हुआ था. इस जन–समूह को पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव सुनाने के लिए पांच प्लेट फार्म बनाने पड़े....लोगों के उत्साह का ठिकाना न था. बहुत से लोगों ने अपनी दुकानें सजाई, बहुतों ने रोशनियां की. ''[12] स्वराज के लिए हर एक भारतवासी तड़प उठा था. ज़ेबा के प्रतिबंधित नाटक 'ज़ख्मी पंजाब' में नट–नटी के संवाद के दौरान भारत की बदहाल स्थिति को सामने रखा गया–

नट : हां उस आर्य सेवित भारतवर्ष की जो आज कई सदियों से अन्यजातियों के पैरों में कुचला जा रहा है, जो गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ अन्दर ही अन्दर गम से धुला जा रहा है, वह भारत जिसके हाथ –पावों सुनहरी जंजीरों में जकडे हैं, जिसके मन में बुद्धि और आत्मा विदेशी विचार के रंग में रंगे हैं, जिसके सिर पर अनर्थ के भाले हैं, और जबान पर ताले हैं।

बंद पिंजरे में है , पर आज्ञा नहीं फरियाद की।
धुटके मर जरए यही मर्जी है बस सैयाद की।।''[13]

भारत की विपदा असहनीय थी। पल–पल मानवता कुचली जा रही थी। जनता को ऐसी स्थिति से अवगत कराने के लिए कटु सचाई को सामने रखना अत्यंत खतरनाक था फिर भी साहसी लेखकों ने इसका सारा जिम्मा अपने कंघों पर उठा लिया था।

इस स्वतन्त्रता की खातिर सबकुछ बलिदान करने की अपील उठ रही थी–
''इस आजादी की खातिर अपना तन मन धन लगा देंगे।
हम अपने प्यारे भारत को स्वतन्त्र फिर बना देंगे।।
अभी तो की है कुर्बानी सिर्फ माल और दौलत की।
जरुरत जब पड़ेगी तो यह जानें भी लड़ा देंगे।।''[14]
शेरे पंजाब लाजपतराय का कथन है –

लाजपतराय : आओ मेरे प्यारे मित्रों आओ! अंधेरे से निकल कर उस रोशनी में आओ, जहां से स्वाधीनता का सुंदर स्वरुप अपने पूरे प्रकाश के साथ चमकता हुआ नजर आ रहा है. आओ, इस गुलामी के कारागृह से निकल कर उस खुली हवा में आओ जहां आजादी का शीतल झोंका तुम्हारे आत्मा को अपनी कुदरती खुश का बहम पहुंचाएगा।''[15] स्वतंत्रता की चाह आग की तरह फैली हुई थी। ' बरबादी –ए–हिन्द' शीर्षक नाटक में भी इसी आग की लहक हर ओर फैली हुई है। यह नाटक सेठ गोविन्द राम सेठी 'शाद' द्वारा रचा गया था. इस नाटक को आपत्तिजनक बता कर जब्त कर लिया गया था. नाटक के पात्र दौलतराम के कथन में जीवन की सफलता का आदर्श स्वतंत्रता है.

दौलतराम– श्रीमान्! हम मनुष्य हैं। यदि जिएंगे तो स्वतंत्र मनुष्यों की तरह जिएंगे, नही ंतो मर जाएंगे, अपना जीवन सफल कर जाएंगे। अब समय है कि हम कंपनी की गुलामी का जुआ अपनी गर्दन पर से उतार देंवे''[16] आगे दौलतराम की ललकार यह है :
''करें तदबीर ऐसी अबकि आजाद हो जावें।

करे बर्बाद दुश्मन को या खुद बर्बाद हो जावें।
रियाया का जिगर खाने से न खाना ही बेहतर है।
गुलामों की तरह जीने से मर जाना ही बेहतर है।।''[17]

राष्ट्र के लिए लोग अपना सर्वस्व निछावर करने के लिए तैयार थे. सत्याग्रहियों में पुलिस के अत्याचार के बाद भी जोश जरा भी कम न हुआ. सैनिक कार्यालय से प्रकाशित पुस्तक 'आगरा सत्याग्रह संग्राम' में रोंगटे खड़े कर देने वाला विवरण प्राप्त होता है, ''ढाई बजे के करीब सत्याग्रहियों पर कोतवाली की छाया आना शुरु हुआ तो उन्हें खींच कर धूप में डाल दिया गया और राव साहब के चले जाने के बाद फिर दूसरे लोगों को उन्हें पानी पिलाने से रोका, साढ़े तीन बजे के करीब जनता को तितर–बितर करने के लिए फिर घोड़े दौड़ाए गए, लाठियों से भी काम लिया गया जिससे कई लोगों को चोट आई, साढ़े चार बजे सत्याग्रही गिरफ्तार कर लिए गए. घोड़ों की टापों ओर लाठियों की मार से जिन लोगों को चोट आई थी उनका इलाज करने से थामसन अस्पताल वालों ने इनकार कर दिया.''[18]

अंग्रेजों के असहनीय जुल्म के बावजूद देशवासियों की आंखों में आजादी का सपना लहर रहा था. लोग इन जुल्मों को सहने के लिए तैयार थे–

''तैयार हैं हम जेल में चक्की चलाने के लिये।
कटिबद्ध हैं हम मूंज की रस्सी बनाने के लिये
मंजूर सुर्खी कूटना कोल्हू चलाना है हमें।
तैयार हैं हम अधभुना दाना चबाने के लिये।''[19]

'सरस्वती प्रेस' काशी से प्रकाशित होने वाली पुस्तक 'आजादी का बिगुल' में ऐसे जोशीले गीत व गज़लें हैं जिनको पढ़ने से मन फड़क उठता है. यह पुस्तक अंग्रेजों द्वारा जब्त की गई थी.–

''शहीदों के खूं का असर देख लेना।
मिटायेंगे जालिम का घर देख लेना।।
किसी के इशारे के हम मुन्तजिर हैं।
बहा देंगे खूं की नहर देख लेना।।''[20]

अंग्रेजों द्वारा बनाए कानून हर जगह तोड़े जा रहे थे, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार जारी था. स्वयं–सेवकों के जत्थे इस काम में लगे हुए थे. क्रांतिकारी , सत्याग्रही बड़े जोर–शोर से जुटे हुए थे लोग सरकार की नजर में बागी बनने को उतावले थे. ब्रिटिश शासन द्वारा जब्त की गई रचनाओं में इनकी अभिव्यक्ति मिलती है–

''हमें आजाद होने का नशा दिल में समाया है।
बिना लाइसेंस के हमने नमक अपना बनाया है
कहां है जालिमों का हाथ अब पंजा लड़ाने को
उठा कर राष्ट्र का झंड़ा जमाने को उठाया है।।''[21]

देश की आजादी अन्तिम लक्ष्य था. क्रांतिकारियों के दल अपने तरीके से साम्राज्यवादी शक्तियों को उखाड़ फेंकने के लिए प्रतिबद्ध थे. जेलें भर गई थी, फांसी पर चढ़ने के लिए युवक उतावले थे. 15 से लेकर 20–22 बरस के युवक अपना बलिदान दे रहे थे. इस लड़ाई में माताएं–बहनें भी पीछे न रहीं.

2.2 आर्थिक मुक्ति का सवाल

2.2.1 अंग्रेजी राज में किसान

प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य में एक ओर अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति दिलाने की अकांक्षा है तो दूसरी ओर देश में चल रहे विभिन्न आंदोलनों को भी स्वर दिया गया है. भारतीय जन–जीवन हर ओर से घिरा था. हर ओर जुल्म था. त्रस्त नागरिकों की आत्मा आजादी के लिए चीख रही थी. लड़ाई जारी थी. इस लड़ाई में किसान , मजदूर, स्त्रियां सब साथ थे. अंग्रेजों ने भारत को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तौर पर पूरी तौर पर हस्तगत कर लिया था. जीवन के हर क्षेत्र में भयावह शोषण जारी था. लूट–खसोट चरम पर थी. प्रतिबंधित साहित्य में इस शोषण के खिलाफ लागों को जागरुक किया गया.सरकार के घोर दमन के बावजूद लेखनों ने यह जिम्मेदारी उठा रखी थी.लेखन के जुर्म के लिए उन्हें सजा भुगतने से कोई खौफ न था. उस समय अर्थव्यवस्था की धूरी रहे किसान वर्ग का भयंकर शोषण हो रहा था. उन पर भांति–भांति के कर लगा कर उनकी सारी तैयार फसलें छीन ली जातीं. अंग्रेजों के अतिरिक्त इनका शोषण पटवारी, सूदखोर, जमींदार वगरैह भी करते थे. दिन–प्रति–दिन लगान बढ़ाया जाता. किसानों की स्थिति अति दयनीय था. उन्हें पेट भर भोजन तक नसीब नहीं होता था. स्वामी सहजानंद सरस्वती के लेखन में उनके दयनीय जीवन का गहराई से विश्लेषण किया. वे लिखते हैं, ''किसान की गरीबी स्थाई है, इनका पेट कभी भरता

ही नहीं.''[22] प्रतिबंधित साहित्य में इनकी पूर्ण अभिव्यक्ति की गई. प्रतिबंधित पुस्तक 'आगरा सत्याग्रह संग्राम' में किसान धीरे–धीरे शोषण के खिलाफ संगठित हो रहे थे. ''किसानों में धीरे–धीरे जागृति हो रही है और किसान आंदोलन जोर पकड़ रहा है. ऐसी हालत में जमींदार लोग सोचने लगते हैं कि अगर अपने आदमी को सजा दी तो किसान शोख हो जाएंगें और आगे चैन से न रहने देंगे.''[23] सरकार किसानों के इस संगठन के खिलाफ थी. फलतः उसने दमन में कोई कोर–कसर न छोड़ा. ''आज के जुलूस को देख कर अधिकारी घबड़ा गए हैं हड़बड़हट में उन्हें और कुछ तो नहीं सूझा, पालीवाल जी, महेन्द्र जी, जगनप्रसादजी रावत तथा तत्कालीन प्रथम सेवक द्वारिका प्रसाद जी के नाम एक सौ चवालीस का नोटिस निकाला कि वे दो महीने तक बरौदा–भिलावटी न जावें! यह नोटिस महेन्द्र जी को बीस की रात को साढ़े बारह बजे मिला. पालीवाल जी को बाइस को मिला. दोनो रावतों को दिया ही नहीं गया. आम हुक्म दिया गया कि दो महीने बरौदा–भिलावटी में लगान बन्दी का जलसा न हो.''[24]

किसानों पर होने वाले जुल्म की कोई सीमा न थी. तरह–तरह के झूठे नियम बनाकर जबर्दस्ती वसूली की जाती थी. लगान के अलावा किसानों से जमींदार व उनके सेवक हर तरह की वस्तुओं की छीना झपटी करते. ''यदि किसानों से वे लोग सैकड़ों प्रकार के नाजायज कर रुपया, पैसा, घी, दूध, साग, तरकारी, बर्तन, भाड़ा–कंबल , रसगुड़ और तहरीर वगैरह के रुप में बराबर वसूल न करते रहें तो उनका काम चलेगा कैसे ? जमीदार लोग इन अमलों को भूखे कुत्तों की तरह बेचारे किसानों पर छोड़ देते हैं.''[25] इस तरह किसानों से मनमानी लूट की जाती, ''जमीदारियों में नौ–सात की प्रणाली है जिसके मानी है कि यदि खेत की पैदावार सोलह हो तो नौ मन जमीदार का और सात मन रैयत का होता है. इसके सिवाय नोचा, बड्डी, बिछुआ, तहरीर, वगैरह गैर कानूनी टैक्स और रोडसेस भी लिए जाते हैं. सव्रे के अनुसार फी मन चार सेर जो मजूरी होती है वह भी या तो बाद दी ही नहीं जाती या एक दो सेर बाद ही दी जाती है''[26] इन सब के बावजूद उन पर भयंकर जुलम होता है. हिंदुस्तान के किसानों पर होने वाला जुल्म अन्य देशों में होने वाले जुल्म से बहुत बड़ा था. ''जिन्हें रुस के किसान विपत्तियां समझते थे, जुल्म मानते थे, गया के किसानों के सिर होने वाले जुल्मों और विपत्तियों के सामने उनकी कुछ भी हस्ती नहीं है. रुस के किसानों को तो आधी पैदावार कभी–कभी देनी पड़ती थी और यहां आधी तो क्या तिहाई चौथाइ भी शायद ही कभी बच पाती है. वहां ठीके दार के चलते गुलामी थी, फलतः जहां ठीकेदारी न थी, वहां न थी. लेकिन यहां तो सर्वत्र सदा सर्वात्मा गुलामी का साम्राज्य है.''[27]

किसानों को जमीदारों के अमले परेशान करने का कोई मौका नहीं छोड़ते थे. ''एक बार पूस के महीने में दानाबंदी के लिए किसान का खेत अमले नपवा रहे थे. नापने में चार कट्ठा खेत बढ़ गया. किसान ने कहा कि ऐसा क्यों होता है. गलत नापा गया है. चार कट्ठे का अधिक दाना मुझे देना पड़ेगा इत्यादि. बस , अमले चले गए, दाना न हुआ और मालिक ने हुक्म जारी किया कि सौ रुपये जुर्माना दो, क्योंकि अमलों के साथ गुस्ताखी की थी. बड़ी कठिनाई से घटा कर 25 रुपये जुर्माना किया गया और गुड़ बेच कर चुकता करने पर कहीं चैत बीतने पर दाना किया गया, जब खेत में न तो धान की बालें थीं और न खेसारी की छीमियां. सब गिर चुकी थी. दाना भी क्या हुआ. अगहन पूस के महीने में उस खेत के चारों ओर के खेतों में फी बीघा जितना दाना हुआ था उतना ही उस खेत का भी खसरा लिख दिया गया.''[28] इतनी तंगी के बावजूद अगर किसान उनकी मांगे पूरी नहीं कर पाते थे तो उन पर अमानवीय अत्याचार होता. ''ऊंचे कुल के किसानों को जमीदारों के अमले अपनी कचहरियों में बुलवा कर गालियां देते, मारने दौड़ाते, धूप में खड़ा करवाते, सिर पर काली हांड़ी रखवाते, दुसाध का पानी मुंह में डलवाते, बिना खिलाए पिलाए रात–रात भर मकान में बंद रखते, जहां मच्छर खाए डालते हैं और अंत में मजबूर कर के नोट के लिए जबर्दस्ती अंगूठे का निशान ले लेते हैं.''[29] वे किसानों से जबर्दस्ती मार–पीट के दम पर हर काम करवा लेते थे, ''कुछ किसानों के दोनों हाथ पीठ की ओर एक रस्सी में बांध कर मजबूरन अंगूठे में काजल लगवाया गया और इस तरह अंगूठे का निशान लिया गया जिसके लिए मुकदमे तक चले हैं. किसान के छप्पर पर और खेत में जो भी तरकारी हो उसे जमींदारों के अमले मनमाना चाहे जितना ले जाएं वह चूं नहीं कर सकता. एक बार किसी चुनाव में बीसों मन तरकारी यों ही लूट ली गई और एक पैसा न मिला.''[30]

प्रतिबंधित रचनाओं में किसानों के ऊपर हो रहे जुल्म की भरपूर अभिव्यक्ति की गई. किसानों के जुलूसों , सभाओं पर पुलिस के अत्याचार लेखकों ने अपने लेखन का हिस्सा बना कर जनता के सामने सत्ता के चरित्र को सामने रखा. ''इधर दस बजे तक कोई सात सौ सत्याग्रह स्वयं सेवकों का जत्था आगरा छावनी से पैदल मार्च करता हुआ पण्डित रामचंद्र पालीवाल के सेनानायकत्व में आ पहुंचा. इसने पण्डित श्रीकष्णदत्त पालीवाल, पण्डित जगनप्रसाद रावत, पएिण्डत विश्वेश्वर दयाल चतुर्वेदी की आानुसार अपनी टोलियां बना कर एक सौ चवालीस की आज्ञा को भंग करना शुरु किया. फिरोजाबाद का जत्था मुख्य पुलिस के घेरे से जा भिड़ा. फतिहाबाद के जत्थे ने रण–कौशल से अपने दो भाग किये और पुलिस के घेरों जरा खाली खाली जगह पा कर ये लोग भीतर घुस गये. भीतर घुसते ही इन्होंने भाषण देने शुरु किये. गांव के सब लोग जमा हो गये. पुलिस ने इन्हें पकड़–पकड़ कर पानी की पोखर में डाल दिया फिर ढेले मार मार कर निकलने से रोका. गांव

वालों को इस पर बहुत रोष आया. यह देख कर पुलिस वाले चुप हुए. श्री चंद्रभान, श्री सीताराम, श्री रमेशचंद्र, श्री नरायन मेहतर आदि बारी बारी से लगान बन्दी पर व्याख्यान दिया. पुलिस एक को पकड़ती तो दूसरा व्याख्यान देने लगता.''[31]

कहना न होगा कि सिर्फ भारत में किसानों की दशा खराब न थी वरन् जर्मनी में भी किसानों की दशा अत्यंत बुरी थी. वहां किसानों की कई श्रेणियां थी. उनकी भी स्थिति अत्यंत चिंतनीय थी. ''अगर किसान दास होता था तो वह अपने मालिक के रहमोकरम पर होता था. अगर वह बंधुआ होता था तो उसके साथ किए गए करार में बेशुमार बंदिशें होती थी जो उसे कुचल डालने के लिए काफी होती थी. इन शर्तों को रोज और कड़ा कर दिया जाता था. उसये अपने मालिक की जायदाद पर पूरा समय काम करना पड़ता था, तो उस दौरान पैदा हुई आय को वह लगान, टैक्स महसूल, मार्ग(युद्ध) कर, सीानीय कर और साम्राज्यिक कर भरने में खच्र कर देना पड़ता था. वह मालिक को धन दिए न तो शादी कर सकता था और न ही मर सकता था.''[32]

इसी तरह हिंदुस्तान के किसानों का संपूर्ण धन और जीवन अंग्रेजों की दासता में पिस रहा था. पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की जब्त की गई कहानी 'उसकी मां' में इस बात का विरोध किया गया है. इस कहानी में स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले युवाओं की आपसी बातचीत से ज्ञात होता है कि देश का सारा धन मुट्ठी भर लोगों की जेबों में जा रहा है. ''तीसरा वही बंगड़ बोला–सबसे बुरी बात यह है, जो सरकार रोब से, 'सत्तावनी' रोब से, धाक से , धांधली से, धुंए से हम पर शासन करती है. वह आंखे खोलते ही कुचल –कुचल कर हमें दब्बू, कायर और हतवीर्य बनाती है. और किस लिए ? जरा सोचें तो? मुट्ठी भर मनुष्यों को अरुण–वरुण और कुबेर बनाए रखने के लिए! मुट्ठी भर मनचले सारे संसार की मनुष्यता की मिट्टी पलीद करें , परमात्मा प्रदत्त स्वाधीनता का संहार करें–छीः! नाश हो ऐसे मनचलों का!''[33]

हिंदुस्तान को लूटने वालों की संख्या बहुत बड़ी थी. गरीब व्यक्ति पर सभी अपना अधिकार समझते थे. उग्र जी की ब्रिटिश काल में जब्त की गई कहानी बाबा नरहरिदास की पंक्तियां इस सचाई को उधृत करती हैं, ''इन गरीबों को राजा लूटता है, सिपाही लूटता है, धनिक लूटता है और वणिक लूटता है.''[34] इस लूट–खसोट की बदौलत भारत निर्धन बनता जा रहा था. कामगार लोगों को मेहनत के बावजूद पेट भर भोजन न नसीब था. ''तीन से चार करोड़ तक लोग ऐसे हैं जिन्हें दिन में एक बार से ज्यादा खाने को नहीं मिलता. इनके लिए हमेंशा ही भुखमरी बनी रहती है. तमाम बीमार आदमी मेरे दरवाजे पर इकट्ठा होते थे–लेकिन मैं उन्हें पुष्टिकारक भोजन करने को कहूं तो वे उसे लाएं कहां से!''[35] प्रतिबंधित कहानी 'निहिलिस्ट' में हिंदुस्तान की दीन दशा का अंकन किया

गया है–'' उसने देखा कि उस चित्र में एक ओर कोई अत्यंत बूढ़ी अबला और दीना स्त्री खड़ी है. उसके पैरों के नीचे लिखा था,''हमारी दुखिता जन्मभूमि''! दुखिता जन्मभूमि ! क्यों ?–हां चित्र से तो ऐसा ही जान पड़ता है मानो इसे पेट भर भोजन नहीं मिलता. आंखें बैठ गई हैं. वस्त्र फटे हैं. शरीर से हाड़ छोड़ कर मांस है ही नहीं. और यह ? ये सब शैतान के बच्चे से कौन चिल्ला रहे हैं ? इनकी भी एक एक हड्डी गिनी जा सकती है. सब के सब कंपित कलेवर क्यों हैं ? क्या लिखा है, ' हमारे द्ररिद्र किसान ओर मजदूर भाई –बहन'!''[36]

किसानों की अति दीन दशा इन पंक्तियों से भी ज्ञात होती है–

''हमारे प्यारे बंधु किसान,
मरते हाय! अ–नय के कर से पाते दुख महान।
अनियंत्रित शासन है, कारण इसका एक प्रधान।
जब तक यह न मिटेगा तब तक कहीं नहीं कल्यान।''[37]

अंग्रेजों का प्रमुख उद्देश्य यहां के धन की लूट करना था. वे हिंदुस्तान आए हुए दूसरे आक्रमणकारियों से भिन्न थे. उन्होंने इस धरती को अपना कभी स्वीकार न किया. उन्होंने यहां के लोगों का पूरी तरह ध्वंस किया. ''हिंदुस्तान की इसी प्राचीन आर्थिक व्यवस्था पर विदेशी पूंजीवाद ने धावा बोला था. ब्रिटिश राज के रुप में पूंजीवाद ने इस व्यवस्था की नींवे हिला दीं. अंग्रेजों की जीत के पहले और लोगों ने भी हिंदुस्तान को जीता था, लेकिन उनकी विजय से इस जीत में बड़ा अंतर था. उन्होंने आर्थिक व्यवस्था को हाथ नहीं लगाया था, बल्कि वे खुद इसी में घुलमिल गए थे. अंग्रेजों की जीत ने इस व्यवस्था को छिन्न–भिन्न कर दिया.''[38]

हिंदुस्तान की दिन–प्रति–दिन बदहाल होती स्थिति को देख कर मार्क्स का कथन है, ''इसमें संदेह नहीं कि अंग्रेजों ने हिंदुस्तान पर जो मुसीबत बरपा की है, वह पहले की मुसीबतों से बिलकुल भिन्न और ज्यादा कठोर है.''[39] देश की इस व्यवस्था को लेखकों ने अपनी लेखनी से उकेरा. जब्तशुदा रचनाएं उस समय उग्र चेतना के प्रसार में बड़ी भूमिका निभा रही थी. 'पागल' शीर्षक कहानी में स्मरनोफ़ के कथन में किसानों की चिन्ता है, ''स्मरनोफ़–सुपरिटेंडेंट क्षमा प्रार्थना के लिए कहते हो ? जरा देश के किसानों को मेरे साथ चल कर एक बार देख आओ. अरे वे भी तुम्हारे भाई है. वे सिर का पसीना पैर तक ला कर , शीत, ग्रीष्म, भूख–प्यास, रोग–शोक–सब कुछ झेल कर; अन्न उत्पन्न करते हैं. पर हाय! जरा इस शासन प्रणाली को तो देखो–उन अभागों के पास खाने तक का ठिकाना नहीं. अधिकारी मजे से बैठ कर होटलों में डबल रोटी और शराब–कबाब उड़ाते हैं.

जमींदार कृषकों को लूट–लूट कर उनके रक्त से अपना महल बनाते हैं. और बेचारे किसान भूखों मरते हैं. यह अन्याय नहीं है? ''[40]

अन्न उपजाने वालों की स्थिति दिन–ब–दिन खराब होती जा रही थी. हर ओर भयानक गरीबी छायी थी. इस अवस्था को देख कर राधामोहन गोकुल लिखते हैं, ''देश की कंगाली बहुत बढ़ गई है और दिन–दिन बढ़ती जाती है किसान मजदूर खाने पहनने के लिए तरसते हैं अंग्रेज राज्य आने के पहले हमारी यह दशा कभी नहीं थी. देश में से 100 में से 96 आदमी न पेट भर खाने को पाते हैं, न तन ढकने को पूरा कपड़ा मिलता है. देश में इतना अन्न और इतनी रुई पैदा होती है, पर वह सब महाजन के ब्याज और जमींदारों की माँग और सबसे अधिक सरकारी करों में ही सोख ली जाती है. इसका कारण अंग्रेजी राज की निर्दय शासन प्रणाली है. अरबों रुपया जमीन के कर नमक के कर विलायती अफसरों की पेंशन वगैरह में चला जाता है. देश की आमदनी का आधे से अधिक रुपया फौज के खर्च में चला जाता है. एक बड़े लाट साहब ही 21,000–रुपया महीना तनख्वाह ले लेते हैं और 5 वर्ष पीछे जब विलायत जाते हैं तो जब तक जीते हैं पेंशन पाते रहते हैं. पुलिस, फौज, माल, आबकारी, अदालत वगैरह में जहाँ हिंदुस्तानी सरकारी नौकरी को 20 रुपया वेतन मिलता है, वहाँ गोरे नौकर को 200–रुपये दिया जाता है. इसी तरह सैकड़ों बाते हैं जिनसे देश का अन्न, रुई और रुपया विदेश खिचता जाता है, इसलिए हमलोग भूखों मरने लगे.''[41]

अंग्रेजों के शोषण की बदौलत देश में अकालों की बाढ़ आ गई थी. ''1783–84 के उत्तरी भारत में अकाल हुआ जिसमें दिल्ली भू–क्षेत्र के 600 गांव उजड़ गए जिनमें 200 ग्राम 1820 तक बेकार पड़े रहे. इसी तरह 1792 में हैदराबाद में अकाल पड़े. 1802–03 में मद्रास, बंबई , उत्तरी–पश्चिमी प्रांतों तथा अवध में अकाल पड़े. 1833 में गुंटूर जिला में भयंकर अकाल पड़ा.''[42] अकाल से इतनी मौते हुई कि कहा नहीं जा सकता. इसकी 'भयंकरता' का वर्णन जॉन लारेंस ने किया जो इस क्षेत्र में अधिकारी थे. उनके अनुसार, ''मैंने जीवन में कभी ऐसे दृश्य नहीं देखे जैसे कि होडल तथा पलवल के परगनों में देखे. कानपुर में विशेष सैनिक टुकड़ियां लाशों को हटाने के लिए जाती थी. हजारों लाशें गांवों और कस्बों में उपेक्षित रुप से तब तक पड़ी रहती थी जब तक कि जंगली जानवर आ कर उन्हें खा नहीं जाते.''[43] हिंदुस्तान की अति शोचनीय अवस्था में जन–जीवन मौत कें मुंह में जा रहा था. भूख सब को चबाए जा रही थी. स्मरनोफ़ विलिस्की को दिए भाषण में कहता है, ''उस दिन भयंकर सर्दी थी. मैंने देखा एक झोपड़ी में एक कृषक की स्त्री पड़ी थी और पड़ा था उसके वस्त्र हीन वक्ष पर एक बे–वस्त्र हाड़ का बच्चा. माता को जान पड़ता था कई दिनों से भोजन नहीं मिला था फिर भी अज्ञान क्षुधातुर बालक जननी के स्तनों से दूध निकालने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहा

था. अपनी असफलता के कारण वह रह–रह कर वह चिल्ला उठता था–पर हाय! अभागे से चिल्लाया भी नहीं जाता था. यह पूछने पर कि उसके परिवार में और भी कोई है, ज्ञात हुआ कि उसका एकमात्र सहायक पिता जमींदार के यहां बेगार पकड़ कर गया है.''[44]

जमीदार गरीबों के सिर पर सदैव तांडव करते रहते थे. मुनीश्वरदत्त अवस्थी की जब्ज कहानी 'समर्पण' में जमीदारों की निर्दयता उकेरी गई है. वे लिखते हैं, ''आंसुओं से भीगे हुए वस्त्रों को उन मेघों ने निर्दयता से सराबोर कर दिया था. तब सर्दी से कटकटाते हुए परिवार ने अपनी टूटी झोपड़ी के एक कोने में शरीर की रक्षा करनी चाही थी. अत्याचारी शासकों की भांति पूंजीपति वायु भी मेघों की सहायता के लिए, अपनी सेना लेकर सनसन अस्त्र छोड़ने लगी थी. बेचारे अस्त्र–वस्त्र विहिन परिवार की टूटी झोपड़ी उसके तीखे तीरों से तहस–नहस हो गई. तब उस बरसते हुए मूसलाधार पानी में उस गरीब ने सामने कगे जमीदार की चौपाल में भाग कर प्राण रक्षा करनी चाही थी. उफ! आठ बरस बीत जाने पर हमें जेसा का तेसा ही याद है कि जमीदार ने उसे आश्रय देना तो दूर उल्टे लगान का तकाजा किया था. एक घंटे बरसते पानी में खड़ा रख कर जब उससे कुछ न पाया तो बदा खलत बेंजा के अपराध में (पुलिस) के हवाले कर दिया और आठ दिन बाद अमीरों के टुकड़ों पर नाचने वाली पुलिस की रिर्पोट पर उस अक्ल के अंधे , हृदयहीन मजिस्ट्रेट ने उस पर दो सौ रुपये जुर्माने का दण्ड कर दिया.''[45] गरीब व्यक्ति न तो जी सकता था, न मर सकता था, मानों अतिशोषित होना उनकी नियति हो. मरते दम तक क्रूर हृदयी जमीदार पैसे वसूलने आ जाते. ''बूढ़ा पृथ्वी पर रोगी पड़ा अपनी अंतिम सांसे पूरी कर रहा है और उसकी पत्नी उसके पास ही बैठी रोगी की घड़ियां रही है और उसके बच्चे अलग अपने पेट के लिए तड़प रहे थे. मनोहर ने यह दशा देखी. वह सहम कर एक किनारे खड़ा हो गया. स्त्री ने कहा,'मालिक दया करो, देख रहे हो हमारे जीवन की आशा, पति मर रहा है, बच्चे भूख से व्याकुल है और बेगार में लेने आए हो. ' स्त्री आगे न कह सकी और मूर्छित हो कर गिर पड़ी. अब मनोहर ने समझा कि जो कुछ मैंने अभी तक समझा था, उससे भी आगे समझने की अभी गुंजाइश है. हृदयहीन शासक और पूंजीपति मृतकों की ठठरी पर अपना तांडव नृत्य कर के आनंद मनाते हैं. बूढ़े और उसकी स्त्री, दानों ने दम तोड़ दिया.''[46]

अंग्रेजों ने यहां की अर्थव्यवस्था को पूरी तरह बदल डाला. इस बदलाव ने किसानों को कहीं का नहीं छोड़ा. ''19 वीं शताब्दी के मध्य तक अंग्रेजों ने भारतीय कृषि व्यवस्था को परिवर्तित कर दिया. जिससे ग्राम की आत्मनिर्भरता तथा स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया. उद्योग तथा कृषि का संतुलन नष्ट हो गया. अभी तक कृषि एक जीवन यापन का तरीका था न कि व्यापारिक हितों की पूर्ति का

साधन. ग्राम की पैदा हुई अनेक वस्तुओं को केवल स्थानीय या देश की आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आवश्यक अंग बना दिया गया.''[47]

नई नीतियों के फलस्वरुप किसान ऐसी चक्की में फंस गए थे जहां पिसना ही शेष था. ''अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों द्वारा ऐसी स्थिति का निर्माण कर दिया गया जिसके कारण कृषि का वाणिज्यिकरण कृषकों के लिए आर्थिक मजबूरी बन गया था. भारतीय कृषि मुख्य रुप से बर्षा पर निर्भर थी. अंग्रेजों द्वरा सिंचाई के विभिन्न साधनों के विकास की ओर ध्यान न दिया गया था.''[48] भूमि व्यवस्था के लिए जो भी नियम बने उनसे किसानों का हित क्या, उनका शोषण ही हुआ. शोषण बढ़ता रहा और अंग्रेजों की आय में निरंतर वृद्धि होती रही. ''सरकार की भूमि प्रबंध की विभिन्न प्रथाओं जैसे जमीदारी, रैयरबाड़ी तथा महालबाड़ी ने कृषक की हालत खराब कर दी थी. उदाहरणतः जमीदारी प्रथा में अनुपस्थित जमीदार वर्ग कृषकों के लिए अभिशाप ही था जिसने सामान्य किसान को कर्जदार बना दिया था. बढ़ते हुए अकालों ने भी किसानों की हालत बदतर कर दी थी. अंग्रेजों ने भूमि लगान अत्यधिक लगा दिया था जिसे देने के लिए ऋण तथा उस पर ब्याज देना पड़ता था. अतः कृषि का वाणिज्य अंग्रेजों की नीति का एक भाग था तथा भारतीयों की मजबूरी थी.''[49]

कृषि के वाणिज्यिकरण से व्यपारिक फसलों को उगाना किसानों की मजबूरी बन गई. खाद्याान्न फसलों के उत्पादन में भारी गिरावट आई. इसके अलावा ''कृषक अपनी पैदावार स्वतंत्र रुप से विक्रय नहीं कर सकता था. वह एक ओर इस वाणिज्यिकरण से विदेशों की मांग से जुड़ था तथा दूसरी ओर व्यापारी वर्ग की पूंजी भी उसके जीवन को प्रभावित कर रही थी. वह भारतीय साहूकारों के हाथों पिसता जा रहा था. उसकी हालत गुलामों जैसी बनती जा रही थी.''[50]

कृषि व्यवस्था को अंग्रेजों ने पूरी तरह हस्तगत कर लिया था. ''अनेक कृषि उद्योगों पर ब्रिटिश अथवा यूरोपियन प्रभुत्व स्थापित हो गया. विशेषकर खतिहर उद्योगों पर, नील की खेती करने वाले किसानों में असंतोष पैदा हुआ जिस कारण उन्होंने विद्रोह किया. इसी तरह चाय, कहवा, तेल के बीज आदि उद्योग को बढ़ावा मिला. उदाहरण के लिए तेल के बीजों का 1899–1900 में निर्यात 17 मिलियन क्विंटल था जो 1903–04 में बढ़ कर 24.5 मिलियन क्विंटल हो गया था.''[51] बढ़ते शोषण ने किसानों को विद्रोह करने के लिए मजबूर कर दिया. उनके सब्र का बांध टूट गया. मुनीश्वरदत्त अवस्थी की जब्त कहानी 'निहिलिस्ट' में इस असंतोष की झलक दिखाई देती है–

''इससे स्पष्ट है कि भूखे किसानों के धैर्य का समय बीत गया और वे पेट के लिए जानबूझकर सरकारी रकम को लूट लेने या मर मिटने के लिए तैयार हो गए हैं''[52] लक्ष्मीचंद्र पाजपेयी 'चंद्र' की

जब्त कहानी किसानों की करुण कथा बयां करती है– ''दिन भर के संगठित परिश्रम से थक कर संध्या समय जब हरखू अपनी बांस की बनी टूटी चारपाई पर लेटा , तो उसकी आंखों में आंसू डबडबा आए. उसे ऐसा मालूम पड़ा जैसे उसके चारों ओर अंधेरा छा गया हो! जी कहने लगा जिन्दगी अभिशप है. ऐसी जिन्दगी जहां सुख की छाया भी दुर्लभ हो, से छुटकारा पाना ही भला! दिन रात हाय हाय! सुबह से शाम तक मेहनत करना, धूप, बरसात में अपनी देह को सड़ानास और फलस्वरुप दुख–दैन्य, नालिश–कुड़की! और गरीबों के बल पर बड़ी बड़ी हवेलियों में ठाठ के साथ रहने वाले, मोटरों में चलने वाले बाबू लोग उसे घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखें–छिः छिः ! ऐसी भी जिन्दगी भी क्या ?''[53] अंत में इस असहनीय शोषण के खिलाफ किसान जागरुक हो उठे और इस गुलामी के जुए को उतार फेंकने के लिए एकजुट होने लगे. उन्होंने दोहरे शोषण के खिलाफ बिगुल छेड़ दिया. ''जब नवोदित बुर्जआ और पेटी बुर्जुआ वर्ग के लोग वैधानिक आंदोलन करने में व्यस्त थे, हमारे देश के किसान उपनिवेशवादियों और इसके संरक्षण में पलने वाले जमीदारों , साहूकारों तथा सूदखोरों के विरुद्ध सशस्त्र संग्राम का रास्ता अपना रहे थे, ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के विरुद्ध भारतवासियों का जनमत तैयार करने में इन संग्रामों की भूमिका बहुत बड़ी है. नील विद्रोह (1859–60), जयंतिया विद्रोह (1860–63), कूकी विद्रोह (1860–90),फूलागुड़ी का दंगे (1861), कूका विद्रोह (1869–72), पबना का किसान (1872–73), महाराष्ट्र के किसानों का मोर्चा (1875), पूना में वासुदेव बलवंत फड़के के नेतृत्व में विद्रोह (1879) और रंपा विद्रोह (1879–80) ऐसे ही विद्रोह थे.''[54] किसाना इस शोषण के खिलाफ जाग उठे थे. उन्होंने सशस्त्र संग्राम का रस्ता अख्तियार कर लिया था. ब्रिटिश काल में जब्त की गई रचनाओं में किसानों के इस संघर्ष को बखूबी जगह दी गई तााि जन चेतना के प्रसार में प्रमुख भूमिका निभाने का काम किया गया.

2.2.2 अंग्रेजी राज में मजदूर

ब्रिटिश सत्ता ने हिंदुस्तान को धीरे–धीरे हस्तगत कर लिया था. उनकी हर रणनीति ने देश की हर व्यवस्था को पूरी तरह तबाह कर डाला था. आम जन–जीवन मौत के मुंह में जा रहा था और अंग्रेजों की आय में निरंतर वृद्धि हो रही थी. अर्थ व्यवस्था के स्वरुप में बदलाव व अकालों के बावजूद लगान लगातार बढ़ोत्तरी की जा रही थी. कृषि के वाणिज्यिकरण तथा पेशगी देकर नगदी फसलों के जबरन उत्पादन तथा जमींदारों, सूदखोरों की शोषण भरी नीतियों ने किसानों को भूमिहीन मजदूर में बदल डाला. पर, इससे भी उन्हें छुटकारास न मिला उनके जिम्मे वही हाड़तोड़ काम. मजदूरों से इतना अधिक काम लिया जाता था ि कवे काम करते–करते ही गिर कर मर

जाते थे. भूमिहीन किसानों के अतिरिक्त भारत में उद्योगों के प्रसार के कारण भी मजदूर वर्ग का उदय हुआ. इन मजदूरों का अहर्निश शोषण होता था. एक ओर वे खेतों में खट रहे थे, तो दूसरी ओर मिलों में. साम्राज्यवादी शक्तियों ने अधिक से अधिक मुनाफा कमाने के लिए यहाँ से कच्चे माल का दोहन करते और, वहाँ के तैयार माल की भारतीय बाजारों में बाढ़ लगा दी. मालिकों द्वारा मजदूरों का निर्मम शोषण होता था. ''बंबई के ब्यालरों के सीनियर इंस्पेक्टर टाम ड्रिवेट ने 1888 के करीब लिखा : 'बिनौले से रुई को अलग करने का मौसम लगभग 8 महीने रहता है. इसमें से लगभग 5 महीने मजदूर सबेरे 5 बजे से लेकर रात के 10 बजे तक काम करते हैं. बाकी 3 महीने वे दिन–रात काम करते हैं. इनमें ज्यादातर मजदूरिनें काम करती हैं....यहाँ लगातार, दिन–रात एक सप्ताह तक काम करने वाली औरतें मिलेंगी..... मेरे ख्याल से इस उद्योग में बच्चों की दो पालियाँ कहीं भी नहीं हैं, इसलिए वे अवश्य ही 24 घंटों में से 23 घंटे काम करते होंगे.''[55] यही नहीं, '' जब बहुत काम होता है तो वे सवेरे 4 बजे से लेकर रात के 10.30. या 11 बजे तक काम करते हैं. कभी–कभी मजदूर–मजदूरिनें सब लगातार दस दिन तक दिन–रात बिना आराम किये काम करते हैं.''[56]

मजदूरों के इस कठोर श्रम का लाभ उठा कर मालिक और भी अधिक अमीर होते जा रहे थे. प्रतिबंधित साहित्य में अमीरों व गरीबों के बीच की विषमता का अंकन किया गया है : ''यह उस देश की राजनीतिक अवस्था थी उस देश के मुट्ठी भर आदमियों ने सरकार की कृपा से राष्ट्र की संपूर्ण संपत्ति अपने हाथ में रखी थी. देश की एक–दो नहीं कोटियों–करोड़ जनसंख्या थी. पर देश की अनंत संपत्ति के भोक्ता प्रति करोड़ सौ से भी कम थे. याने वहाँ एक लाख मनुष्य थे और एक मनुष्य भयानक अमीर ; यह विषमता की चरम सीमा थी. अमीर और अमीरों के कुत्ते साथियों ने समाज में अनर्थ मचा रखा था. चारों ओर स्वेच्छाचारिता और नगद–नारायण के बल पर जुल्म करने का रोग फैला हुआ था. मजूर और किसान , अनपढ़ खून देकर भी पेट भर भोजन नहीं पाते थे. गरीबों की स्त्रियाँ, बेटियाँ, बहनें , अमीरों के उन्माद की दासियाँ थीं. शासकों और अमीरों के गुट बना कर घर–घर में फूट डाल रखा था. अपमानित महिलाओं का, प्रताड़ित पुरुषों का और पेट–पीड़ित ग़रीब परिवार का खोज लेना कोई नहीं था–ईश्वर भी नहीं था.''[57]

मजदूरों की स्थिति अति दयनीय थी. उन्हें अत्यंत कठोर परिश्रम करना पड़ता था. न मजदूरी मिलती थी, न उनके रहन–सहन, भोजन–पानी की व्यवस्था थी. वयस्क और महिलाओं का अति निर्मम शोषण तो होता ही था , छोटे–छोटे बच्चों को भी नहीं बख्शा जाता था. बच्चों से भी वयस्कों के बराबर काम लिया जाता था. ऊपर से काम करते–करते इनके अशक्त हो जाने पर इन्हें पीटा

जाता था. इनकी करुण गाथा बेहद दर्दनाक है. ''4–5 साल के बच्चों से भी बड़ी क्रूरता से काम करवाया जाता था. बंगाल में हुगली नदी के दोनों किनारे खड़ी चटकलों के भोंपू रात को 3 बजे बजा करते थे. 6–6, 7–7 साल के बच्चों को दो–तीन मील पैदल चल कर कारखाना जाना पड़ता था. कारखानों में बच्चों पर अत्याचार की करुण कहानी दीवान चमनलाल की पुस्तक 'कुली भारत में श्रम और पूंजी' की कहानी में मिलती है. इस पुस्तक में उन्होंने लिखा है कि बच्चों की गुलामी के उदाहरण खोजने के लिए हमें लाइबीरिया अथवा अबीसीनिया न जाना पड़ेगा. उन्हें हम भारत के अंदर ही देख सकते हैं. इसमें एक दिलचस्प किस्सा आनरेबल श्री निवास शास्त्री के बारे में बताया गया. वे उन दिनों एक स्कूल शिक्षक थे. वे देखते थे कि पास के मकान में रोज बहुत से बच्चे लाये जाते थे और रात में उनका करुण आर्तनाद सुनाई पड़ता था. शास्त्री जी उस मकान को कोई स्कूल समझते थे. अतः उन्होंने निर्दोष बच्चों पर उस तथाकथित स्कूल में अत्याचार की बात अधिकारियों के पास लिख भेजने का इरादा किया. जाँच करने पर ज्ञात हुआ कि वह स्कूल नहीं, लेंस का कारखाना था जहाँ छोटे बच्चों को बेहद खटाया जाता था. जब थकावट से चूर बच्चों को नींद आने लगती थी तब मालिक बेंत से उनकी उनकी पिटाई करता और उनकी नींद को भगा देता था.''[58]

इतने दुर्दमनीय शोषण के बावजूद रोटी का नसीब होना बेहद कठिन था. भूखे–प्यासे लोग अनवरत काम पर लगे थे. किसी के ह्रदय में इतनी दया न थी कि रोटी दे सकें. प्रतिबंधित कहानी 'मायाजाल' में मुनीश्वर दत्त अवस्थी ने इस दर्दनाक स्थिति को सामने रखा है–''यह मँहगी के दिन थे. किसी को रोटी देना साधारण बात न थी. कोई किसी का नहीं था. ऐसे समय बुधुआ मुंशी जी के दरवाजे नौकरी की आशा में बैठा था. भीख माँगने से भीख उसे कुछ मिलता न था, वह पेट भर रोटी चाहता था, किन्तु पेट भर रोटी बड़ी मुश्किल की बात है.''[59]

यहाँ मजदूर वर्ग अपने जन्म काल से ही अनवरत समस्याओं से जूझ रहा था. ऐसा प्रतीत होता था मानो शोषण की कथा कभी समाप्त ही नहीं होने वाली थी. ''भारतीय मजदूर वर्ग का उद्भव ऐसे समय हुआ तब भारत में पूर्ण रुप से औपनिवेशिक शासन लागू हो चुका था. इसलिए इसके उद्भव और विकास की अपनी विशेषताएं और समस्याएं रही हैं. इस तरह की समस्याएं आमतौर पर महानगरीय विकास वाले देशों में नहीं देखी जाती. भारतीय मजदूर वर्ग को अपने जन्म काल से ही दो विरोधी ताकतों का सामना करना पड़ा है. एक पड़ोसी और साम्राज्यवादी देशों का राजनीतिक शासन और दूसरा आर्थिक शोषण.''[60] मजदूरों की संख्या बहुत बड़ी हो गई थी व उनकी समस्याएं दिन–ब–दिन गहराती जाती थी. '' जब औपनिवेशिक बोझ के कारण भारत की परंपरागत

अर्थव्यवस्था चूर–चूर हो रही थी. आम जनता का दरिद्रीकरण हो रहा था. पुरानी आर्थिक व्यवस्था की बरबादी और उसके स्थान पर नए की स्थापना के बीच भारी अंतर मौजूद था जिसके परिणामस्वरुप भारत सस्ते मजदूरों का भंडार बन गया था.''[61]

रोजगार की तलाश में रोटी के लिए वे दर–दर भटक रहे थे. ''दीर्घकालीन बर्बरतापूर्ण औपनिवेशिक शोषण की पद्धति और पूंजीवाद के अति विकृत विकास के कारण भी समाज के सर्वाधिक गरीब तबके के लोगों का देश के अंदर ही पलायन होने लगा. अति दरिद्र लोगों के झुंड के झुंड रोजगार की तलाश में अपने निवास स्थान वाले गांवों को छोड़ कर उन स्थानों पर जाने लगे जहाँ नए उद्योग लग रहे थे या जहाँ पर खान या बागानों का विकास हो रहा था.''[62] पर उद्योगों, खानों अथवा बागानों में भी उनका शोषण कम न हुआ. अन्य देशों की तुलना में भारतीय मजदूरों का शोषण अलग तरह का था, साथ ही अत्यंत निर्मम भी. ''सर्वहारा के शोषण का फर्क इस बात से समझा जा सकता था कि भारतीय मजदूरों का वैसा शोषण होता था जैसा शोषण विकसित पूंजीवाद देशों में बिलकुल ही नहीं देखा जाता था और जिसके कारण मजदूरों की समस्याएं बहुत बढ़ गई थीं. मजदूरों और मालिक के बीच असामान्य रुप से बिचौलिए मौजूद थे, जो मजदूरों की भरती करते थे और कुछ हद तक उसका वेतन भुगतान भी करते थे उनको देश के विभिन्न भाग की बोली–भाषा के अनुसार ठेकेदार, सिरदार, मिस्तरी, मुकदम, चौधरी आदि कहा जाता था.''[63]

मजदूरों का कई तरह से शोषण होता था. ''भारतीय मजदूर वर्ग का शोषण मुख्य रुप से इस तथ्य से अभिव्यक्त होता था कि ब्रिटिश और भारतीय दोनों पूंजीपतियों ने सुपूर्ण अतिरिक्त मूल्य को सुरक्षित कर लिया था. भोर से छुटपुटे शाम तक और प्रायः इससे भी अधिक घेटों तक कार्य करवाने का बर्बर तरीका सर्वाधिक शोषण का तरीका था. यहाँ तक कि भारतीय कारखाना श्रम आयोग (इण्डियन फैक्ट्ररी लेबर कमीशन) जिसे सन् 1908 में ततकालीन कारखाना अधिनियम (फैक्ट्री एक्ट) में उन संशोधनों की जांच करने के लिए नियुक्त किया गया था, जो सिफारिशें फ्रीयर स्मिथ कमेटी की थी. आयोग की रिपोर्ट में भी यह अमानवीय तसवीर नहीरं छिप सकी. इस विवरण के अनुसार अहमदाबाद में कार्य करने का औसत समय 12 घंटे था और कुछ कारखानों में जहाँ विद्युत शक्ति का प्रयोग होता था वहाँ पर चौदह घंटे से कम समय तक कार्य नहीं लिया जाता था. मुंबई में भी औसत बारह घंटे लेकिन 85 में से 60 कपड़ा मिलों में जहाँ विद्युत का इस्तेमाल होता था, मजदूरों को 13 से 15 घंटे से अधिक काम करना पड़ता था. भरुच में काम का समय 14 1/2 से 13 1/2 घंटे, दिल्ली में 13 1/2 से 14 1/2 घंटे बना रहा. आगरा में यह 13 घंटे 40 मिनट से 15 घंटे 15 मिनट, अमृतसर और लाहौर में 13 घंटे 40 मिनट से 15 घंटे 15 मिनट तक का

कार्य दिवस लागू हो रहा था. लेकिन कोलकाता के जूट मिलों के पूंजीपति मालिकों ने इन मिलों में बुनकरों से 15 घंटे तक और कुछ मिलों में 15 1/2 से 16 घंटे तक कार्य करवा कर एक रिकार्ड बनाया.''[64] इतने घंटे कार्य करने के खिलाफ मजदूरों में धीरे–धीरे असंतोष बढ़ने लगा था. समाचारों और पुस्तकों के माध्यम से मजदूर एक नई चेतना से परिचित होने लगे थे. जब्त किए गए साहित्य में इस बात की चर्चा की गई.'स्वदेश के लिए' कहानी का पेटिट अत्यंत कम उम्र में मिल में काम करते हुए रुस के मजदूरों व वहाँ के जार के अत्याचारों के बारे में भी अवगत था.. '6चौदह वर्ष की आयु में ही पेटिट के पिता का देहांत हो गया. उस समय वह भी गृहस्थी के गड्ढे को भरने के लिए मिल में जाने लगा था. अपने मिस्त्री की प्रेरणा से पेटिट ने पढ़ना आरंभ कर दिया था. थोड़े ही समय में साधारण पुस्तकों को पढ़ कर उनके भावों को समझने लग गया था. एक दिन वह अपने घर एक पुस्तक लेकर गया, जिसमें रुस के गरीबों की दुर्दशा और जार की उदासीनता का चित्रों द्वारा परिचय कराया गया था.''[65]

यही नही., क्रान्ति की योजनाएं बनने लगी थी. पेडरिन के कथन में क्रान्ति लाने की योजना है. वह कहता है– ''हमारे देश में क्रान्ति ऐसे ही होगी कि हम अपने आदमियों को कई भागों में बाँट दें. ज़ार के प्रति, राज्य के प्रति, धींगा धींगी के प्रति, असंतोष उत्पन्न करने वालों का एक दल रहे, दूसरा दल ज़ार के प्रत्येक विभाग में अपने आदमी पहुँचाने का अथवा बनाने का काम करे, मजदूरों और गरीबों को संगठित करने का काम तीसरा दल करे, अत्याचारियों को भयभीत करने का तथा उसके लिए अस्त्र–शस्त्र एकत्रित करने का काम एक दल के सुपुर्द हो और इसके अतिरिक्त भी एक दल ऐसा हो जो दूसरी आवश्यक बातों का पता लगाता रहे.''[66]

दरअसल, मजदूरों की स्थिति इतनी बदतर थी कि वे जीवन जीने की तुलना में मर जाना बेहतर समझते थे. ''हिंदुस्तान के मजदूर बीमारी, बेकारी , बुढ़ापा और मौत के समय अपना कोई प्रबंध नहीं कर सकते थे. उनकी हिफ़ाजत का कोई इंतजाम नहीं है सरकार ने इस बात से बराबर इनकार किया कि वे बेकारों के लिए कुछ किया जा सकता है....बेकारी से डर कर मजदूरों ने आत्महत्या तक कर ली है. कुछ मजदूर भूख से मर गए हैं.''[67] अति अमानवीय शोषण ने मजदूरों को क्रान्ति की राह पर ला दिया. ब्रजेन्द्रनाथ गौड़ के उपन्यास 'पैरोल पर' में मजदूरों के हड़ताल का दृश्य है, जिसमें कपूर और अमिता की बातचीत से ज्ञात होता है कि शोषण के विरुद्ध श्रमिक आग उगल रहे थे. ''अख़बा रमेज़ पर रख कर उसने भेद भरी दृष्टि से अमिता की मुसकुराती हुई आँखों के मादक भोलेपन को देखा और कहा'जी हाँ उम्मीद तो है कि हड़ताल के इतिहास में इस हड़ताल का खास महत्व होगा. हमें इतनी सफलता की आशा भी नहीं थी. इस बार मजदूरों ने निश्चय कर लिया है

कि भूखे मर जाएंगे पर अधिकार लेकर मानेंगे.''[68] मिल के मालिक गरीबों को कैसे आश्वासन देते थे, कपूर इस बात का खुलासा करता है–''आप लोग गरीब मजदूरों को कितने आश्वासन नहीं दे चुके, लेकिन कभी एक भी पूरा किया ? किसी को झूठी आशा में रखना ठीक नहीं है. क्या आप यह नहीं सोचते कि ग़रीब अपने इरादों के पक्के होते हैं और उनके इरादे किसी भी समय आप लोगों के हक़ में अनर्थ का कारण बन सकते हैं.''[69]

मजदूरों के श्रम पर अमीरों के वैभव लहराते थे. मजदूर भूख से मर रहे थे और उनके हिस्से का धन मालिकों की जेब में जाता था. उनकी इस व्यवस्था का वर्णन करते हुए कपूर कहता है, ''लेकिन आप को उनकी पूरी शर्तें माननी होंगी. आप कभी–कभी मजदूरों की बस्ती में जाएं और अपने इस विलास भवन से उनकी झोपड़ियों की तुलना करें, तो मालूम होगा कि आप किस आदर्श को निभा रहे हैं. आप ने कभी सोचा है कि उन गरीबों के प्रति आपका जो नैतिक कर्तव्य है, उसे कभी पूरा करने कर प्रयत्न करने का तो दूर की बात है ; उस कर्तव्य की बात सोचने का साहस आप लोगों ने किया ? फिर आप को क्यों आशा करते हैं िकवे गरीब आदमी आपके प्रति, अपने को धोखे में डालकर भी , सदा वफादार बने रहेंगे ?'' [70]

काम के घंटे और वेतन को लेकर मजदूरों में भयानक असंतोष था. वे अपने मालिकों के अत्याचार से तंग हो गए थे. ''1870 के लगभग, कारखानों के उद्योग–धन्धों के लिए परिस्थितियाँ तैयार हो गई थीं. इसलिए यह भी लाजमी हो गया कि हड़तालें भी होने लगें. हालांकि वह उनका आदिम और असंगठित रुप था. इतिहास में 1877 की एक हड़ताल का ज़िक्र है जो मजूरी की दर के लिए नागपुर के एप्रेंस मिल्स में हुई थी. 1882 से 1890 तक बंबई और मद्रास के सूबे में 25 हड़तालों का उल्लेख मिलता है.''[71] वैसे मजदूर आंदोलन की भूमिका पहले से बनने लगी थीं. ''मजदूर–आंदोलन की शुरुआत 1884 से मानी जाती है जबकि लोखंडे नामक बंबई के एक संपादक ने वहाँ के मिल मजदूरों की एक सभा की थी. इस सभा में माँग की गई थी कि काम के घंटे सीमित किए जाएं, हफ़्ते में एक दिन छुट्टी मिले, दोपहर में खाने–पीने के लिए छुट्टी दी जाए और चोट वगैरा लगने पर हरजाना दिया जाए. बंबई के मजदूरों की माँगों का यह आवेदन–पत्र फैक्ट्री कमीशन के सामने पेश करने के लिए तैयार किया गया था.''[72] 'पैरोल पर' में इसकी अभिव्यक्ति मिलती है. देशवासी अपनी जान देने को आतुर थे. गुलामी तोड़ने की इच्छा सबके भीतर लहक उठी थी. 'पैरोल पर' उपन्यास की अमिता गीत गाती है–

''शहीदों की टोली में नाम लिखा लो
कफन सर पे बाँधों,
चलो आगे–आगे।
कफ़न सर पे बाँधों बढ़ो आगे–आगे।''[73]

मजदूरों के आंदोलन तेजी से उग्र रुप धारण कर रहे थे. ''1905 से 1909 तक लड़ाकू राष्ट्रीयता की बढ़ती के साथ–साथ मज़दूर आंदोलन ने भी प्रगति की. काम के घंटे बढ़ाने के खिलाफ बंबई की मिलों के मजदूरों ने हड़ताल की.रेलवे में , खास तौर से ईस्ट बंगाल में स्टेट रेलवे में और रेलवे शापों में भारी हड़तालें हुईं. कलकत्ते के गवर्नमेन्ट प्रेस में हड़ताल हुई. इन हड़तालों से उस समय के वातावरण का पता चलता है. 1908 में लोकमान्य तिलक को 6 साल की सजा दी गई जिसके खिलाफ़ बंबई के मजदूरों ने छह दिन तक आम राजनीतिक हड़ताल रखी. यह सबसे महत्वपूर्ण हड़ताल थी.''[74]

'पैरोल पर' में कपूर और पान वाले के बीच हुइ बातचीत से अपने अधिकारों के प्रति मजदूरों के भीतर उभरी चेतना का पता चलता है–

कपूर कहता है–''आज दुनियां कितना आगे बढ़ गई है, इसे नासमझ कहे जाने वाले लोग भी जान गए हैं, मजदूर तो काफी समझदार हो गए हैं, उन्होंने निश्चय किया है कि एक–एक आदमी भूख–प्यास से तड़प–तड़प् कर जान दे देगा, लेकिन अधिकार पाए बिना मिलों के अंदर क़दम न रखेगा.''[75] मालिकों के अत्याचार से तंग आ कर मजदूर संगठित होने लगे और हड़तालों का दौर शुरु हो गया. प्रथम विश्व युद्ध के दौरान पूरे विश्व में हलचल मच गई. इसका प्रभाव हर वर्ग पर पड़ा. प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति और सोवियत की क्रान्ति से देषों में नई चेतना का जन्म हुआ. ''1918 में हड़तालों की जबद्रस्त लहर शुरु हो गई जो 1919 ओर '20 में सारे देश में फेल गई. 1918 के आख़ीर में एक प्रमुख धंधे–बंबई की कपड़ा मिलों में भारी हड़ताल हुई जिसमें सारा काम काज ही ठप हो गया. बंबई की सूती मिलों की यह हड़ताल अपने ढेग की पहली थी. जनवरी 1919 की गर्मियों में रौलट एक्अ के ख़िलाफ मजदूरों ने हड़ताल की जिससे ज़ाहिर हुआ कि मजदूर राष्ट्रीय आंदोलन में सबसे आगे बढ़ कर लड़ने वालों में हैं. इस साल सारे देश में हड़तालें हुई. 1919 के ख़तम होते – होते और 1920 के पूर्वाद्ध में यह लहर चरम सीमा तक पहुँच गई.''[76]

मजदूर अपनी लड़ाई को लेकर कितने उग्र थे इसकी झलक 'पैरोल पर' उपन्यास में मिलती है. कपूर और वाजपेयी के बातचीत के प्रसंग से उनके दृढ़ निश्चय का पता चलता है–

''वाजपेयी बोला–लेकिन शर्तों में कमी नहीं हो सकती ! जब इतने दिन हमारे मजदूर भाई भूखे रहे हैं, तो और ही सही. और जो फिर भी सुलह न हुई तो पूँजीपतियों की अहसान फरामोशी को कोसते हुए मर भी जाएँगे, उन्हें मौत से डर होता तो हम लोगों के कहने से आग में न कूदते ; और जो कूद पड़े हैं, तो उन्हें इस बात का कोइ ग़म भी नहीं है कि हम उनको अधिकार न दिला पाएँगे और वे तड़प–तड़प कर मर जाएँगें.''[77]

जब्त की गई कविता 'क्रान्ति–दूत' में भी मजदूरों के उग्र रुप का निदर्शन होता है–

''ये मज़दूर–किसान खड़े हैं,
आज बने बलिदानी बकरे।
जिनके बल पर राजों–पूँजीपतियों के हैं कोष भरे।।
आज झोपड़ी का वासी मैं,
महल ढहाने आया हूँ,
साम्यवाद लेकर आया हूँ, क्रन्ति–दूत बन कर आया हूँ।।''[78]

मजदूरों ने महज़ अपने अधिकारों की ही लड़ाई नहीं लड़ी, वरन राष्ट्रीय आंदोलन में उनकी प्रमुख भूमिका थी. उनकी हड़तालों, कुरबानियों की बदौलत आजादी की लड़ाइ तेजी से आगे बढ़ी. अंग्रेजों के लिए मुश्किलें खड़ी करने में इन झोपड़ीवासी, निर्धन व्यक्तियों ने अपनी जान की बाजी लगा दी थी. ज़ब्तशुदा साहित्य में उनके साहस व दृढ़ निश्चय का परिचय मिलता है.

2.2.3 अंग्रेजी राज में बुनकर

ब्रिटिश सत्ता ने हिन्दुस्तान पर सिर्फ कब्जा ही नहीं किया था, वरन् यहां की समस्त उन्नति को तबाह और अंधाधुंध धन की लूट शुरू की थी। देश की हर व्यवस्था को उलट–पुलट डाला था। जीवन के हर क्षेत्रों में भारी तबाही मचा रखी थी। ''भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना के महत्वपूर्ण परिणामों में से एक था, भारतीय कस्बों की हस्तकलाओं और ग्रामों के हस्तशिल्प उद्योगों के क्रमशः बढ़ते क्षय और विध्वंस के फलस्वरुप कृषि और उद्योग व्यवसायों के सदियों पुराने एक्य का छिन्न–भिन्न होना।''[79] अंग्रेजों ने यहां कं उद्योग–धंधों का सर्वनाश कर डाला। उन्होंने यहां से कच्चे माल के निर्यात में भारी बढ़ोत्तरी की तथा ब्रिटेन से तैयार माल की भारतीय बजारों में भरमार कर दी. फलतः यहां के कारीगर तेजी से बरबादी की ओर जाने लगे. ब्रिटिश राज में जब्त की गई पुस्तक 'देश की बात' में सखाराम देउस्कर 'कारीगरों का सर्वनाश' शीर्षक के अंतर्गत चर्चा करते हैं, ''हिंदुस्तानी कारीगरी नष्ट होने का सबसे प्रधान कारण अंग्रेजों का अत्याचार और बेहद स्वार्थपरता

है. अंग्रेज इस देश में व्यापारी बनिए बन कर घुसे थे. इसलिए इस देश के व्यापार में अपनी ही प्रधानता बनाने के लिए स्वभाव से ही उनके हृदय में बलवान इच्छा उत्पन्न हुई थी. इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए उन्होंने जैसे बेआइनी और रोंए थर्राने वाले उपायों से काम लिया था, उनहें सुनने से सबकी छाती दहल उठेगी.''[80] साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपने माल की खपत के लिए हिंदुस्तानी को सबसे बेहतरीन स्थान मान लिया था. लूट और क्रूर दमन के बल पर उन्होंने अपनी राहें आसान की. एडम स्मिथ ने लिखा, '' इस तरह का एकाधिकार पाने वाली कंपनियां हर तरह से एक अडंगा ही हैं. जिस देश में भी वे बनती हैं, हमेशा उसको नुकसान ही पहुंचाती हैं ओर जिन लोगों को उनकी हुकूमत में रहने का दुर्भाग्य प्राप्त होता है, वे चौपट हो जाते हैं. ''[81] इसके अलावा, '' हिंदुस्तान की मालिक होने की हैसियत से ईस्ट इण्डिया कंपनी का फायदा इस बात में है कि यूरोप का जो माल कंपनी की हिंदुस्तानी रियासत में जाए, वह ससते से सस्ता जाए, ओर हिंदुस्तान का जो माल आए, उससे अच्छी से अच्छी कीमत मिले, यानी उसे मंहगे से मंहगा बेचा जाए, लेकिन कंपनी के व्यापारियों का एक गुट है और व्यापारी की हैसियत से उनका हित इससे बिलकुल उलटी बात में है. शासक की हैसियत से कंपनी का हित वही है जो हिंदुस्तान की प्रजा का हित है. परंतु व्यापारी की हैसियत से उसका हित हिंदुस्तान की प्रजा के हित का बिलकुल उलटा है.''[82]

भारत में अंग्रेजों ने ऐसी नीतियां तैयार की , जिससे वे यहां के कारीगरों से अपने हित में काम करवा सकें, ''वास्तव में वे भारत को आर्थिक दृष्टि से शोषित करते हुए केवल कच्चे माल का निर्यात करने वाला देश बनाना चाहते थे. 1700 से 1850 तक अनेक कानून बनाए गए जिनके द्वारा भारतीय उद्योगों की उन्नति रुक गई. उदाहरण के लिए 1769 में कंपनी के कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने इस तरह के सुझाव दिये जिससे बंगाल के कच्चे रेशम के निर्यात को प्रोत्साहन मिले, साथ ही रेशम के तैयार माल पर प्रतिबंध भी लगाये. कुछ वर्ष पूर्व उन्होंने रिचर्ड विल्डर नामक व्यक्ति को कासिम बाजार भी भेजा जो बंगाल के सिल्क की कमियों को दूर करे जिसने अपनी मृत्युपर्यन्त (1761) तक अनेक सुधार कार्य किये, 1770–75 के बीच कंपनी ने बंगाल सिल्क की कमियों को दूर करने के लिए इटेलियन तरीके भी अपनाये. साथ ही सिल्क का काम करने वाले जुलाहों को मजबूर किया गया कि वे कम्पनी की फैक्ट्रियों में ही काम करें.''[83]

जैन प्रेस, आगरा से प्रकाशित पुस्तक 'राष्ट्रीय आल्हा' में बाबूराम पेंगोरिया जुलाहों के अत्याचार के बारे में लिखते हैं. यह पुस्तक अंग्रेजों के द्वारा जब्त कर ली गई थी.

''देखो भाइयों ध्यान लगाकर भारत में यह अत्याचार।
किस प्रकार से नष्ट हुआ है भारत का सारा व्यौपार।।
वोल्ट्स ने अत्याचारों के कारण ही भई दुर्दशा जुलाहिन क्यार।।
सभी दस्तकारी के करता भोगि रहे हैं दुख अपार।
सभी प्रकार के शिल्प की चीजें मुट्ठी में हम कर लई जाय।।
किस प्रकार मुट्ठी में आई कैसे कैसे करि अन्याय।
सभी जुलाहिन को बुलवाया भेजि२ कर चौकीदार।।
जब हाजिर हुए आन कर शर्तें उनसे लई करवाय।
लिखा पढ़ी कागज पर करके उनके दसखत लिए करवाय।।''[84]

जुलाहों के साथ ऐसी जबर्दस्ती आम बात थी. उनसे जबरन काम कराया जाता था तथा इस बात के लिए मज़बूर किया जाता कि वे कंपनी के अनुसार काम करें. माल तैयार करने और कम्पनी को बेचने के लिए उन पर भारी दबाव डाला जाता. जुलाहों को पेशगी रुपया देकर काम करवाया जाता था. एक बार पैसा लेने के बाद वे एक तरह से गुलाम बन जाते तथा इस बात के लिए बाध्य हो जाते थे कि वे विदेशी व्यापारियों को ही माल बेचें. इसके अलावा उन्हें अपने माल के दाम भी सस्ते से सस्ता रखना पड़ता था. मुनीश्वर दत्त अवस्थी की जब्त कहानी 'चमेली का चौरा' में बुनकरों की बदहाल जिंदगी का यथार्थ सामने आता है–

''उस जमाने में कपड़ा बुनने वाले व्यक्तियों को कुछ धन पेशगी दिया जाता था, और वे इस बात के लिए लाचार किए जाते थे कि अपना सारा कपड़ा विदेशी व्यापारियों के ही कोठी में आकर बेचें. वे अपनी इच्छा से अपने माल का मूल्य नहीं लगा सकते थे. मूल्य का निर्णय करना भी उन्हीं कोठी वालों के हाथ में था, जो कि उनका माल खरीदते थे.''[85] अंग्रेजों की नीतियों की बदौलत भारतीय बुनकरों और उद्योगों को बदहाली की ओर ढकेल दिया. '' लॉर्ड लिटन ने आते ही , भारत के हितों की उपेक्षा करते हुए अनेक वस्तुओं पर आयात कर हटा दिये. 1882–1894 के दौरान अनेक वस्तुऐ आयात कर से मुक्त हो गई. अतः अंग्रेजों ने अपने तैयार माल की खपत के लिए भारत की मंडियों को चुना. इसमें ब्रिटिश उद्योगपतियों के हित पूरे हुए तथा भारत का बचा–खुचा उद्योग भी अस्त–व्यस्त हो गया.

अंग्रेज व्यापारियों का ध्यान रखते हुए भारत के तैयार सूती कपड़ों पर एक्साइज चुंगी का प्रचलन हुआ जो 1926 तक चलती रही. इससे भी भारतीय उद्योगों को गहरा धक्का लगा.''[86] बाबूराम पेंगोरिया की साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा प्रतिबंधित किये गए काव्य–संग्रह 'राष्ट्रीय आल्हा' में

अंग्रेजों द्वारा थोपे जा रहे माल को उकेरा गया है. 'अपना माल भारत पर लादने पर विचार' शीर्षक कविता में कहा गया है–

''हाउस आफ कामन्स सभा ने एक कमीशन दिया बनाय।
बारिनि हेरिअंग्स सर टामिसनारी दोनों लार्ड जानो जाय।।
और अधिक थे यह स्ट्राची सर जान मल कमचार।
उससे पूछा गया वहां पर भारत का सब हाल हवाल।।
आप कहे यह ठीक–२ सब भारत के स्वभाव का हाल।
बनी यहां की जो चीजें हैं उन्हें खरीदेगा या नाहिं।।
प्रति उत्तर में यह जवाब था नहीं उससे कुछ भी परवाह।
सर्व तरह की चीजें वहां पर उसकी आवश्यकतानुसार।।''[87]

इंग्लैण्ड में मशीनों से तैयार किए गए माल यहां की तुलना में महीन होते थे. इससे भारतीय जुलाहों का व्यवसाय काफी नीचे गिरने लगा. भारतीय उद्योग की बदहाली की चर्चा करते हुए फिरोजशाह मेहता कहते हैं, ''जहां अंग्रेज उत्पादकों के साथ प्रतियोगिता के संदेह का लेश भी है वहां ऐसे सिद्धांत और ऐसी नीतियां निर्धारित की गई हैं जिससे भारत के शिशु उद्योगों का जन्म से ही गला घुट जाए.''[88] अंग्रेजों ने अपने माल की खपत के लिए चुंगी लगा दिए. देशी माल को रोकने के लिए उन्होंने अनेक नियमों का सहारा लिया.. ''हिंदुस्तानी माल के खिलाफ़ यह नाकेबंदी उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में जारी रही जिससे कि विलायती कपड़ों के धंधे पनप सकें. 1840 में पार्लामेंट की जांच से पता लगा कि हिंदुस्तान में विलायती रेशमी और सूती माल पर साढ़े तीन फीसदी चुंगी लगती थी; पर हिंदुस्तान का जो सूती कपड़ा विलायत में जाता था, उस पर दस फ़ीसदी, रेशमी कपड़ों पर 20 फ़ीसदी और ऊनी माल पर 30 फ़सदी चुंगी लगती थी.''[89]

इस सम्बंध में राधामोहन गोकुल लिखते हैं, ''अभी पूरे 100 वर्ष नहीं हुए कि भारतवर्ष के माल को इंगलैण्ड में प्रवेश करने से रोकने के लिए वहाँ की राज्यशक्ति ने आज्ञा दी थी कि– 1– राज्य कर 50 रुपया सैकड़े से 90 रुपया सैकड़ा तक लगाया था जिससे भारत का माल असली खर्च लेने में खरीदारों ग्राहकों को उतना महँगा पड़े कि वे खरीद न सकें और इस तरह कर द्वारा विदेशी माल इंगलैण्ड में घुसने से रोका गया था. 2–देशी ऊनी वस्त्र का ही कफन मुर्दे पर डाले जाने की आज्ञा थी. 3– वहां के स्वदेशी आंदोलन वालों का एक दल एक समय इतना अन्याय करने लग गया था कि किसी के शरीर पर विदेशीय वस्त्र देखता तो दौड़कर फाड़ डालता था और यह दल वहाँ देशभक्तों का एक प्रशस्त दल गिना जाता था.''[90]

प्रतिबंधित कविताओं में अंग्रेजों द्वारा लगाए गए करों का वर्णन मिलता है. जब्त कविता 'जुलाहों के साथ अत्याचार' में बाबूराम पेंगोरिया लिखते हैं–

''नहीं सन्तोष हुआ तब उनको किस प्रकार कर दयो लगाय।।
प्रति सैकड़ा माल के ऊपर इस प्रकार कर दयो लगाय।
छींट छपी पर अस्सी रुपया और तंजे बतीस लेउ जान।।
चटाई ऊपर पिच्चासी रुपया चाय पे सड़सठ दये लगाय।''[91]

विदेशी माल की भरमार में एक ओर मशीनो की भूमिका थी, दूसरी ओर लागू किए गए नियमों की. इन नियमों के तहत विदेशी व्यपारियों को छूट मिलती थी तथा देशी व्यापारियों के लिए संकट भरे रास्ते तैयार किए गए थे. ''मशीनों के सहारे ही नहीं, राज की मदद से भी हिंदुस्तान के बाज़ार में विलायती माल तोप दिया गया ओर हिंदुस्तानी उद्योग–धंधे मिटा दिए गए. राज की मदद से अंग्रेज व्यापारियों को स्वच्छंद व्यापार करने की आज़ादी मिल गई. लेकिन यह आज़ादी एकतरफ़ा थी. विलायती माल नामचार की चुंगी देकर हिंदुस्तान में बिकता था लेकिन हिंदुस्तानी माल पर विलायतों में भारी चुंगी लगाई जाती थी. इसके अलावा जहाजों से माल ढोने के बारे में क़ानून (नेवीगेशन एक्ट) बनाकर हिंदुस्तान को इस बात की इज़ाज़त नहीं दी गई कि वह यूरोप या दूसरे देशों से सीधा व्यापार कर सके.''[92] 'चमेली का चौरा' कहानी में कपड़ा बुनने वाले जुलाहों की समस्याओं का चित्रण किया गया है, '' गिरधरपुर में कपड़ा बुनने वालों की बस्ती अधिक थी. क़ायदे के अनुसार उन सभी को पेशगी धन बांटा गया था. यद्यपि उनमें से बहुतों ने धन लेने से इनकार भी कर दिया था तो भी उनसे ज़बर्दस्ती वचन लिया गया था, ि कवह अपना कपड़ा कोठी में ही लाकर बेचें, क्योंकि ऐसा ही नियम था.''[93]

जुलाहों के साथ जोर–जबर्दस्ती के नियमों से व्यापारी तबाह हो गए. तमाम देशी उद्योग धंधे ध्वस्त हो गए. इस सिलसिले में सजेन्ट महोदय का कथन था, ''कंपनी के नौकर अपने को असीम शक्तिशाली समझते हैं. कंपनी के लिए किसी चीज को खरीदने बेचने के समय ये लोग गांव–गांव में जा कर वहां के निवासियों की इच्छा के विरुद्ध उन्हें माल खरीदने तथा बेचने के लिए लाचार कर रहे हैं. यदि कोई उनकी आज्ञा का पालन नहीं करता, तो बेंतों से पीट कर उसी दम उसे जेलखाने भेज देते हैं. केवल इतना ही नहीं. जोर–जुल्म के साथ गांव वालों को इस शर्त को मानने के लिए भी लाचार किया जाता है कि गोरे व्यापारियों के सिवा न वे किसी दूसरे से माल खरीदेंगे और न बेचेंगे. इसके सिवा कंपनी के नाम से कंपनी के नौकर लोग जो अपने निज के व्यापार के लिए अत्याचार करके माल खरीदते हैं, उसका पूरा–पूरा मूल्य अभागे देशवासियों को नहीं दिया

जाता है. कभी–कभी तो उनको मूल्य मिलता ही नहीं है.''[94] इसी प्रकार 'चमेली का चौरा' कहानी इस भयावह दृश्य को अभिव्यक्त करती है, ''कल उस गांव के बुनने वालों का कपड़ा बेचने का दिन था, किंतु उस दिन बहुत थोड़े आदमी ही कपड़ा लेकर आए थे, और जो आए भी थे, उनका कपड़ा कोठी वालों की माद के अनुसार पूरा न था. कोठी वालों ने सभी लोगों को घर जाने से रोक रखा था ओर अपने सिपाही भेज कर उनके घरों से जबरदस्ती सामान लुटवा लिया था. इसी कारण गिरधरपुर के सभी स्त्री–बच्चे अपनी फरियाद लेकर रामजीवन के घर आए थे.''[95] जुलाहों की ऐसी दुर्दशा देख कर चमेली अपने पति से कहती है, ''तुम्हारे हृदय नहीं है? तुम नहीं देखते कि बेचारे जुलाहे दिन–भर मेहनत करके भी कोठी वालों के हाथ कपड़े बेचकर अपने बच्चों का पालन करने भर का पैसा नहीं पाते. आखिर उन्हें भी जिंदगी काटनी है.''[96]

देश की कारीगरी नष्ट हो चुकी थी. राधामोहन गोकुल लिखते हैं, ''भारतवर्ष में कपड़े के काम की उन्नति को पहले नष्ट करने में और हाल में पुनरुन्नति करने में बाधक होने में जो जो हस्तक्षेप और विरोध हुए उन्हीं के कारण आज यह दशा भारत के कपड़ा संबंधी कारीगरों की है. जो लोग गत 30–35 वर्ष के इतिहास को जानते हैं उनको एडवोलेरम ड्यूटियों और फैक्टरी प्राइम मूवर वायलर जैसे बहुत से एक्ट का हाल मालूम ही है...इतना अवश्य कहेंगे कि वर्तमान शासन–शक्ति भारत वर्ष के अवनति, दुःख–दरिद्रता, निर्बलता आदि के मूल कारणों में से एक बृहत कारण है. जिस मुगलों को एशिया के बाहर वाले इतिहास के लेखकों ने असीम कलंकित रंग से रंगा है उन मुगलों या अन्य मुसलमानों के शासन गति देशों में इतनी कंगाली नहीं थी, इतनी कला–कौशल की कमी न थी. आज कल के उन्नति कृत देश वालों के घर उन्हीं की प्रजा की कारीगरी से भरे थे.''[97]

जुलाहों, कारीगरों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी. विदेशी व्यापारियों ने उन्हें मौत के मुंह में ढकेलना शुरु कर दिया था. उनकी अहर्निश लूट जारी थी. तंग आकर वे अपना घर–बार छोड़ कर भागने पर मजबूर हो जाते. ''विलायती मशीनों से बने कपड़े ने हिंदुस्तान के बुनकरों को तबाह कर दिया. मशीन के कते हुए सूत ने जुलाहों की रोज़ी खतम कर दी. 1818 से 1836 तक हिंदुस्तान में विलायती सूत पहले से 5200 गुना ज़्यादा खपने लगा. रेशमी और ऊनी कपड़े, लोहे, मिट्टी के बर्तनों, कांच और कागज़ के बारे में भी यही रफ्तार दिखाई देती है.भारतीय धंधों के इस तरह तबाह होने से देश की आर्थिक व्यवस्था किस तरह चौपट हुई, इसका अनुमान किया जा सकता है. इंग्लैण्ड के दस्तकारी तबाह हुई तो उसकी जगह मशीनों के उद्योग–धंधे चालू हुए, लेकिन हिंदुस्तान में लाखों कारीगर ओर जुलाहे तबाह हुए तो उनके साथ नए उद्योग–धंधे नहीं बढ़े. ढाका, मुर्शिदाबाद, सूरत वग़ैरा माल तैयार करने वाले बड़े घने बसे हुए नगर थे. 1757 में क्लाइव ने

मुर्शिदाबाद के लिए कहा था कि वह उतना ही बड़ा, घना बसा हुआ और दौलतवाला शहर है जितना कि लंदन. अंग्रेज राज की कृपा से कुछ दिनों के भीतर ही ये सब नगर उजाड़ हो गए. भयानक से भयानक युद्ध होने पर या विदेशी आक्रमणकारियों के द्वारा जीते जाने से भी उनकी यह दशा न होती. 1840 में पार्लामेंट की जांच का उत्तर देते हुए सर चार्ल्स ट्रेविलियन ने कहा था ढाका की आबादी डेढ़ लाख से घट कर 30 या 40 हजार रह गई है.''[98]

'जुलाहों के साथ अत्याचार' शीर्षक कविता में उनके ऊपर होने वाले जुल्म का हृदय विदारक दृश्य उपस्थित करती है. यहाँ तक कि अत्याचारों से छुटकारा पाने के लिए जुलाहे अपना अंगूठा तक कटवाने पर मजबूर हो जाते. उन्हें जुल्म से पार पाने का कोई रास्ता न दीख पड़ता था. कैसी बेबसी थी यह !

''सौ के साठि दये हम उनको तब टाटा उनको परि जाय।
घर घूरा उनका बिकवा कर सब नुकसानी लई चुकाय।।
अत्याचारों की सी पीड़ित हो अपने छुटकारे के काज।
छोड़ दिया रुजगार सबों ने फिर भी वह सब पकड़े जांय।।
पीट पाट और जोर जुल्म से बुनने को करते लाचार।
नहीं उपाय उन्हें बचने का किसी रुप से पड़ा दिखाय।।
कैसी है यह दर्द कहानी हाथ अंगूठे लए कटाय।
नहीं काम के योग्य रहे वह तब छुटकारो पाय जाय।।''[99]

प्रतिबंधित साहित्य में जुलाहों की इस दुर्दशा पर लम्बी चर्चा की गई. किस प्रकार भारत के समस्त व्यापार का नाश कर अपने उद्योगों की बढ़त की गई, इसकी अभिव्यक्ति साहसी लेखकों ने अपने लेखन का विषय बनाकर जनता के सामने रखा. वे इसके माध्यम से साधारण जनता को उनके बदहाल जीवन से अवगत करा रहे थे तथा इसके खिलाफ आवाज उठाने के लिए प्रेरित भी कर रहे थे.

2.3 सामाजिक मुक्ति का सवाल

2.3.1 स्त्री :

हिंदुस्तान की आजादी की लड़ाई में पुरुषों के साथ स्त्रियों ने भी बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया. एक ओर वे पुरुषों को प्रेरित करती, तो दूसरी ओर स्वयं इस लड़ाई का नेतृत्व करतीं. इसके लिए उनको जेल जाना पड़ा, तमाम यातनाओं का सामना करना पड़ा, लेकिन वे पीछे न हटीं. ''नेहरु अपनी पुस्तक भारत एक खोज में मानते हैं कि महिलाओं की इस सक्रियता ने अंग्रेजी सरकार को ही अचंभित नहीं किया वरन् कांग्रेसी नेता भी भौचक्के रह गए. हालांकि मोतीलाल नेहरु को अपने घर की स्त्रियों का, इस तरह गरम दुपहरियों में, सड़क पर आकर पुलिस के सामने अत्याचार झेलना पसंद नहीं था फिर भी गांधी के नेतृत्व में उनकी अपनी पत्नी, बेटियां, बहू सड़क पर आंदोलन करने आ गईं.''[100] स्त्रियों के इस अपूर्व योगदान व उत्साह को जगह–जगह दर्ज किया गया. प्रतिबंधित साहित्य में उनके इस सक्रियता का वर्णन है. ब्रिटिश राज में ज़ब्त घोषित की गई पुस्तक 'आगरा सत्याग्रह संग्राम' में स्त्रियों की जीवटता को भली–भांति रेखांकित किया गया है. यह पुस्तक सैनिक कार्यालय, आगरा से प्रकाशित हुई थी. इसके लेखक महेन्द्र लिखते हैं कि माताएं अपने पुत्रों को बलि वेदी पर सहर्ष भेज देती थी. ''श्रीयुत रामबाबू की माता ने सभा में पुत्र को विदा देते हुए कहा, 'बेटा मेरी कोख की लाज रखना संग्राम से विजयी होकर लौटना.' इस वीरतापूर्ण दृश्य का दर्शकों पर बहुत सात्विक प्रभाव पड़ा.''[101]

इस देश में वीरांगनाओं की कोई कमी न थी. रानी लक्ष्मीबाई, झलकारी बाई, अवंतीबाई, गुडियालो, दुर्गा भाभी जैसी वीर महिलाओं का साहस अपूर्व है. स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई लड़ने वाली रानी लक्ष्मीबाई का बलिदान कौन भूल सकता है. उन्होंने बड़ी बहादुरी से अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए. '6रानी लक्ष्मीबाई ने अपने बचपन में जिन वीरों और महान व्यक्तियों की कथाएं सुनी थीं उनका गहरा प्रभाव ग्रहण किया था. साथ ही बुंदेलखण्ड की तुलना में महाराष्ट्र की स्त्रियाँ अधिक स्वाधीन थीं. श्वसुर गृह में उन पर एक रानी पद की मर्यादा का भार था. पर रानी लक्ष्मीबाई ने दोनों भावों में अद्‌भुत सन्तुलन का परिचय दिया. उन्होंने अपने आस पास की ही नहीं झाँसी के बड़े स्त्री समाज को नयी दिशा दी, प्रशिक्षित किया. युद्ध में ख्त रहीं उनकी सखियाँ, उनकी बहन, झलकारी बाई, मोतीबाई, जूही और विशेष रुप से उनका महिला तोपची दल.''[102] बलभद्र प्रसाद गुप्त 'विशारद' की रचना 'खून के छींटे' में रानी लक्ष्मीबाई की वीरता का वर्णन किया गया है–

''जनरल स्मिथ भी लक्ष्मीबाई से बुरी तरह हारे।
अनगिनती गोरों को रानी ने थे निज कर से मारे।।
गया ग्वालियर भी था गारों की दैहिक दुर्बलता से।
लिया कालपी भी था रण–देवी ने सौम्य सरलता से।।''[103]

देश की आजादी के लिए कुर्बान होने में बेगम हज़रत महल भी पीछे न रहीं. ''देश के जिन सपूतों ने जीते–जी साम्राज्यवादियों और उनके देशी एजेंटों की इन तमाम कोशिशों को नाकाम बनाने के लिए भरपूर कोशिशें की, उनमें स्वर्णिम अक्षरों में लिखने योग्य एक नाम बेग़म हज़रत महल का है. उन्होंने न केवल अंग्रेजों के खिलाफ जंग की कमान सँभाली और बड़ी बहादुरी से से लड़ीं, बल्कि पराजित होने के बाद भी उन्होंने इस सिलसिले को जारी रखा.''[104] उन्होंने भारतीय जनता को जागरुक करने की कोशिश की. ''जब 1 नवम्बर 1858 को ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया की ओर से हिंदुस्तानी जनता को एक एलान जारी किया गया, जिसमें कम्पनी सरकार के खात्मे के साथ–साथ दत्तक पुत्र बनाने से लेकर मज़हबी आजादी और देशी नवाबों–राजाओं के साथ अच्छे व्यवहार रखने जैसी बातों का वादा किया गया था. बेग़म हज़रत महल ने इसके जवाब में एक एलान जारी किया और रानी विक्टोरिया के किये गये दावों की धज्जियाँ उड़ाईं. उनका यह संदेश 1857 की क्रान्ति की जीती–जागती तसवीर पेश करता है.''[105]

आजादी की लड़ाई में तमाम गुमना महिलाओं ने अपना बलिदान दिया. शाही घरानों के अतिरिक्त सामान्य घरों की मुस्लिम महिलाओं ने भी अपूर्व साहस का परिचय दिया. ''मुसलमान महिलाओं में भी बेग़म हज़रत महल, जीनत महल और मुमताज, जमानी बेग़म आदि का नाम तो इतिहास में फिर भी मिल ही जाता है. इसके पीछे का एक प्रमुख कारण यह कि इनका सम्बंध शाही घरानों से रहा था. किन्तु इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे नाम भी हमारे इतिहास के पननों में छुपे पड़े हें जिनके योगदान का ठीक से मूल्यांकन नहीं हो सका है. इन गुमनाम महिलाओं में असगरी बेग़म, ताजआरा बेग़म, रक़्क़ासा अज़ीजन, रक़्क़ासा फरहत जहाँ, हबीबा बेग़म, रहीमी खातून, खुसक जमानी बेग़म, सब्ज़पोश खातून और नाज़नीन आदि के नाम भी इतिहास के सुनहरे पन्नों पर लिखे जाने के योग्य हैं. इन महिलाओं ने तो कई बार पुरुषों की अपेक्षा अधिक बहादुरी का प्रदर्शन करते हुए अपने देश प्रेम का परिचय दिया है.''[106]

इन बहादुर महिलाओं को अेग्रेजों के दुर्दमनीय अत्याचार झेलने पड़े. असग़री बेग़म ने अंग्रेजों का खुलकर मुकाबला किया था किन्तु अन्ततः उसे पकड़कर अंग्रेजों ने जिन्दा जला दिया.''[107] आजादी की इस लड़ाई में सभी वर्ग की स्त्रियों का योगदान रहा. अमीर, गरीब सब जाति धर्म को भुला कर

एकमत थे. स्वतंत्रता संग्राम में वेश्याओं ने भी अपूर्व साहस का प्रदर्शन किया. ''अजीज़न एक रक़्क़ासा थी परन्तु उसका प्रेम साधारण बाज़ार में धन के लिए नहीं बिकता था...अजीज़न की मुस्कुराहट, उसके तेवर और उसकी बातचीत सिपाहियों के हौसले बुलन्द करती जिसका परिणाम यह होता कि बुज़दिल से बुज़दिल सिपाही भी जोश में आ कर मैदाने–जंग की ओर चल पड़ता था. ''[108] इन स्त्रियों के हौसले इतने बुलंद थे कि ये खुली लड़ाई को अंजाम देती थीं. ''कानपुर में स्वतंत्रता सेनानियों की अगुआई नाना साहब, उनके भाई और तात्या टोपे कर रहे थे. 1 जून 1857 को जब योजनाएं बनाने के लिए स्वतंत्रता सेनानियों कर बैठक हुई तो अजीज़न भी वहाँ मैजूद थीं. वहाँ सभी ने हाथ में गंगा जल लेकर अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने की कसम खाई. अजीज़न ने महिलाओं की एक अलग टोली बना कर पुरुषों के वेश में लड़ाई में कूद पड़ी. वह बग़ल में हथियार लटकाए, हाथ में नंगी तलवार लेकर घोड़े पर सवार बिजली की तरह दौड़ती हुई शहर की गलियों और छावनी के बीच चक्कर काटती रहती. कभी जख्मी सिपाहियों के लिए दूध–भोजन और दवाएँ पहुँचाती तो कभी हथियार की चमक से उनके हौसले बुलन्द करती. अजीज़न की वीरता से उत्साहित होकर बहुत सी महिलाएँ इनकी टोली में शामिल हो गयीं.''[109] इसी प्रकार हबीबा बेग़म का सम्बंध भी वीर साहसी परिवार से था. ''1857 के स्वतंत्रता संग्राम में भागीदारी के कारण अंग्रेजों ने उसे तथा उसकी बहन जमीला को फाँसी पर लटका दिया था. रहीमी खातून भी मुजफ्फर नगर की रहने वाली थी. स्वतंत्रता संग्राम में यहाँ की दो सौ पच्चीस महिलाओं को गोली से उड़ा दिया गया और जिन ग्यारह महिलाओं को फाँसी की सजा भुगतनी पड़ी उनमें रहीमी खातून भी शरीक थीं.''[110]

अंग्रजों के खिलाफ लड़ाई को आगे बढ़ाने में महिलाओं ने बहुत मदद किया. औरतों का जोश उफान पर था. इसमें उनकी बढ़ी हुई उम्र भी आड़े न आती. ''सब्ज़पोश खातून दिलली की एक बुढ़िया थी जो हरे रंग के नकाब में घोड़े पर सवार होकर लोगों को जेहाद के लिए ललकारती और कहती कि–'आओ, खुदा ने तुम्हें बहिश्त में बुलाया है.' दिल्ली के लोग उसकी ललकार पर अंग्रेजों के विरुद्ध टूट पड़ते. वह खुद तलवार और बन्दूक से दुश्मन की सफ़ों में खलबली मचा दिया करती. लोगों का कहना था कि उस महिला में गजब की दिलेरी थी. वह कभी पैदल और कभी घोड़े पर आती और अपनी बहादुरी के जौहर दिखा कर वापस चली जाती. एक दिन वह घोड़े से गिरी और गिरफ्तार करके अम्बाला जेल में भेज दी गई.''[111]

इसी प्रकार अनगिनत महिलाओं ने अपनी कुर्बानी दी. ऋषभचरण जैन के जब्त उपन्यास 'ग़दर' में अज़ीमुल्ला खाँ की प्रेयसी मैना उन्हें देश की बलिवेदी पर कुर्बान होने के लिए प्रेरित करती है.

स्वतंत्रता के इस संग्राम में महिलाओं ने जहाँ जैसे बन पड़ा वैसे सहयोग किया. विदेशी वस्त्र बहिष्कार के लिए वे सूत तैयार करने लगी. ''स्त्रियाँ महीन–मोटा, जैसा बना, सूत कात कर उनहें दे दिया करती हैं. इसके लिए उनको कताई मिलती है. फिर पुरुष उनसे खादी बुन कर तैयार कर देते हैं. स्त्रियाँ घर–गृहस्थी के धंधों से छुट्टी पाकर चर्खा कातती हैं. स्वदेशी आंदोलन की सारी सफलता का श्रेय महिलाओं को है.''[112]

हिंदुस्तान की आजादी के लिए महिलाओं ने अभूतपूर्व योगदान दिया. ''अब तो मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस संग्राम की रचना ही इस तरह की गई है कि बहनें चाहें तो पुरुषों से अधिक भाग इसमें ले सकती हैं.' महात्मा जी के इतना कहने की देर थी कि महिला–समाज इस अहिंसात्मक महासंग्राम में अधिकाधिक भाग लेने को टूट पड़ा. वे तो महात्मा जी के आदेश की प्रतीक्षा में थीं ओर आज्ञा देने के लिए उन पर दबाव डाल रही थीं.''[113]

ज़ब्त की गई रचना 'आगरा सत्याग्रह संग्राम' में स्त्रियों के अपूर्व उत्साह का विर्णन किया गया है. ''फिरोजाबाद में श्रीमती सुखदेवी पालीवाल के सतत प्रयत्न से स्त्रियों में अपूर्व जाग्रति उत्पन्न हो गई थी. उस छोटे से बीस हजार की आबादी के कसबे में जितनी स्त्रियाँ स्वदेश सेविका बन गई थीं उतनी बहुत से जिलों में भी नहीं होंगी. इन देवियों ने मन्दिरों के मालिकों से प्राथ्रना की ि कवे मूर्तियों को खद्दर के वस्त्र पहनावें , विदेशी वस्त्र तथा विदेशी कपड़े का बायकाट करें. मन्दिर पर राष्ट्रीय झण्डा लगावें तथा यह साइनबोर्ड लगा दें कि विदेशी वस्त्र पहन कर कोई भीतर नहीं आ सकता. एक मन्दिर के मालिक सेठ कन्हैयालाल जी ने यह बात नहीं मानी. इस पर श्रीमती सुखदेवी पालीवाल के नेतृत्व में मन्दिर पर धरना शुरु कर दिया गया. उस समय इस दृश्य को देखने के लिए वहाँ सैकड़ों स्त्रियाँ तथा सहस्त्रों पुरुष की भीड़ थी. कुछ देर बाद श्रीमती सुखदेवी पालीवाल गिरफ्तार कर ली गईं. उनकी जगह पर देश सेविकाओं के जर्ती पर जत्थे धरना देने लगे. इस प्रकार कुल बारह सेविकाएं गिरफ्तार हुईं जिनके नाम ये हैं– सुखदेवी पालीवाल, सत्यवती, चम्पावती, द्रौपदी देवी, उम्मेदी बाई, कृपा देवी, नन्हीं देवी, त्रिवेणी देवी, सरस्वती देवी, गुलाब देवी, रामकली तथा टिकावती.''[114]

स्त्रियाँ सर्वस्व बलिदान करने के लिए तैयार थीं. वे अपने घर–परिवार की परवाह किए बगैर इस लड़ाई में कूद पड़ी थी. ''जिस कार्य के लिए पुरुष अयोग्य थे, उसे सफलतापूर्वक करने के लिए महिलाएं घर छोड़ कर बाहर आ गईं. इसमें सफलता प्राप्त करने के बाद ज्यों–ज्यों संग्राम का क्षेत्र बढ़ता गया, उनका कार्य क्षेत्र भी विस्तृत और व्यापक होता गया. भाई, पुत्र, पति आदि के गिरफ्तार अथवा घायल हो जाने पर उनके रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए वे बराबर आगे आती गई. अपने

पतियों को यदि वे इस सत्य की लड़ाई में भाग लेने से मुंह छिपाते पातीं तो उनको मैदाने–जंग में जाने को विवश करतीं. एक बार जिस समय एक धनी व्यवसायी के पुत्र , श्री नरोत्तम सुन्दर जी अपनी नव–वधू को छोड़ कर जेल–षत्रा करने जा रहे थे, तब उनकी वीर धर्मपत्नी ने कहा था– वीरेन्द्र ,जाओ, नारी–प्रेम की अपेक्षा माता की दासता मिटाना कहीं उत्तम है. आह! थ्कतना सुन्दर वीरोचित उपदेश है! स्वतंत्र भारत के इतिहास में यह त्याग स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा. इस प्रकार एक नहीं, अनेक स्त्रियों ने हंसते–हंसते अपने पतियों को जेल भेजा.''[115]

स्त्रियों के इस अभूतपूर्व साहस की चर्चा प्रतिबंधित कहानी 'ध्रुव–धारणा' में भी मिलती है–
''रमा बोली, 'यह कैसी आवाज आ रही है ? क्या कोई गिरफ्तार हुआ है ?'
उपेंद्र,– 'हुआ न होगा तो होने वाला होगा. बोलो, किसे गिरफ्तार करना चाहती हो ?'
रमा–'तुम्हें.'
उपेंद्र–'अच्छा तो मैं जाता हूँ.'
रमा–'सच' ?
उपेंद्र–'नही ंतो क्या झूठ?'
रमा–'बैठ जाओ, मैं तुम्हारे चरण की धूल अपने सिर पर लगा लूँ.''[116]

स्त्रियाँ स्वयं जेल जाने के लिए उतावली रहती थीं. ''श्रीमती जमनालाल बजाज ने एक बार कहा था–'मैं अभागिन हूँ जो अपने पति के पहले जेल न गई. फिर भी उनके जेल जाने में अपना गौरव है.' यही नहीं, पुरुषों पर किए गए प्रहारों को महिलाओं ने आगे बढ़ कर अपने ऊपर सहन कर लिया.''[117] ज़ब्तशुदा रचना 'आगरा सत्याग्रह–संग्राम' में लेखक ने स्त्रियों के साहस की चर्चा करते हुए लिखा ''यदि अधिकारियों में दम होता तो उस समय वहाँ कम से कम सौ स्वदेश सेविकाऐं गिरफ्तार होने को तैयार थीं. परंतु इस उत्साह को देख कर उनके होश हिरन हो गये और उनके पास जो एक लारी थी उसके भरते ही वहां से चुपचाप चल दिये. इनमें से बहुत सी देवियां अपने बहनों तथा बच्चों को छोड़ कर जेल गईं. एक लड़की ऐसी थी जिसका दूसरे ही दिन गौना हुआ था. रास्ते भर ये सानन्द आजादी के गीत गाती रहीं.''[118]

स्त्रियाँ बड़े उत्साह से कदम से कदम मिला कर आगे बढ़ीं. ''ए. फेनर बाकवे अपनी पुस्तक 'Indian crisis ' में एक स्थल पर लिखते हैं कि उन दिनों काम करने वाली महिलाओं का स्वेच्छा से भाग लेना और उनकी वीरता इस आंदोलन के एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू के द्योतक हैं. रुढ़ियों और रीति–रिवरजों के होते हुए भी महिलाओं ने आंदोलन में भाग लिया. उन्होंने शहरों की

सड़कों में मीटिंग करते हुए, ताड़ी–शराब की दुकानों पर धरना देते हुए, नमक धावों में सम्मिलित होते हुए सबको आश्चर्यन्वित कर दिया, जो भारतीय हालातों से परिचित थे. वे नारियाँ भी, जो परदे में बुरी तरह बन्द थीं, अपनी इन बुराइयों को त्याग कर खुल्लमखुल्ला सड़कों पर आ गई और उन्होंने लड़ाइयों में बेपरवाही से डटकर कार्य किया. देहली में महिलाओं की नेत्री श्रीमती सत्यवती देवी ने अपने मुकद्दमे के समय कहा था कि रानी लक्ष्मीबाई (जो हमारी प्राचीन वीर महिला थीं) के बाद से यह पहला ही अवसर है कि अपने देश को दासता की श्रृंखलाओं से छुड़ाने के लिए हम लोगों ने अपने घर व बाल–बच्चों को छोड़ दिया है. अब न तो जेल की ऊँची कोठरियों का डर, न अत्याचार एवं अपमान हमें अपने कर्तव्य–पथ से, जो हमारा अपने तथा आगे आने वाली संतान के प्रति है, विचलित कर सकती है. मैं और मेरी हजारों बहनें कष्ट सहने को प्रस्तुत हैं, केवल इसलिए कि हमें हिंदुस्तान के लिए स्वतंत्रता अवश्य प्राप्त करनी है. श्रीमती सत्यवती को छः मास की सजा दे दी गई क्योंकि उन्होंने अपने चाल–चलन को अच्छा रखने के लिए जमानत देने से साफ इनकार कर दिया था. और वह बहुत सी जेल गई हुई स्त्रियों में से एक हैं. धरसना पर धावा करने वाले महात्मा गांधी और एक दूसरे नेता के गिरफ्तार होने के बाद प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती सरोजिनी नायडू के नेतृत्व अपने हाथ इसलिए लिया ि कवह अपने नंबर के हिसाब से जेलवासिनी हों. दिन–प्रतिदिन बंबई में 500 महिलाएं दूकानों पर, जो विदेशी वस्त्र बेच रही थी, धरना देती थीं. हिन्दुस्तान के प्रत्येक हिस्से में महिलाओं ने इसी उत्साह से आंदोलन में भाग लिया था.''[119]

ज़ब्त रचना 'आगरा सत्याग्रह–संग्राम' से भी इस बात की जानकारी मिलती है, ''इस सत्याग्रह संग्राम में आगरे में स्त्रियों की अभूतपूर्व जाग्रति और उनके चमत्कारपूर्ण कार्य को देख देख कर सब लोग चकित रह गए. इसका सर्व श्रेय तपस्विनी पार्वती देवी को है. आप ही की प्रेरणा से श्रीमती सुखदेवी पालीवाल, श्रीमती विद्यावती राठौर, अंगूरी देवी, दमयन्ती देवी चतुर्वेदी, श्रीमती भाग्यवती देवी, श्रीमती सरजू देवी, श्री चम्पावती देवी, मुलिया देवी, श्री सरस्वती देवी, श्री वैकुण्ठी देवी, शान्ती देवी आदि अनेक देवियों ने उस तप त्याग, कष्ट–सहिष्णुता, धैर्य, साहस ओर सेवा भाव का परिचय दिया जो भारत की देवियों का परम्परागत स्वाभाविक गुण है. चौदह अप्रैल को जब श्रीमती पारवती देवी ने नयेगंज की सभा में बजाजों के यहां धरना देने के लिए स्वयं–सेविकाओं की अपील की तथा श्रीमती सुखदेवी पालीवाल आदि दस–ग्यारह महिलाएं स्वयं–सेविका बन गईं. विलायती कपड़े के व्यापारियों से प्रतिज्ञा कराना इन्हीं का काम था. फिरोजाबाद में भी इन्होंने प्रतिज्ञा कराने में सफलता पाई. बाईस अप्रैल को ही मनकामेश्वर की बारह दरी में कई हजार स्त्रियों की पहली बड़ी सभा हुई जिसमें श्रीमती पारवती देवी, सुखदेवी पालीवाल, अंगूरी देवी, चम्पावती देवी, विद्यावती जौहरी आदि के भजन, व्याख्यान हुए. मइ में इन्हीं देवियों ने श्रीमती सुखदेवी पालीवाल, और

दमयन्ती चतुर्वेदी के साथ बजाजे में पैट्रोल किया तथा जिन लोगों ने विदेशी कपड़ा खरीद भी लिया था उनसे समझा बुझा कर लौटवाया.''[120]

स्त्रियों की इस भागीदारी से ब्रिटिश सरकार हिल गई. ''1910 के दशक के अन्त ओर 1920 के दशक के आंदोलन में सक्रिय महिलाओं की बराबरी पर चर्चा हो गई थी. उन्होंने न केवल महिला अधिकारों को राष्ट्रीयता से जोड़ा वरन् राष्ट्रीय आंदोलन के तर्कों को स्त्री–पुरुष बराबरी के अधिकार मांगने के लिए भी इस्तेमाल किया. 1921–22 की एक जुझाारु महिला एक्टीविस्ट ने घोषणा की कि'स्वराज का मतलब है अपना राज', और स्वाधीनता का मतलब हे 'शक्ति व ताकत अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए'. एक तीसरी एक्टीविस्ट ने कहा 'स्वाधीनता दी नहीं जा सकती उसे जबर्दस्ती लेना पड़ता है.''[121]

स्त्रियाँ घर की चहारदीवारी लाँघ कर बाहर निकल गई थीं. वे अपनी शक्ति पहचानने लगी थीं. उनके कर्म क्षेत्र का विस्तार होने लगा था. ''सन् 1920–22 में जब असहयोग आंदोलन शुरु हुआ तो पहली बार महिलाएं भारी संख्या में आंदोलन से जुड़ीं. सैकड़ों महिलाएं खादी और चरखा बेचने गली–गली गईं, उन्होंने खादी को लोकप्रिय बनाने के लिए जुलूस निकाले और समूहों में विदेशी कपड़ों की होली जलाई. उन्होंने शराब की दुकानों पर धरना दिया और शराब के लाइसेंस की सरकारी नीलामी को रोका. 1921 के कांग्रेस सममेलन में 144 महिला प्रतिनिधियों ने भाग लिया. इसमें 131 महिला स्वैच्छिक काग्रकर्ता थीं और 14 महिलाएं विभिन्न समितियों में थीं. मुंबई में महिलाओं ने राष्ट्रीय स्त्री सभा का गठन किया और वह पूरी तरह राष्ट्रीय एक्टीविस्ट के प्रति समर्पित था. यह पहला महिला संगठन था जो बिना पुरुषों की मदद के चलाया जाता था. इसके दो उद्देश्य थे–स्वराज और महिलाओं का उद्धार एवं उत्थान.''[122]

स्त्रियों के अनेक संगठन थे; जो सतत इस कार्य में लगे हुए थे. ''नए संगठनों में शामिल थे–देश सेविका संघ, नारी सत्याग्रह समिति, महिला राष्ट्रीय संघ, लेडिज पिकेटिंग बोंड, स्त्री स्वराज संघ तथा स्वयं सेविका संघ. इनमें से अनेक संसीाओं ने न केवल महिलाओं के प्रदर्शन, जुलूसों का आयोजन किया, बल्कि घेराव, तथा प्रभात –फेरी के साथ–साथ स्त्रियों को चर्खा चलाने का प्रशिक्षण देने के साथ–साथ खादी बेचने तथा उसका प्रचार करने का काम भी किया. मिसाल के तौर पर सन् 1931 में बंगाल में सीापित लेडिज पिकेटिंग बोर्ड के निम्नलिखित उद्देश्य थे : विदेशी वस्तुओं के विरुद्ध संघर्ष, गृह उद्योगों को लोकप्रिय बनाने के साथ–साथ कुटीर उद्योंगों के विकास में सहायता खास तौर से खादी कातने एवं बुनाई के मामले में स्वाधीनता की महानता तथा देशों में समानता के महत्व को बताने के लिए जुलूसों का आयोजन, अस्पृश्यता दूर करने की आवश्यकता

पर उपदेश, जितना संभव हो सके अधिकाधिक लोगों को कांग्रेस का सदस्य बनाना तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एवं उसकी सम्बद्ध इकाई बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के दिशा निर्देशों के अनुसार काम करना इत्यादि.''[123]

उस समय विलायती वस्त्रों के बहिष्कार की होड़ सी लगी थी. कवि सोहनलाल द्विवेदी की जब्त कविता 'खादी–गीत' में देशवासियों को खादी के प्रयोग का आवाहन किया गया . यह कविता कानपुर से 1930 में प्रकाशित हुई थी. इसमें कवि खादी का गुण गान करते हैं–

''खादी के धागे–धागे में, अपनेपन का अभिमान भरा।
मता का इसमें मान भरा, अन्यायी का अपमान भरा।
खादी के रेशे–रेशे में, अपने भाई का प्यार भरा।
माँ–बहिनों का सत्कार भरा, बच्चों का मधुर दुलार भरा।।''[124]

ज़ब्तशुदा रचना 'आगरा सत्याग्रह–संग्राम' में खादी के प्रचार के लिए महिलाओं के योगदान को रेखांकित किया गया है–''मुहल्ले–मुहलले में नमक की मण्डी मानपाडे वैगरः में स्त्रियों की सभाएं की गई जिनमें स्वदेश सेविकाएं भरती की गईं. विदेशी बहिष्कार तथा स्वदेश प्रतिज्ञाएं ली गईं. महिला छावनी के लिए दान लिया गया. वे ही देवियां हिन्दू मंदिरों में में गईं और पुजारियों को इस बात के लिए तैयार किया कि वे मूर्तियों को खद्दर धारण करावें तथा स्वदेशी खांड का प्रयोग करें. जमुना स्नान के लिए मन्दिरों में जाने वाली स्त्रियों से भी विदेशी कपड़े बायकाट और स्वदेशी के प्रयोग की प्रतिज्ञाऐं इन्होंने लीं. जून तक पचास स्वदेश–सेविकाऐं बन चुकी थी इसलिए महिला छावनी खोल दी गई.''[125] अंग्रेजी सरकार ने इन पर शिकंजे कसना शुरु किया. ''बंबई की ज्यादातर कपड़ा मिल महिला श्रमिक देश सेविका संघ में सक्रिय थीं जिस पर सन् 1931 में प्रतिबंध लगा दिया गया. बाकी संगठनों पर इसके एक वर्ष बाद प्रतिबंध लगाया गया.''[126]

इतना ही नहीं, महिला सत्याग्रहियों को कई बार पुलिस के भयंकर अत्याचार का सामना करना पड़ा. ''अप्रैल सन् 1930 में जवाहरलाल नेहरु की माता श्रीमती स्वरुप रानी नेहरु के नेतृत्व में हुए महिलाओं के एक प्रदर्शन पर पुलिस ने लाठी चार्ज किया तथा वे लाठी सिर में लगने से बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ीं. दिल्ली में महिलाओं के एक जुलूस पर लाठी चार्ज किया गया जिसमें दस स्त्रियाँ घायल हुइ. बलसाड़ में महिलाओं के एक प्रदर्शन में डेढ़ हजार स्त्रियाँ शामिल हुईं. पुलिस द्वारा लाठी चार्ज किए जाने पर जुलूस की अगुआई कर रही स्त्री के सिर में लाठी लगी और खून की धारा बह निकली परंतु कुछ ही क्षणों में वह खून से लथपथ साड़ी पहने फिर खड़ी हो

गई और प्रदर्शनकारियों का उत्साहवर्धन तब तक करती रही जब तक कि दुबारा पिटाई के परिणामस्वरुप वह अचेत होकर गिर नहीं पड़ी. वीरमगाँव की दो सौ महिलाएं आंदोलनकारियों की प्यास बुझाने के लिए एक मानवीय कृत्य के रुप में पानी लेकर रेलवे स्टेशन गईं. पुलिस उन पर टूअ पड़ी और बेरहमी से उनकी पिटाई कर दी. जुलाई 1930 में तिलक की सालगिरह मनाने के लिए हंसा मेहता के नेतृत्व में निकाले गए जुलूस पर लाठी चार्ज किया गया तथा कमला नेहरु, अमृता कौर, मणिबेन पटेल एवं हंसा मेहता समेत लगभग एक सौ स्त्रियों को गिरफ्तार कर लिया गया. मद्रास में पुलिस ने स्त्री सत्याग्रहियों पर लाठी चार्ज के अलावा दूसरे तरीके भी अपनाए ! इन तरीकों में से एक था घेराव करने वाली स्त्रियों पर पानी की तेज धार फेंकना. 'द हिंदू' नामक अखबार ने अपने 25 जनवरी 1932 के अंक में लिखा कि दो सौ महिला कार्यकर्ताओं पर यह तरीका इस्तेमाल किया गया जिसके कारण वे बेहोश हो गईं. पुलिस ने किसी को भी उनकी सहायता के लिए उनके पास नहीं जाने दिया. ''[127]

महिलाएं स्वयं आंदोलन का नेतृत्व करतीं. 1931 में प्रकाशित नाटक 'लवण–लीला' में इसका अंकन किया गया. इस नाटक के रचनाकार थे बुद्धिनाथ झा द्विज 'कैरव'. यह रचना ब्रिटिश राज द्वारा जब्त घोषित की गई. इस नाटक के सातवें दृश्य में स्त्री सरदार का कथन है–

''स्त्री सरदार : (दर्शकों से)– महात्मा गांधी के बाद दूसरे सरदार भी गिरफ्तार हो गए. आज उनकी जगह पर मैं आई हूँ. झूठा संसार कहता है कि भारत की स्त्रियाँ किसी सार्वजनिक कार्य में भाग नहीं ले सकतीं, उनकी विद्या–बुद्धि बहुत नीचे दर्जे की होती है. मैं जल्द ही उनकी आँखें खोल देती हूँ. धरना का काम सर्वत्र स्त्रियों ने अपने ऊपर ले लिया है. भारत की स्त्री–शक्ति अब जग उठी है. मैं धरासना के नमक –गुदाम पर धाबा करने वालों की सरदार रहूँगी. (स्वयं सेवकों से) कौम के सिपाहियों, आपके साथियों ने जिस वीरता और सहिष्णुता का परिचय देते हुए लाठियों के प्रहार का स्वागत किया है उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती; कुछ घायल होकर अस्पताल पहुँचाये गये, कुछ जेलखाने भेजे गए. आज आप लोगों की बारी है. वे लोग मार खाते–खाते बाहर ही रह गए, गुदाम तक पहुँच ही नहीं सके. मैं विश्वास करती हूँ कि आप लोग इस बार नमक लेकर ही छोड़ेंगे. संग्राम का भीषण रुप हो गया. नौकरशाही आसुरीपन का नंगा नाच करने लगी है. आप लोगों को ऐसा विश्वास कर के ही यहाँ से बढ़ना चाहिए कि धावा करते हुए शायद प्राणों से भी हाथ धोना पड़े. लाठियाँ चलाकर पुलिस वालों ने स्वयं सेवकों का जोश देख लिया, अब गोलियाँ चलाना ही उनके लिए बाकी है. वह भी शायद हो ही जाएगा. किन्तु इसकी परवाह क्या ? भारतवर्ष

की आजादी की लड़ाई में प्राण देने से बढ़ कर दूसरी संस्कृति क्या हो सकती है ? अतएव , आप लोग भारत माता के नाम पर चढ़ाई करने के लिए चलने को तैयार हो जाएं.''[128]

स्त्रियों का जोश देखते ही बनता था. वे कानून, पुलिस सबको मुंह तोड़ जवाब दे रही थीं. उनके हौसले बुलंद थे. विपदाओं को झेलने के लिए वे तैयार थीं. नाटक 'लवण–लीला' में पुलिस और स्त्री सरदार के बीच हुई बातचीत से स्त्रियों के साहस का परिचय मिलता है :

''पु. सु. : आप को लज्जा नहीं मालूम होती कि एक स्त्री होकर मैदान में आई हैं.

स्त्री सरदार : लज्जा ? लज्जा तो तुम्हें होनी चाहिए. देश को आजाद करने में क्या पुरुष, क्या स्त्री सबों का समान अधिकार है. भारतीय स्त्रियों का तो यह सदा से आदर्श रहा है कि युद्ध में विरोधी दल से शक्ति भर लड़े. चाँद बीबी और लक्ष्मीबाई ने तुम्हारे प्रश्नों का मुंहतोड़ जवाब कभी दे दिया है.

पु. सु. : किन्तु अपनी इज्जत की रक्षा के लिए स्त्रियों को ऐसा नहीं करना चाहिए.

स्त्री सरदार : अंग्रेजी सल्तनत में भारतीय स्त्रियों की इज्जत कैसी ? जालियांवाला काण्ड के बाद पंजाब में स्त्रियों की जो दुर्दशा हुई, वह तुम्हारे मुंह को सदा काला रखेगी. अभी कल वीरम गाँव की स्त्रियों पर घोड़े दौड़ा कर इस समय इज्जत की बातें करते तुम्हें शर्म नहीं होती ?''[129]

आजादी की लड़ाई में स्त्रियों की भूमिका हर स्तर पर थी. अपनी आजादी के अलावा उन्होंने हर प्रकार की दासता से मुक्त होने के लिए संघप्ररत रही. ''बाबा रामचंद्र के नेतृत्व में, अवध की गरीब स्त्रियों ने अगस्त–सितंबर 1920 से ही हजारों की तादात में भाग लेना आरंभ कर दिया था. 19–2–1925 को प्रतापगढ़ में जे. कुमारी की अध्यक्षता में महिला कानफ्रेंस किसान देवी सभा हुई. ''[130]

गरीब स्त्रियों के आंदोलन की ओर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का रुख उत्साहजनक न था. ''भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का चरित्र भी जातिवादी, पुरुषवादी और शोषक था. इसलिए गरीब स्त्रियों की सत्याग्रहों में भागीदारी को अधिक महत्व न देती थी. मसलन जब 1940 में अवध की नौ महिलाएं सत्याग्रह के बाद जेल गईं तो मुनीश्वरदत्त उपाध्याय नामक कांग्रेसी नेता का कहना था कि यदि ऊँची जाति की स्त्रियों ने सत्याग्रह किया होता और जेल गई होती तो कांग्रेस का नाम होता. शूद्र

स्त्रियों के लिए यह उदासीन रुख 1937 की कांग्रेस सरकारों ने भी अपनाया. फलस्वरुप मजदूरिनों को जमींदारों के शोषण और दमन से बचाने के लिए आवश्यक कारगर कदम नहीं उठाये गए.''[131]

बहरहाल, स्त्रियों को उनकी शोचनीय स्थिति से बाहर निकालने के प्रयत्न भी लगातार जारी थे. ''राष्ट्र की उन्नति या अवनति के साथ स्त्रियों का क्या संबंध है ? यदि इस प्रश्न का उत्तर संक्षेप में दिया जाए तो कहना होगा कि राष्ट्र की उन्नति या अवनति स्त्रियों की उन्नति या अवनति पर अवलंबित होती है. परंतु इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि 'राष्ट्र' और उसकी 'उन्नति' अत्यंत मिश्र (complex) भाव है. इनसे समाज की बहुत ऊँची और पक्व दशा सूचित होती है.''[132]

स्त्रियों ने अपनी आजादी के साथ देश की आजादी का मार्ग भी प्रस्तुत कर रही थीं. किशनचन्द 'ज़ेबा' के 1922 ई. में लिखे गए नाटक 'ज़ख्मी पंजाब' में स्त्रियों का साहस देखते ही बनता है. 'ज़ेबा' का यह नाटक सरकार द्वारा प्रतिबंधित किया गया था. यह नाटक जालियांवाला बाग में हुई नृशंस हत्याकाण्ड पर आधारित है. इसमें रत्न देवी का कथन है, ''क्या खबर थी हुक्म होगा आज क़त्लेआम का।। परंतु मैं तुम्हारी वीरोचित मृत्यु पर शोक नहीं करुँगी. तुम्हें जन्म देकर जननी आज धन्य हुई. वीर पति तुम्हारी पत्नी आज धन्य हुई. तुम भाग्यशाली हो कि कर्तव्य कुण्ड में अपने प्राणों की आहुति देकर भवसिन्धु से पार हो गए, देश–भक्ति पर मर मिटने वाले भाइयों का साथ देकर हर्ष सहित हमेशा की नींद में सो गए.

फलेगा ऐसी बलि से शज्र उम्मेदों का।
यह रंग लाएगा एक दिन लहू शहीदों का।।''[133]

पति की मृत्यु के बाद रत्नदेवी स्वयं को देश सेवा के लिए समर्पित कर देती है. वह कहती है, ''डायर के अनर्थरुपी खंजर से छिला हुआ घायल हृदय से समुन्दर पार से जाऊँगी. मैं भारत की स्त्रियों के लिए अपनी बहनों का साहस बढ़ाऊँगी.

आज के कर्तव्य में दृढ़ करके जब अड़ जाऊँगी.
अब करेंगी कद्र सब बहनें मेरे उपदेश की.
अपने पतियों को खुशी से भेंट देंगी देश की.''[134]

यही नहीं, ब्रजेंद्रनाथ गौड़ के जब्त उपन्यास 'पैरोल पर' में अमिता बड़े मिल मालिक की पत्नी होते हुए भी मजदूरों के आंदोलन का पक्ष लेती है. ब्रजेंद्रनाथ गौड़ लिखते हैं, ''अमिता उठी, धीरे–धीरे

गुनगुनाती रही और तब सामने रखे पियानो के पास पहुँची. कानपुर के बच्चे–बच्चे की ज़बान पर उन दिनों जो गीत थिरक रहा था, उसी को झूम–झूम कर गाने लगी–

शहीदों की टोली में नाम लिखा लो.
कफ़न सर पे बाँधों,
चलो आगे–आगे.''[135]

स्त्रियाँ क्रान्तिकारियों के गुप्त संगठन में भी सक्रिय थी. 'पैरोल पर' उपन्यास में अमिता , शीला वगैरह भी आजादी के लिए इसी दिशा में संघर्षरत थीं. स्त्रियां गिरफ्तार होने के लिए आतुर थी. ''गिरफ्तार होने वाली महिलाओं की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई : बंबई में सन् 1930 में चुनावों का बहिष्कार करने वाले 400 स्त्रियों को गिरफ्तार कर लिया गया. उनका घेराव इतना जबर्दस्त था कि सरकार को चुनाव एक दिन के लिए टाल देना पड़ा. गिरफ्तार स्त्रियों को सख्त सजा सुनाई गई. मिसाल के तौर पर घर–घर जा कर खादी बेचने के जुर्म में इंदुमति गोयनका को नौ महीने की कैद की सजा तथा होसपेठ में निषेधाज्ञा का उल्लंघन करने के लिए जयलक्ष्मी केशवराव को सात महीने की जेल की सजा सुनाई गई.''[136]

कहना न होगा कि स्त्रियों ने कई स्तरों पर अपनी लड़ाई जारी रखी. उनके राह में अनगिनत मुश्किलें आई, किन्तु वे हार न मानी. अक्टूबर 1935 ई. में 'विश्वमित्र' में प्रकाशित लेख से ज्ञात होता है कि अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध में हर उम्र की स्त्रियों ने सहयोग किया. जेल जाने वाली, ''महिलाओं में वृद्ध , युवती, सुकुमार लड़कियां तक शामिल थीं या यों कहिए कि 70–80 वष्र की वृद्ध स्त्रियां जो आसानी स`चल फिर भी नहीं सकती थीं तथा अल्पवयस्क बालिकाएं इसमें हिस्सा बंटा रही थीं. जेल में भी इन बालिकाओं की कमी न थी. इस मजबूत चहारदीवारी के अंदर अनेक स्त्रियां ऐसी थीं जो गर्भवती थीं. जो स्त्रियां अपने नन्हें–नन्हें बच्चों को लेकर जेल गई थीं.''[137] स्त्रियों के संघर्ष का इतिहास बहुत बड़ा है. उनका संघष्र घर से लेकर बाहर तक था. जिनके पति, पुत्र आदि जेल चले जाते उन्हें अपने घर–बार सभांलने में तमाम मुश्किलों का सामना करना पड़ता था. जब वे जेल जाती तो जेल की कोठरियों में उनके कष्टों की कोई सीमा न थी. इन सबके बावजूद वे हिम्मत के साथ अड़ी रही.

2.3.2 दलित

अंग्रेजी सरकार से देश को आजादी दिलाने में दलित जातियों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है. ये दलित जातियां दोहरी लड़ाई लड़ रही थी. एक ओर अंग्रेजों से तो दूसरी ओर अपने ही देश की ब्राह्मणवादी व्यवस्था से. समाज में इनकी स्थिति अत्यंत दयनीय थी. ''यों तो सभी जगह दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार होता था, किंतु पूना के पेशवा राज्य में दलितों की बड़ी दुर्गति थी. दलितों को गले में हांड़ी टांग कर चलना पड़ता था जिससे वे उसी में थूकें, जमीन पर नहीं. पीछे झाड़ू लटका कर चलना पड़ता था जिससे उनके पैरों का निशान मिटता जाए, नहीं तो किसी ब्राह्मण के पैर उस पर पड़ने पर उसके अपवित्र होने का खतरा था. दलित को गले में काला धागा बांध कर चलना होता था. जिससे देर से देखकर उसे पहचान कर दूर हट जाया जा सके. प्रदेश के सभी मंदिरों में इनका प्रवेश वर्जित था. कुएं से पानी लेना तो दूर तालाब का पानी भी, जिसे प्शु पी सकते थे, उसे दलित नहीं पी सकता था. दलितों के बाल हिंदू नाई नहीं काटता था.''[138]

प्रतिबंधित हिन्दी रचनाओं में समाज में हीन समझे जाने वाले लागों की झलक मिलती है. ये रचनाएं ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर ली जाती. बलभद्र प्रसाद गुप्त 'विशारद' की कविता 'विषम व्यौहार' में इस दुर्दशा की झलक दिखाई देती है–

''पशु तुल्य हे जगदीश ! हम हैं विश्व में देखे गए।
कृमि, कीट से भी तुच्छ जग में हाय ! हम लेखे गए।।
हमने किया संसार का उपकार भरपूर है।
अवलोक लो, अपकार हमसे इस समय भी दूर है।।''[139]

सदियों से चली आ रही रुढ़िग्रस्त व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह शुरु हो गए थे. देश की पराधीनता से लड़ने के साथ–साथ दलितों को अपनी दुर्व्यवस्था का भी बोध हुआ. कहना न होगा कि समाज के वंचित समुदाय में जागरुकता लाने के प्रयास पहले भी हुए थे ; किन्तु औपनिवेशिक भारत में एक नई मुहिम चल पड़ी. ''मध्यकाल में महाराष्ट्र में भी कई संतों ने जिनमें ज्ञानदेव, नाम देव, चोखा मेला, संत तुकाराम आदि प्रमुख थे, भेदभाव का विरोध किया. किन्तु हिन्दू समाज पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा. उन्नीसवीं सदी में महामना फुले ने क्रांतिकारी कदम उठाए. उन्होंने हिंदू धर्म ग्रंथों से भेदभाव भरी बातों को मानने से इनकार कर दिया. दलित और स्त्रियों को जिन पर अभी तक शिक्षा प्राप्त करने की रुकावट थी, उनके लिए शिक्षा संस्थाएं खोलीं. बस इस कार्य में उनकी पत्नी सावित्रीबाई ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. इसके लिए इनको कठिनाइयां उठानी पड़ीं, किन्तु वे

अपने व्रत से डिगे नहीं. बड़ौदा राज्य के राजा सयाजी राव गायकवाड़ ने दलितों के कुछ स्कूल खोले और सुविधाएं दीं.''[140]

समाज में उपेक्षित मानी जाने वाली जातियाँ देश की आजादी के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने में पीछे न रही. ''1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम हो या गांधी के नेतृत्व में किया गया स्वतंत्रता आंदोलन हो, में दलित समाज की महिलाओं का भी अच्छा खासा योगदान रहा है.''[141]

कम्पनी सरकार की नीतियों के खिलाफ इन्होंने मोर्चा खोल दिया था. ''बिरसा मुंडा के क्रांतिकारी आह्वान और अंग्रेजों से उनके संघर्ष में आदिवासियों तथा दलित महिलाओं ने अंग्रेजी सेना से डटकर मुकाबला किया था. इतिहास में ऐसे बहुत सारे विवरण मिलते हैं, जबकि दलित और शोषित समाज की महिलाओं ने अपने–अपने गांव, कस्बों, शहरों में ब्रिटिश सेना से जमकर मोर्चा लिया.''[142] औपनिवेशिक सत्ता से मोर्चा लेने में झलकारी बाई, लाजो, महावीरी देवी, जगरानी पासी, नन्हींबाई, अवंतीबाई, रानी गुडियालो, वीणादास ओर ऊदा देवी का नाम विशेष उल्लेखनीय है. ये नाम लम्बे अरसे से इतिहास में दबे रहे. ''पिछले पचास वर्षों में बौद्धिक जगत के मानस में कई नए दृष्टिकोण भी शामिल हुए हैं जिनमें दलितों, स्त्रियों, वंचितों , शोषितों और हाशियाकृत लोगों और उनकी सामाजिक सहभागिता को सम्मान के साथ देखने की प्रवृत्ति बढ़ी है. लिहाजा गंगू मेहतर, झलकारी बाई तथा उनके पति पूरणपोरी, बिजली पासी, अवंतीबाई लोदी, मातादीन भंगी, महावीरी देवी, लोचन मल्लाह, ऊदा देवी और उनके पति मक्का पासी, पन्ना दाय, चेतराम जाटव, बल्लू मेहतर, बाँके चमार, गंगू मेहतर, वीरा पासी आदि नाम सामने आए हैं, जो 50 वर्ष पूर्व हुए 1857 के विमर्श में सुनाई नहीं दिए थे. इस बार हमारे इतिहास के उस गौरवशाली परिघटना के अनेक विस्मृत नायक नायिकाएं मंच पर उपस्थित हैं.''[143] प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में दलित स्त्रियों की वीरता विशेष उल्लेखनीय है. रामगढ़ की रानी अवंतीबाई की ललकार हर ओर गूँज उठी थी. अवंती बाई का कानि है–''देश की रक्षा करने के लिए या तो कमर कसो या फिर चूड़ियाँ पहन कर घर में बैठ जाओ. तुम्हें शर्म और ईमान की सौगंध है जो इस कागज की पुड़िया का पता बैरी को दो.''[144]

कहना न होगा कि समाज के वंचित, शोषित वर्ग के भीतर भी चेतना का प्रवाह लहरा रहा था. दरअसल, दलित समाज को दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ रही थी, एक ब्रिटिश सरकार के खिलाफ, तो दूसरी ओर अपने देश की रुढ़िवादी व्यवस्था के खिलाफ. इस व्यवस्था में वे छुआछूत के शिकार थे.. धर्म की बागडोर सँभालने वालों ने उनका जीवन पशु से भी बदतर बना रखा था. समाज के कोई अधिकार उन्हें प्राप्त नहीं थे. प्रतिबंधित रचनाओं में इस व्यवस्था की मुखालफत की गई. जब्त कहानी 'नेता का स्थान' में पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र कहते हैं, ''मुट्ठी भर धर्म के ठेकेदारों ने,

पंडे–पुराहितों और ईश्वर के नाम पर संसार को ठगने वालाों ने– प्रथा, पुराण और धर्म के नाम पर और भी भयानक उत्पात मचा रखा था. उनमें से कोई भी अपने को नहीं पहचानता था. पर ईश्वर–दर्शक होने का दावा सबका था. ईश्वर के निवास स्थानों (देवालयों, मठों) को उन्होंने होटल ओर वेश्यालय बना रखा था, त्यागियों और सन्यासियों की विभूति देखकर गृहसि चकरा जाते थे. विरागियों का वासनानुराग सांसारियों को दहला देता था. सच्चे साधु, सच्चे पंडे और सच्चे धर्माध्यक्षों का कहीं पता न था. चारों ओर धूर्तों, कामुकों , आततायियों और दुष्टों का बोलबाला था. ये पुराहित पुजारी भी अत्याचारी सरकार से मिले हुए थे. कारण ये सब भी धनी थे. ये सरकार की मदद करते थे. राजा और राजा के प्रतिनिधियों को ईश्वर का अवतार या अंश बता कर. सरकार इनकी मदद करती थी–प्रथा की, पुराण की दोहाई देकर. धर्म की आड़ में उस धर्माध्यक्षों ने न जाने कितने घर तबाह कर डाले, न जाने कितनी कुमारियों का कौमार्य नष्ट कर डाला, न जाने कितनी सतियों का सतीत्व लूट लिया, न जाने कितने गरीबों का गला रेत डाला.''[145]

दलितों के साथ अन्याय और अत्याचार नई बात नहीं थी. यह सदियों से चला आ रहा था. इस सम्बंध में रजनी पाम दत्त लिखते हैं, ''इनमें कोई संदेह नहीं कि हिंदुस्तान की जनता को छोटे–बड़े और ऊंच–नीच का भेदभाव, जो पुराने जमाने से चला आ रहा है, देर करना है. हर देश को अपने अतीत काल से इस तरह की कुछ न कुछ विरासत मिलती ही है.''[146] जुल्मों के साये में जीते रहने पर भी दलितों ने अभूतपूर्व साहस का परिचय दिया. उन्होंने अंग्रेजों को कड़ी टक्कर दी. 1930 में कानपुर से प्रकाशित सोहनलाल द्विवेदी की कविता 'खादी–गीत' अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त घोषित की गई थी. इस कविता में उन्होंने कहा कि क्षादी आजादी की ओर अग्रसर होने का एक और माध्यम है–

''खादी में कितने ही दलितों के, दग्ध हृदय की दाह छिपी।
कितनों की कसक कराह छिपी, कितनों की आहत आह छिपी।
खादी में कितने ही नंगों–भिखमंगों की है आस छिपी।।
कितनों की इसमें भूख छिपी, कितनों की इसमें प्यास छिपी।।''[147]

ब्रिटिश सरकार ने हिंदुस्तान में लोगों के बीच फूट डालने का काम कर रही थी. यह उनके हित में था. साम्राज्यवादी सरकार की कामयाबी लोगों की आपसी फूट पर निर्भर होती है. रजनी पाम दत्त लिखते हैं, ''साम्राज्यवाद अपनी नीति से पराधीन जनता में भेदभाव बनाए रखता है ओर उन्हें बढ़ाता है. दुनियां के सामने वह ढोल पीटता है कि भेदभाव के कारण यह जनता हुकूमत की बागडोर संभालने के अयोग्य है, परंतु वास्तव में वह अपने शासन से उन भेदभावों को बढ़ाता रहता है. अपनी

इस नीति से वह स्वयं दोषी ठहरता है.''[148] अंग्रेजों का उद्देश्य यहां धन की लूट करना था. अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने तमाम रणनीतियां तैयार की. यहां की अछूत मानी जाने वाली जनता को उनकी सरकार से कोई फायदा न हुआ. वे रचनाएं जो दलितों की दयनीय दशा उजागर करती थी , उन्हें जब्त कर दिया जाता. ''छुआछूत का भेद मिटाने में सबसे आगे कदम अंग्रेजी सरकार ने नहीं, राष्ट्रीय आंदोलन के प्रगतिशील लोगों ने उठाया है. बहुतों कां वह घटना याद आएगी जब दक्षिण भारत के बहुत से मंदिर, जहां अछूतों को घुसने न दिया जाता था, गांधी जी के आंदोलन करने से उनके लिए खोल दिए गए थे. लेकिन उस समय सरकार ने यह कह कर पुलिस भेजी थी कि अछूतों के मंदिर प्रवेश से लोगों की धार्मिक भावना को ठेस पहुंचेगी और उस धार्मिक भाव की रक्षा करना सरकार का परम कर्तव्य है.''[149]

स्वयं डा. अम्बेडकर ने कहा था, ''अंग्रेजों के आने के पहले तुम ऐसी गिरी हुई हालत में इसलिए थे कि तुम अछूत थे. क्या अंग्रेजी सरकार ने तुम्हारे अछूतपन को दूर करने के लिए कुछ भी किया है ? अंग्रेजों के आने के पहले तुम कुएं से पानी न भर सकते थे. क्या अंग्रेजों ने तुम्हें कुएं से पानी भरने का हक़ दे दिया है ? अंग्रेजों के आने के पहले तुम मंदिरों में न जा सकते थे. क्या अब तुम मंदिरों में जा सकते हो ? अंग्रेजों के आने के पहले तुम पुलिस में भर्ती हो सकते थे. क्या अंग्रेज सरकार तुम्हें पुलिस में भर्ती कर लेती है ? अंग्रेजों के आने के पहले तुम फ़ौज में भर्ती न हो सकते थे. क्या अब हो सकते हो ? सज्जनों, आप इसमें से किसी भी सवाल के जवाब में 'हां' नहीं कह सकते. जिन्होंने मुल्क पर इतने दिन तक राज किया है, उन्होंने कुछ तो भलाई की ही होगी फिर भी तुम्हारी हालत में कोई बुनियादी सुधार नहीं हुआ. एक चीनी दर्ज़ी को नाप के लिए एक पुराना कोट दिया गया था. उसने हू–ब–हू वैसा ही नया कोट भी बना दिया जिसके जोड़–तोड़, पैबंद आदि सब ज्यों के त्यों थे. इस तरह अंग्रेजों ने भी हिंदुस्तान को जैसा पाया था, उसे वैसा ही बना रखा है. तुम्हारे घाव अब भी भरे नहीं हैं. जैसे पहले थे वैसे ही बने हुए हैं.''[150]

प्रह्लाद पाण्डेय 'शशि' की रचना 'विद्रोहिणी' सरकार द्वारा प्रतिबंधित की गई थी. इस कविता–संग्रह की 'गांधी की आंधी' शीर्षक कविता में वंचितों की स्थिति को सामने रखा गया है–

''शूद्र ! अछूत !! नीच !!! संबोधन,
से अपमानित होते देखा।
भीषण भल अरे सदियों की,
चिर विमुक्ति बरसाती आई।।
गांधी की जब आंधी आई।।''[151]

शूद्रों की इस स्थिति का जिम्मेदार वर्णान्ध समाज था. डा. अम्बेडकर इन वंचितों को अपने अधिकार हासिल करने के लिए ललकारते हैं, ''तुम्हारे सिवा तुम्हारा दुःख और कोई दूर नहीं कर सकता ओर तुम अपना दुःख तब तक दूर नहीं कर सकते जब तक तुम्हारे हाथ में राजनीतिक शक्ति नहीं आती. जब तक यह अंग्रेज सरकार ऐसी ही रहती है जैसी ि कवह आज है, तब तक तुम्हें राजनीतिक शक्ति नहीं मिल सकती. स्वराज्य से जब नया विधान बनेगा तभी तुम्हें राजनीतिक शक्ति मिलेगी. उसके बिना तुम्हारा उद्धार होना असंभव है. अछूतों का उद्धार और हित समूची जनता की आजादी की लड़ाई के साथ अनिवार्य रुप से जुड़ा हुआ है.''[152]

कहना न होगा ि कइस चेतना की शुरुआत पहले ही हो चुकी थी. देश की आजादी और अछूतों की स्थिति में सुधार लाने के प्रयास शुरु हो गए थे. दलितो ने साम्राज्यवाद के विरुद्ध बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया था. उनके शौर्य व साहस की गाथाएं किसी भी सूरत में नजरअंदाज नहीं की जा सकती. माता प्रसाद लिखते हैं, ''सन् 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम में जाति व्यवस्था से पीड़ित इस समाज ने भी प्रत्यक्ष ओर अप्रत्यक्ष रुप से इसमें योगदान दिया जिसका प्रमाण झलकारी बाई, ऊदा देवी पासी, बल्लू मेहतर, चेतराम जाटव , महावीरी देवी भंगी आदि दलितों के बलिदान के बाद आगे संघर्ष में चौरी–चौरा कांड में शहीद दलितों के नाम उल्लेखनीय हैं.''[153]

वर्ण व्यवस्था की शोषणकारी नीतियों के खिलाफ आवाज उठने लगी थी. यह वर्ग एक ऐसे समाज के लिए लड़ रहा था जहां मनुष्य का सममान हो. देश में समाज सुधार के नाम पर जो संगठन चल रहे थे ; उनके भीतर भी अंतर्विरोध मौजूद थे. एक वाकये से यह स्पष्ट हो जाता है, ''आर्य–समाजियों में शुरु में स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' जो फर्रुखाबाद में दलित के घर 1879 ई. में पैदा हुए थे, सम्मिलित हो गए. कुछ दिनों के बाद उन्हें अनुभव हुआ कि आर्य समाज में भी दलितों के साथ भेदभाव होता है इसलिए उन्होंने आर्य–समाज से किनारा कर लिया ओर अध्ययन के आधार पर दलितों को 'भारत का आदि हिंदू' बताया. उन्होंने ग़ज़ल लिखीं, संत रैदास ओर शंबूक पर नाटक लिखे ओर संत रैदास की जयंतियां मनाना शुरु किया. इन जयंतियों के बाद रात में नाटक खेले जाते थे. देश के अनेक भागों में अनेक सभाएं आयोजित होतीं. उनमें दलितों को आदि हिंदू सिद्ध कर, उनमें जागरण किया जाता, जो उनके स्वाभिमान में सहायक होते थे.''[154]

दलितों, वंचितों को उनका अधिकार दिलाने हेतु प्रयत्न शुरु हो गए थे. ''दलितों की विभिन्न जातियों ने अपनी–अपनी सभाएं बनानी शुरु कीं. चमार जाति के लोगों ने चमार महासभा, रविदास महासभा, पश्चिम उत्तर प्रदेश के जाटवों ने जाटव महासभा, लखनऊ के आस पास पासियों ने पासी महासभा, धोबियों ने धोबी महासभा, वाल्मीकियों ने वाल्मीकि महासभाएं बनाईं. ये सभाएं

अपनी–अपनी जातियों में बुरे रीति–रिवाज, बाल–ब्याह, शराब छोड़ने, लड़कों को पढ़ाने और स्वच्छता से रहने की सलाह देती थीं.''[155]

दलितों का आंदोलन देश व्यापी था. पूरे देश में हर ओर संगठन , सभाएं बनने लगी थीं. कर्नाटक में 'साउथ इंडियन बुद्धिस्ट एसोसिएशन' की स्थापना की गई. ''इसकी स्थापना पं. अयोध्याजी दास ने सन् 1890 ई. में मद्रास में की थी. मद्रास में इसकी 9 शाखाएं थी और उसकी 3 शाखाएं मैसूर राज्य में थीं. इसका उद्देश्य दक्षिणी राज्यों में बौद्ध धर्म का पुनः जागरण करना था.''[156] तमिलनाडु में भी 'द्रविणियन कणगम' के माध्यम से इन जातियों को संगठित करने का प्रयास किया गया. ''इसकी स्थापना जान रत्नम् ने 1892 ई. में मद्रास में की थी. इसका उद्देश्य सभी दलितों को एकजुट करना था.''[157]

इसी प्रकार पूरे भारत में अनेक शाखाएं खुलीं, जिनका उद्देश्य वंचित तबके को अधिकार दिलाना था. 1930 में अयोधी दास द्वारा 'साउथ इंडियन शाक्य बुद्धिस्ट (तमिलनाडु), 1903 ई. में किशन फागू बानसोडे द्वारा सन्मार्ग बोधक निराश्रित समाज (महाराष्ट्र), 1904 ई. में शंकर प्रसादिक सोमवंशीय हितचिंतक मित्र समाज (शिवरामजनक काम्बले, महाराष्ट्र) स्थापित किए गए. ''1910 ई. में दलितों के उत्थान के लिए मद्रास में एक स्कूल की स्थापना की. इन्होंने अपना एक अलग मंदिर बनवाया जिसे नंदनार मंदिर कहते थे. इन्होंने सन् 1917 ई. में सत्याग्रह ओमेखलाम टैंक में पानी पीने के अधिकार पाने के लिए किया जिसमें वह गिरफ्तार हुए और सजा मिली. यह बाबा साहेब के प्रबल समर्थक थे. सन् 1932 ई. में नागपुर के कामठी में सम्पन्न हुए शैड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के अधिवेशन में इन्होंने भाग लिया.''[158]

देश में अधिकारों की लड़ाई शुरु हो गई थी. झूठे धर्म, आडम्बर के खिलाफ मुहिम छिड़ गई थी. प्रतिबंधित कविताओं में इसी गूँज सुनाई देती है–

''ओ हिंदू कहलाने वाले,
निज विनाश की गहरी खाई
अपने हाथों निर्मित करता,
उर में महा क्रूरता छाई।।
तेरी निष्ठुरता से काँपे,
अतल–वितल पाताल रसातल
धँसक चली रे धरा महीसुर,

गुरु हड़कंप मचाती आई।।
गांधी की जब आँधी आई।।''[159]

बंगाल में 'आल बंगाल नमोशूद्र एसोसिएशन' की ''स्थापना जन नायक मुकुंद बिहारी मालिक ने कलकत्ता में 1912 में की थी. इसके अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने 1929 में इंडियन स्टेचुयेटरी कमीशन को एक मैमोरैंडम दिया था जिसमें उन्होंने प्रस्ताव किया था कि (1) सभी दलितों को जो रुपये 2 चौकीदारी कर या रुपये 1 नगरपालिका टैक्स चुकाते हों उन्हें चुनाव के लिए योग्य माना जाए, (2) विधानसभा में इस वर्ग के लिए आरक्षण 17 % हो. उन्होंने गोलमेज सम्मेलन में ब्रिटिश प्रधानमंत्री द्वारा दिये गये कम्युनल एवार्ड के विरुद्ध किए गए राजा मुंजे समझौते की भर्त्सना की थी और बाबा साहेब आंबेडकर का मजबूती के साथ खुल कर समर्थन किया था.''[160]

दलितों की बस्तियां गांव के किनारे सबसे अलग रहा करती थी. मुख्यधारा में आने की इजाजत उन्हें न थी. प्रतिबंधित कविता 'गीत' की पंक्तियां उनके जीवन को रेखांकित करती हैं–

''धीरे–धीरे ढल रही रात।
हरिजन की टूटी कुटीर,
जो कि ग्राम्य के पूर्व तीर।''[161]

दलितों को समाज के अधिकार दिलाने की लड़ाई शुरु हो गई थी. ''उन्नीसवीं सदी में हरिश्चन्द्र ठाकुर की अध्यक्षता में मतुआ आंदोलन शुरु हुआ. इस धर्म की स्थापना नमोशूद्र के एक विशाल सम्मेलन 1872 ई. में की गई. इसका उद्देश्य हिन्दू मनुवादी संस्कारों का परित्याग की, अंधविश्वास से बचे रहने की सलाह दी थी. ब्राह्मणी समाज व्यवस्था के विरुद्ध यह आंदोलन शुरु हुआ. इसमें बताया गया कि नमोशूद्र वर्ग वर्ण व्यवस्था को नहीं मानता. हिंदुओं के मंदिर प्रवेश का बहिष्कार हुआ. उन्होंने अपने अलग मंदिर बनाए. उन्होंने निकृष्ट काम करने से इंकार कर दिया. हरिश्चन्द्र ठाकुर की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र चांद गुरु ठाकुर की अध्यक्षता में में 1881 ई. में खुलना जिले के दत्तोअंगों गांव में एक दूसरा विशाल दलित सम्मेलन हुआ जिसमें सरकार से मांग की गई कि सभी दलितों को शिक्षा देने के लिए स्कूल खोले जाएं.''[162]

आंध्र प्रदेश में भी बहिष्कृत लोगों ने अपनी लड़ाई लड़नी शुरु कर दी थी. इस क्रम में 'आदि आंध्र महाजन सभा' की स्थापना की गई. इसे ''सन् 1917 ई. में भाग्य रेड्डी वर्मा ने विजयवाड़ा ने स्थापित किया. उसने शैड्यूल्ड कास्ट की जातियों के लिए निम्न प्रस्ताव पास किए गए–

(अ) यहां के अछूतों को आदि आंध्र कहा जाए.

(ब) सरकार से अनुरोध किया गया कि आदि आंध्र को प्रतिनिधि संस्थाओं लेजिस्लेटिव कौंसिल पंचायतों ब्लाकों में नामिनेट किया जाए.

(स) आदि आंध्र छात्रों को पानी पीने के लिए अलग कुएं बनवाए जाएं.''[163]

1917 ई. में महाराष्ट्र में भी 'डिप्रैस्ड इंडिया एसोसिएशन' बनाई गई. ''इसकी स्थापना पूना में 1917 में गणेश अक्का जी गवई ने की थी परंतु यह मध्य प्रांत और विरार के विदर्भ क्षेत्र में 1922 में स्थापित हुआ. इस संगठन के निम्न मुख्य उद्देश्य थे–(अ) दलित वर्गों में शिक्षा का प्रसार करना, (आ) उनके मनोबल और आर्थिक सम्पन्नता बढ़ाने के प्रयास करना, (इ) समाज सुधार करना, (ई) औद्यौगिक एवं कृषि मजदूर के हितों की रक्षा करना, (उ) दलित वर्गों के राजनीतिक हितों की रक्षा करना.''[164]

प्रतिबंधित कविता 'देख सको तो मानव देखो' में वंचितों पर किए जाने वाले अत्याचारों का वर्णन किया गया है. धार्मिक कहलाने वाले लोगों ने शोषण करने के लिए नए–नए तरीके बना रखे थे. यह कविता उस धर्म को पोल खोलती है–

''मंदिरों के घंटों की ध्वनि में,
धर्म विलुप्त होता देखो
अधिकारों की दृढ़ ओटों में
चोट भरे हथकण्डे देखो !
निरपराध नर पर पशुओं से,
आज बरसते डंडे देखो।।''[165]

इसी क्रूर दानवता के खिलाफ समाज से बहिष्कृत जातियां एकजुट होने लगी थीं. तमाम विरोधों के बावजूद उनका आंदोलन देश व्यापी होता जा रहा था. इस सिलसिले में उत्तर प्रदेश के बाबू रामचरण जी का योगदान महत्वपूर्ण है. ''1920 में उन्होंने अखिल भारतीय निषाद महासभा की स्थापना की और उसके जनरल सेक्रेटरी रहे. 1920 में उन्होंने 'निषाद समाचार' नामक पत्र निकाला. 1925 में आदि हिंदू आंदोलन में शामिल हुए ओर 1927 में आदि हिंदू सभा के अध्यक्ष बने. वे दलितों को भारत का मूल निवासी मानते हुए उनको अपनी मातृभूमि में सभी अधिकारों का हकदार मानते थे.''[166]

इसी प्रकार कर्नाटक में 'कर्नाटक बहिष्कृत संघ' बनाई गई. ''इसकी स्थापना स्वामी देवराई रामजी इंगले ने सन् 1922 ई. में की थी, जो वेलगांव में एक स्कूल बोर्ड के मेम्बर थे. यह संस्था सामाजिक उत्थान और सामाजिक न्याय के लिए सभी दलितों तथा चमार, मांग, महार, ढोर आदि के लिए संघर्ष करती थी.''[167]

दलितों को अधिकार दिलाने के लिए एक ओर ये संगठन सक्रिय थे, तो दूसरी ओर लेखकों का बड़ा वर्ग भी लड़ाई लड़ रहा था. ब्रिटिश राज में जब्त की गई कविता 'कवि के प्रति' में इसकी अभिव्यक्ति की गई–

''पद–दलित, शोषित मनुज दल,
जे बना जर्जर भिखारी
फेंक भिक्षा पात्र दे निज,
मुक्ति लाए क्रांतिकारी
ये तड़ातड़ टूट जाएं,
दासता के जटिल बंधन
कवि! सुनाओ तान ऐसी,
आज हो स्वच्छंद जीवन।।''[168]

उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद के स्वामी अछूतानंद भी इस दिशा में सक्रिय थे. ''आदि हिन्द आंदोलन क`जनक एवं दलितों के प्रेरणा स्रोत स्वामी अछूतानंद हरिहर का जन्म ऐसे समय हुआ जिस समय दलित समाज और देश की बड़ी दुर्गति थी. हिन्दू समाज में जाति–पांति, ऊंच–नीच, छोटे–बड़े की भावना का बड़ा जोर था. धर्मान्धता का बोलबाला था. देश पराधीन था, वहां के लोगों का अधःपतन हो चुका था. ऐसे समय में स्वामी अछूतानंद ने अपने क्रांतिकारी विचारों से दलितों का मार्गदर्शन किया. अछूतों के अंदर से हीन भावना निकाल कर उन्हें सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक संघर्ष के लिए प्रेरित किया.''[169] अछूतों के उद्धार के लिए स्वामी अछूतानंद आजीवन संघर्ष करते रहे. ''1923 ई. में स्वामी ने आल इण्डिया आदि हिन्दू महासभा की स्थापना की. कई कान्फ्रेंस हुई. इसमें सभी अछूतों को संगठित होकर जाति–पांति का विरोध, धर्म भेद की बुराई की जाती थी. स्वामी जी हिन्दू दासता की जंजीरों से मुक्त होने का संदेश देते थे 1925 ई. में बेनझावर कानपुर को उन्होंने स्थाई निवास बनाया. स्वामी जी के लिए गिरधारी भगत ने जगह दी. यहीं से उन्होंने आदि हिन्दू अखबार निकाला.''[170] इसी प्रकार पंजाब में भी 'आद धर्म मंडल' बनाया गया. ''इसकी स्थापना मंगूराम ने सन् 1926 ई. में की. इसका पहला अधिवेशन मंगूराम के गांव मूंगोवाल जिला होशियारपुर में हुआ.

इसका मुख्यालय जालंधर था. इसमें बताया जाता था सभी अछूत–चमार, चूड़ा, सांसी, भंगरेसी और भीमी आदि सभी भारत के मूल निवासी हैं. इसलिए उनको एक साथ संगठित होना चाहिए, इनका धर्म आदि धर्म है.''[171]

उत्तर प्रदेश में भी दलितों के आंदोलन का बिगुल बज रहा था. ''1928 ई. में स्वामी अछूतानंद की भेंट डॉ. अंबेडकर से बम्बई में आदि हिन्दू सम्मेलन में हुई. डॉ. अम्बेडकर स्वामी जी को अपने घर ले गए. वहां पर दोनों ने मिल कर दलितों के हक के लिए संघर्ष करने को निश्चय किया. सन् 1932 ई. में जब इग्लैण्ड में गोलमेज कांफ्रेंस चल रही थी तब स्वामी अछूतानंद ने भारत से हजारों की संख्या में तार, रजिस्टर्ड लेटर वहां भिजवाए थे जिनमें लिखा होता था भारत के अछूतों के एकमात्र नेता डॉ. अम्बेडकर हैं, गांधी अथवा अन्य कोई नहीं. स्वामी अछूतानंद ने उस समय के सहयोगी कनौजी लाल का नाम सम्मान से लिया जा सकता है जो स्वामी के बड़े निकट के सहयोगी थे. स्वामी जी के न रहने पर भी उनकी मशाल को अपने जीवन पर्यन्त जलाए रखा.''[172] जब उत्तर प्रदेश में जागरण की मशाल जल रही थी तब बंगाल भी पीछे न था. यहां 'आल इंडिया डिप्रैस्ड क्लासेस लीग' बनाई गई, जिसने दलितों के लिए सकारात्मक कार्य किया. ''1928 ई. में बाबू जगजीवन राम ने कलकत्ता में रविदास महासभा स्थापित की जिसमें सभी दलित (अछूत) वर्ग एक संगठन में आ जाएं और उनमें समाज–सुधार किया जा सके.''[173] इस दिशा में उत्तर प्रदेश के बाबू ज्वालाप्रसाद अहिरवार का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है. ''1935 में उनकी नियुक्ति संयुक्त प्रांत सरकार के डिप्रेस्ड क्लासेस एजुकेशन सुपरवाइजर के पद पर हुई. यहां उन्होंने अछूतों में साक्षरता प्रसार एवं स्व–सम्मान की भावना जागृत की.''[174] दलित जागृति के उद्देश्य से महाराष्ट्र में 'इण्डिपेंडेन्ट लेबर पार्टी' भी काफी सक्रिय थी. ''सन् 1936 ई. के पूर्व दलितों का कोई राजनीति दल नहीं था. दलित अपनी समस्याओं को प्रस्ताव के रुप में सरकार के पास भेज देते थे. सन् 1937 ई. के पहले चुनाव को देखते हुए डॉ. अंबेडकर ने 15 अगस्त 1936 ई. को इंडिपेंडेन्ट लेबर पार्टी नामक एक राजनीतिक दल का गठन किया. इसमें दलित जाति के 15 सदस्य थे किन्तु अन्य वर्गों के लोग पार्टी में सम्मिलित हो सकते थे. उस समय केवल महार जाति के लोग ही इसमें सम्मिलित हुए, हिन्दुओं के प्रगतिशील लोग भी सम्मिलित हुए. ''[175]

कहना न होगा कि इस जागरण के फलस्वरुप लागों का ध्यान इस वर्ग की ओर हुआ. लोग इनके प्रति उपेक्षापूर्ण नीतियों का विरोध करने लगे थे. उन्हें उनके अधिकार दिलाने का भरसक प्रयत्न हो रहा था. प्रतिबंधित कविताओं में इसकी भली–भांति अभिव्यक्ति की गई. 'अछूत' शीर्षक कविता में इन्हें समाज का महत्वपूर्ण अंग बताया गया–

''कोई कहता है हैं अछूत नहीं छूने योग्य,
शशि–अंक के कलंक–कालिमा–किनारे हैं।
कोई कहता है 'अपने ही पूर्व पापों–द्वारा;
'रसिक' रमेश से भी गए ये बिसारे हैं'।।
कोई कहता है 'तन करते अपावन ये;
पावस के बड़े गन्दे जल के पनारे हैं'।
किन्तु कहने में लज्जा लेश भी न होती हमें,
'हम अंत्यजों के और अंत्यज हमारे हैं'।।''[176]

दलितों के अधिकारों की लड़ाई बड़े जोर–शोर से आरम्भ हो चुकी थी. रुढ़िवादी लोगों व ब्रिटिश सरकार के विरोध के बावजूद लोग आगे बढ़ते गए. इनका स्वप्न एक गैर बराबरी वाला मुल्क तैयार करना था, जिसमें उन्होंने अपना बलिदान दिया.

[1] गदर : ऋषभचरण जैन, मूल प्रति, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 28
[2] वही, पृ 86
[3] वही, पृ 87
[4] वही, पृ 87
[5] प्रतिबंधित न्दी साहित्य : भाग 1 सं. रुस्तम राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 15
[6] वही, पृ 16
[7] वही, पृ 35
[8] वही, पृ. 42–43
[9] प्रतिबंधित न्दी साहित्य : भाग 1 सं. रुस्तम राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 113
[10] वही, पृ 304
[11] आगरा सत्याग्रह संग्राम : सैनिक कार्यालय, मूल प्रति : राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली , पृ 1
[12] आगरा सत्याग्रह संग्राम : सैनिक कार्यालय, मूल प्रति : राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली , पृ 1
[13] सितम की इन्तिहा क्या है : सत्येन्द्र कुमार तनेजा , राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली 2010 पृ. 242
[14] वही, पृ. 293
[15] वही, पृ 293
[16] सितम की इन्तिहा क्या है : सत्येन्द्र कुमार तनेजा , राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली 2010 पृ. 403
[17] वही, पृ 403
[18] आगरा सत्याग्रह संग्राम : सैनिक कार्यालय, मूल प्रति : राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली , पृ 9
[19] अंग्रेजों की इस तौर से करो बोलती बंद, मूल प्रति , राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
[20] आजादी का बिगुल , 13 गज़ल, मूल प्रति, राष्ट्रीय अभिलेखागार , नई दिलली
[21] सितम की इन्तिहा क्या है : सत्येन्द्र कुमार तनेजा , राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली 2010 पृ. 493
[22] सरस्वती, सहजानंद,, सं : अवधेश प्रधान –किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि, , ग्रंथ शिल्पी, 2012, पृ 60
[23] वही, पृ. 63
[24] आगरा सत्याग्रह संग्राम : सैनिक कार्यालय, मूल प्रति : राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली ,
[25] सरस्वती, सहजानंद,, सं : अवधेश प्रधान –किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि, , ग्रंथ शिल्पी, 2012, पृ 64
[26] वही, पृ. 65
[27] वही, पृ. 66
[28] वही, पृ. 66
[29] वही, पृ. 68
[30] वही, पृ. 68
[31] आगरा सत्याग्रह संग्राम : सैनिक कार्यालय, मूल प्रति : राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली ,
[32] एंगेल्स, फ्रेडरिख, अनु. : अरुण कुमार : जर्मनी में किसान युद्ध, प्रकाशन संस्थान, , सं : 2014, पृ. 50
[33] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य 1, राधाकृष्ण, सं : 1999 पृ. : 18
[34] दत्त , रजनी पाम, अनृ. : रामविलास शर्मा : आज का भारत, ग्रंथ शिल्पी,, सं : 2004 पृ. 54
[35] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य 1, राधाकृष्ण, सं : 1999 पृ. : 68
[36] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य 1, राधाकृष्ण, सं : 1999 पृ. : 100
[37] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य 1, राधाकृष्ण, सं : 1999 पृ. : 92
[38] मित्तल, सतीश चंद्र : भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास, हरियाण साहित्य अकादमी, पंचकूला , सं : 2005, पृ. 217
[39] वही, पृ. 218
[40] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य 1, राधाकृष्ण, सं : 1999 पृ. : 92
[41] गुप्ता, रुपा : राधामोहन गोकुल की अप्राप्य रचनाएं–2, स्वराज प्रकाशन, सं. 2013 पृ. 22
[42] वही, पृ. 138
[43] वही, पृ. 140
[44] मित्तल, सतीश चंद्र : भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास, हरियाण साहित्य अकादमी, पंचकूला , सं : 2005, पृ. 241
[45] वही, पृ 241

[46] वही, पृ. 241
[47] वही, पृ. 243
[48] वही, पृ 243
[49] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य 1, राधाकृष्ण, सं : 1999 पृ. : 178
[50] वही, पृ. 238
[51] सिंह, अयोध्या
[52] सिंह, अयोध्या : समाजवाद ,अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स प्रा. लि. सं : 2007, पृ. 37
[53] वही, पृ 37
[54] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य 1, राधाकृष्ण, सं : 1999 पृ. : 82
[55] सिंह, अयोध्या : समाजवाद ,अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स प्रा. लि. सं : 2007, पृ. 38
[56] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य 1, राधाकृष्ण, सं : 1999 पृ. : 115
[57] सेन, सुकोमल : भारत का मजदूर वर्ग : उद्‌भ और विकास , 1830–2010, ग्रंथ शिल्पी, सं : 2012, भूमिका
[58] वही, पृ. 40
[59] वही, पृ. 40
[60] वही, पृ 43
[61] वही, पृ. 47
[62] वही, पृ. 47
[63] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य 1, राधाकृष्ण, सं : 1999 पृ. : 121
[64] वही, पृ. 122
[65] दत्त , रजनी पाम, अनृ. : रामविलास शर्मा : आज का भारत, ग्रंथ शिल्पी,, सं : 2004 पृ. 352
[66] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य 1, राधाकृष्ण, सं : 1999 पृ. : 297
[67] वही, पृ. 298
[68] वही, पृ. 300
[69] दत्त , रजनी पाम, अन : रामविलास शर्मा : आज का भारत, ग्रंथ शिल्पी,, सं : 2004 पृ. 363
[70] वही, पृ. 363
[71] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य 1, राधाकृष्ण, सं : 1999 पृ. : 304
[72] दत्त , रजनी पाम, अनु . : रामविलास शर्मा : आज का भारत, ग्रंथ शिल्पी,, सं : 2004 पृ. 365
[73] वही, पृ. 366
[74] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य 1, राधाकृष्ण, सं : 1999 पृ. : 309
[75] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य 2 राधाकृष्ण, सं : 1999 पृ. : 155
[76] चंद्र, विपन : भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्‌भव और विकास, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, सं : 2008, पृ. 40
[77] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं–1999 पृ. 308–30
[78] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–2 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं–1999 पृ. 155
[79] चंद्र, विपन : भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्‌भव और विकास, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, सं 2008, पृ.
[80] देउस्कर, सखाराम गणेश, अनु. –बाबूराव विष्णु पराड़कर : देश की बात, नेशनल बुक ट्रस्ट, सं. 2010, पृ. 137
[81] दत्त , रजनी पाम, अनु . : रामविलास शर्मा : आज का भारत, ग्रंथ शिल्पी,, सं : 2004 पृ. 122
[82] दत्त , रजनी पाम, अनु . : रामविलास शर्मा : आज का भारत, ग्रंथ शिल्पी,, सं : 2004 पृ. 122
[83] मित्तल, डॉ. सतीश चन्द्र : भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, सं. – 2005, पृ. 252
[84] पटेल, मधुलिका बेन :प्रतिबंधित हिन्दी कविताएं ; स्वराज प्रकाशन, सं 2016 पृ. 127
[85] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं–1999 पृ. 117
[86] मित्तल, डॉ. सतीश चन्द्र : भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, सं. – 2005, पृ. 255
[87] पटेल, मधुलिका बेन :प्रतिबंधित हिन्दी कविताएं ; स्वराज प्रकाशन, सं 2016 पृ. 126
[88]
[89] दत्त , रजनी पाम, अनु . : रामविलास शर्मा : आज का भारत, ग्रंथ शिल्पी,, सं : 2004 पृ. 126
[90] गुप्ता, रुपा : राधामोहन गोकुल की अप्राप्य रचनाए–2 ; स्वराज प्रकाशन , सं 2013 पृ. 39

[91] पटेल, मधुलिका बेन :प्रतिबंधित हिन्दी कविताएं ; स्वराज प्रकाशन, सं 2016 पृ. 128
[92] दत्त , रजनी पाम, अनु . : रामविलास शर्मा : आज का भारत, ग्रंथ शिल्पी,, सं : 2004 पृ. 126
[93] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं–1999 पृ. 118
[94] देउस्कर, सखाराम गणेश, अनु. –बाबूराव विष्णु पराड़कर : देश की बात, नेशनल बुक ट्रस्ट, सं. 2010, पृ. 142–143
[95] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं–1999 पृ. 118
[96] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं–1999 पृ. 118
[97] गुप्ता, रुपा : राधामोहन गोकुल की अप्राप्य रचनाए–2 ; स्वराज प्रकाशन , सं 2013 पृ. 23
[98] दत्त , रजनी पाम, अनु . : रामविलास शर्मा : आज का भारत, ग्रंथ शिल्पी,, सं : 2004 पृ. 127
[99] पटेल, मधुलिका बेन :प्रतिबंधित हिन्दी कविताएं ; स्वराज प्रकाशन, सं 2016 पृ. 128
[100]भारत में स्त्री असमानता; एक विमर्श– डॉ. गोपा जोशी, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, सं. 2006, पृ. 52–53
[101] आगरा सत्याग्रह संग्राम, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 7
[102] 1857 : भारत का पहला मुक्ति संघर्ष–सं–देवेन्द्र चौबे, बद्रीनारायण, हितेन्द्र पटेल, प्रकाशन संस्थान, संस्करण 2014, पृ. 232
[103] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य : भाग 1, रुस्तम राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 , पृ. 35
[104] 1857 : भारत का पहला मुक्ति संघर्ष–सं–देवेन्द्र चौबे, बद्रीनारायण, हितेन्द्र पटेल, प्रकाशन संस्थान, संस्करण 2014, पृ.260
[105] 1857 : भारत का पहला मुक्ति संघर्ष–सं–देवेन्द्र चौबे, बद्रीनारायण, हितेन्द्र पटेल, प्रकाशन संस्थान, संस्करण 2014, पृ. 260
[106] 1857 : भारत का पहला मुक्ति संघर्ष–सं–देवेन्द्र चौबे, बद्रीनारायण, हितेन्द्र पटेल, प्रकाशन संस्थान, संस्करण 2014, पृ. 266
[107] 1857 : भारत का पहला मुक्ति संघर्ष–सं–देवेन्द्र चौबे, बद्रीनारायण, हितेन्द्र पटेल, प्रकाशन संस्थान, संस्करण 2014, पृ. 267
[108] 1857 : भारत का पहला मुक्ति संघर्ष–सं–देवेन्द्र चौबे, बद्रीनारायण, हितेन्द्र पटेल, प्रकाशन संस्थान, संस्करण 2014, पृ. 267
[109] 1857 : भारत का पहला मुक्ति संघर्ष–सं–देवेन्द्र चौबे, बद्रीनारायण, हितेन्द्र पटेल, प्रकाशन संस्थान, संस्करण 2014, पृ. 268
[110] 1857 : भारत का पहला मुक्ति संघर्ष–सं–देवेन्द्र चौबे, बद्रीनारायण, हितेन्द्र पटेल, प्रकाशन संस्थान, संस्करण 2014, पृ. 269
[111] 1857 : भारत का पहला मुक्ति संघर्ष–सं–देवेन्द्र चौबे, बद्रीनारायण, हितेन्द्र पटेल, प्रकाशन संस्थान, संस्करण 2014, पृ. 269
[112] हिन्दी प्रेस और स्त्री का वैकल्पिक क्षेत्र–संकलनःसंपादन–जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, सं 2006 पृ. 27
[113] हिन्दी प्रेस और स्त्री का वैकल्पिक क्षेत्र–संकलनःसंपादन–जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, सं 2006 पृ. 27
[114] आगरा सत्याग्रह संग्राम, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 32
[115] हिन्दी प्रेस और स्त्री का वैकल्पिक क्षेत्र–संकलनःसंपादन–जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, सं 2006 पृ. 28
[116] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य : भाग 1, रुस्तम राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 , पृ. 52
[117] हिन्दी प्रेस और स्त्री का वैकल्पिक क्षेत्र–संकलनःसंपादन–जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, सं 2006 पृ. 28
[118] आगरा सत्याग्रह संग्राम, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 32
[119] हिन्दी प्रेस और स्त्री का वैकल्पिक क्षेत्र–संकलनःसंपादन–जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, सं 2006 पृ. 30–31
[120] आगरा सत्याग्रह संग्राम, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 40
[121] नारीवादी राजनीति :संघर्ष एवं मुद्दे ; संपा. साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता ; हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, सं 2006, पृ. 159
[122] नारीवादी राजनीति :संघर्ष एवं मुद्दे ; संपा. साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता ; हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, सं 2006, पृ. 158
[123] स्त्री संघर्ष का इतिहास (1800–1990)–राधा कुमार , वाणी प्रकाशन, सं 2005, पृ. 167

[124] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य : भाग 2, रुस्तम राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 , पृ. 277–278
[125] आगरा सत्याग्रह संग्राम, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 26
[126] स्त्री संघर्ष का इतिहास (1800–1990)–राधा कुमार , वाणी प्रकाशन, सं 2005, पृ. 168
[127] स्त्री संघर्ष का इतिहास (1800–1990)–राधा कुमार , वाणी प्रकाशन, सं 2005, पृ. 168
[128] सितम की इन्तिहा क्या है–संपा. सत्येंद्र कुमार तनेजा, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं 2010, पृ. 515
[129] fसितम की इन्तिहा क्या है–संपा. सत्येंद्र कुमार तनेजा, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं 2010, पृ. 516–'517
[130] भारत में स्त्री असमानता; एक विमर्श– डॉ. गोपा जोशी, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, सं. 2006, पृ. 53
[131] भारत में स्त्री असमानता; एक विमर्श– डॉ. गोपा जोशी, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, सं. 2006, पृ. 54
[132] माधवराव सप्रे : प्रतिनिधि संकलन, संपा. मैनेजर पाण्डेय, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, सं. 2011, पृ 142
[133] सितम की इन्तिहा क्या है–संपा. सत्येंद्र कुमार तनेजा, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं 2010, पृ. 269
[134] सितम की इन्तिहा क्या है–संपा. सत्येंद्र कुमार तनेजा, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं 2010, पृ. 272
[135] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य : भाग 21 रुस्तम राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 , पृ. 304
[136] स्त्री संघर्ष का इतिहास (1800–1990)–राधा कुमार , वाणी प्रकाशन, सं 2005, पृ. 169
[137] हिन्दी प्रेस और स्त्री का वैकल्पिक क्षेत्र–संकलनःसंपादन–जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिीब्यूटर्स, सं 2006 पृ. 32
[138] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 23
[139] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्यः भाग 2 – रुस्तम राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 60
[140] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 23
[141] दलित महिलाएं–डॉ. मंजू सुमन , सम्यक प्रकाशन, सं 2004 पृ. 205
[142] दलित महिलाएं–डॉ. मंजू सुमन , सम्यक प्रकाशन, सं 2004 पृ. 205
[143] तोड़ो गुलामी की जंजीरें– अरुण प्रकाश, साहित्य अकादमी, सं 2008 पृ. 9
[144] दलित महिलाएं–डॉ. मंजू सुमन , सम्यक प्रकाशन, सं 2004 पृ. 222
[145] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्यः भाग 1 – रुस्तम राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 83
[146] आज का भारत–रजनी पाम दत्त, अनु. रामविलास शर्मा, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, सं 2004, पृ. 275
[147] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्यः भाग 2 – रुस्तम राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 278
[148] आज का भारत–रजनी पाम दत्त, अनु. रामविलास शर्मा, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, सं 2004, पृ. 276
[149] आज का भारत–रजनी पाम दत्त, अनु. रामविलास शर्मा, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, सं 2004, पृ. 277
[150] आज का भारत–रजनी पाम दत्त, अनु. रामविलास शर्मा, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, सं 2004, पृ. 277–278

[151] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्यः भाग 2 – रुस्तम राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 181
[152] आज का भारत–रजनी पाम दत्त, अनु. रामविलास शर्मा, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, सं 2004, पृ. 278
[153] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 54
[154] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 55
[155] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 55
[156] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 232
[157] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 241
[158] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 245
[159] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्यः भाग 2 – रुस्तम राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 180
[160] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 211

[161] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्यः भाग 2 – रुस्तम राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 164
[162] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 209
[163] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 222
[164] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 25
[165] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्यः भाग 2 – रुस्तम राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 151

[166] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 76
[167] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 232
[168] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्यः भाग 2 – रुस्तम राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 146
[169] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 66
[170] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 67
[171] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 103
[172] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 68
[173] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 211
[174] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 78
[175] भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत– माता प्रसाद ; सम्यक प्रकाशन. सं 2010 पृ. 28
[176] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्यः भाग 2 – रुस्तम राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 76

तीसरा अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य और अभिव्यक्ति का सवाल

3.1 ब्रिटिश प्रेस ऐक्ट और आरंभिक हिन्दी पत्रकारिता

3.2 स्वाधीनता आन्दोलन, अभिव्यक्ति का सवाल और साहित्य

3.3 रंगमंच, नुक्कड़ सभाएं और अभिव्यक्ति का सवाल

तीसरा अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य और अभिव्यक्ति का सवाल

3.1 ब्रिटिश प्रेस ऐक्ट और आरंभिक हिन्दी पत्रकारिता

हिन्दुस्तान में ब्रिटिश राज की स्थापना और उसके विस्तार के साथ प्रतिबंध का इतिहास भी सामने आता है. अपने शुरुआती दिनों से ही नियंत्रण स्थापित करने के उद्देश्य से अंग्रेजों ने ऐसे नियमों पर विचार व उनके निर्माण पर ध्यान दिया, जिसके सहारे उनकी प्रगति के रास्ते सुगम हों. इस कड़ी में समय–समय पर अनेक कानूनों को तैयार किया गया , जो उनके विरोधी तत्वों पर अंकुश लगाते थे. एक ओर ऐसे कानून बने जिनके सहारे राजनैतिक स्थिति सुदृढ़ की जा सके, दूसरी ओर सामाजिक रुपरेखा को ध्यान में रख कर कानून बने ताकि साम्राज्य विस्तार में मदद मिले. आर्थिक पक्ष पर एकाधिकार स्थापित करने के लिए भी अनेक नियम लागू हो गए. यहाँ तक कि धार्मिक भावनाओं को भी नहीं बख्शा गया. यह ऐसा समय था जब बोलना, लिखना–पढ़ना भी खतरनाक था. प्रेस कानूनों की लम्बी सूची से ज्ञात होता है कि इस दौर में अभिव्यक्ति के कितने खतरे थे. आगे प्रेस कानून के साथ भारतीय दंड संहिता भी जोड़ दी गई. इन नियमों के उल्लघंन पर कड़ी सजा दी जाती थी. ऐसी पुस्तकों, समाचार–पत्रों, पैम्फलेटों, चित्रों को छापने की मनाही थी जिससे स्वतंत्रता की भावना का प्रसार होता था. या जिनमें ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ कोई बाल लिखी गई हो. लेखकों, प्रकाशकों के घरों की तलाशी, जमानतें जारी करना, प्रकाशित सामग्री को जब्त कर लेना, उन्हें बेचने, पढ़ने पर पाबंदी आम बात सी हो गई थी. इन सब के बावजूद लेखक समुदाय बड़ी लगन और हिम्मत के साथ आजादी की लड़ाई को एक मुकाम तक पहुँचाने के लिए जुटा रहा. प्रतिबंध के कानून सभी भाषाओं में छपी सामग्री पर लागू होते थे. इस कारण जब्त की गई सामग्री की सूची बहुत लम्बी है. अनके सामग्रियां सरकार द्वारा ढूँढ कर जला दी गई.

बात जहाँ तक हिन्दी भाषा में जब्त की गई सामग्री की है तो जहाँ तक सूचना प्राप्त हो सकी उसके अनुसार विवरण प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है. 'हिन्दी का प्रथम दैनिक समाचार सुधावर्षण' के सम्पादक श्यामसुंदर सेन पर राजद्रोह का आरोप लगाया गया. इस पत्र का प्रकाशन 1854 में कलकत्ता से हुआ था. ''१३ जून १८५७ को लॉर्ड केनिंग ने भारत के समाचार पत्रों पर एडम रेगूलेशन पुनः लागू कर दिया गया था, जिसके कारण अनेक समाचार–पत्र बन्द हो गए. इस कानून को 'गलाघोंटू कानून' की संज्ञा दी गई.''[1] इस घोषणा के चौथे रोज यानी 17 जून 1857 को श्यामसुंदर सेन को कोर्ट में पेश होना पड़ा.''संपादक श्यामसुंदर सेन पर आरोप था कि उन्होंने अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाहजफर का एक फ़रमान छापा, जिसमें भारतीयों से कहा गया था कि

वे भारत से अंग्रेजों को बाहर निकाल दें.''[2] इसी प्रकार बालकृष्ण भट्ट की पत्रिका 'हिन्दी–प्रदीप' पर भी प्रेस कानून लगा कर इसे बंद कर दिया गया. इस पत्रिका ने राष्ट्रीय विचारों के प्रचार–प्रसार में बड़ी भूमिका निभाई. ब्रिटिश सरकार को यह स्वीकार न था. इसमें पं. माधवशुक्ल की कविता प्रकाशित करने के अरोप में इसे जब्त कर लिया गया. ''इलाहाबाद का हिन्दी प्रदीप जिसके संपादक श्री बालकृष्ण भट्ट थे. यह मासिक १ सितम्बर १८७७ को आरंभ हुआ और सन् १९0९ में 'जरा सोचो तो यारों, यह बम क्या है?' नामक कविता छापने पर इसे नए प्रेस कानून के अंतर्गत बंद कर दिया गया.''[3]

इसके पश्चात् अल्मोड़ा अखबार भी बंद कर दिया गया. अंग्रेजी अफसर द्वारा कुली पर गोली चलाने पर इस अखबार ने विरोध प्रगट किया था. परिणामस्वरुप इसे प्रतिबंधित किया गया. ''सन् १८७१ में 'अल्मोड़ा समाचार' शुरु हुआ. सन् १९१८ में अंग्रेज कलेक्टर के विरुद्ध समाचार छापने के आरोप में इसे बंद करा दिया गया.''[4] अल्मोड़ा समाचार के बंद होने का विवरण कुछ इस प्रकार है, ''सन् १९१८ का होली अंक बड़ी सजधज के साथ निकला. 'जी हजूरी होली' नामक ग़जल बड़ी लोकप्रिय हुई. इसने जी हुजूरों व अफसर जगत् में हलचल मच गई. इस अंक में राय बहादुरों के ऊपर कटाक्ष तो थे ही, डिप्टी कमिश्नर लामस के विषय में यह समाचार भी छपा कि उसने निरपराध कुली के ऊपर गोली चलाई है. वस्तुतः लोमस शासन कार्य की अवहेलना कर स्याही देवी के जंगलात के बँगले में सुरा–संदरी में डूबा रहता था. एक कुली ने शराब व सोडा लाने में विलंब किया तो भारतीय को अपदार्थ मानने वाले साहब ने क्रोधित होकर गोली चला दी. कुली बुरी तरह घायल हो गया. लोमस ने सफाई दी कि मुर्गी मारने में कुली को छर्रे लगे. किंतु अप्रैल माह में मुर्गी का शिकार खेलना मना था. इसलिए यह युक्ति खोखली थी. इतना भारी अन्याय देख कर भी चुप रह सकने वाले व्यक्तियों में दादाजी नहीं थे. जोमस द्वारा झूठी सफाई दिए जाने पर उन्होंने सही हाल जानने के लिए लोमस को पत्र भेजा. 'अल्मोड़ा अखबार' में यह प्रश्न उठाया गया कि यदि छर्रे मुर्गी को मारने में लगे तो स्वयं कानून के रक्षक ने मुर्गी का शिकार न खेलने का कानून क्यों तोड़ा? अखबार के प्रकाशक एवं मुद्रक श्री सदानंद सनवाल अत्यंत सीधे व सज्जन व्यक्ति थे. लोमस ने दो राजभक्तों द्वारा उन्हें बुलवाया और धमकी देकर इस्तीफा लिखवा लिया. अतः अखबार बंद हो गया. एक हजार रुपये की जमानत इसे फिर से चलाने के लिए माँगी गई. डायरेक्टरों की मीटिंग में आठ सदस्य संपादक के पक्ष में व आठ विरुद्ध थे. कोई निर्णय न होने से दादा जी ने इस्तीफा दे दिया.''[5] 1885 में प्रकाशित होने वाले 'राजपूताना गजट' के संपादक को भी जेल जाना पड़ा था. यह पत्र हिंदी व उर्दू दोनों भाषाओं में प्रकाशित होता था. ''इसके संपादक थे मौलवी मुराद अली 'बीमार'. यह बारह पृष्ठों का पत्र था और इसमें चार पृष्ठ हिंदी के होते थे. यद्यपि पत्र ब्रिटिश

भारत क्षेत्र अजमेर से निकलता था, परंतु रियासती अत्याचारों का भंड़ाफोड़ करना इसका मुख्य उद्देश्य था. इसलिए इसके संपादक को जेल जाना पड़ा'''.[6]

इसके अलावा प्रयाग से 1909 में प्रकाशित होने वाले पत्र 'कर्मयोगी' से भी जमानत माँगी गई. परिणामस्वरुप पत्र का प्रकाशन बंद हो गया. इस पत्र के संपादक श्री सुंदरलाल जी थे. यह पत्र बड़ा लोकप्रिय था. ''पाँच महीने तक यह पत्र पाक्षिक रहा. उसके बाद (अगले वर्ष बसंत पंचमी से) अपनी लोकप्रियता के कारण यह साप्ताहिक हो गया. परंतु जब सन् 1910 का प्रेस कानून पारित हो गया और इस पत्र से तीन हजार रुपए की जमानत माँग ली गई तो यह पत्र बंद हो गया.''[7] पत्रों के जब्त होने की सूचना सरकारी रिपोर्टों से भी मिलती है. ''भारत सरकार की रिपोर्ट में 'कर्मयोगी', 'स्वराज' और 'हिन्दी प्रदीप' को सन् १६0८ तथा १६१0 के कानून के अंतर्गत बंद करने का उल्लेख किया गया था.''[8] लोकमान्य तिलक के विचारों के प्रकाशन के आरोप में 'हिंदी केसरी' के संपादक पर भी मुकदमा चलाया गया. ''सन् १६0७ में ही नागपुर से हिंदी केसरी निकलाकृइसके प्रकाशक डॉ. बालकृष्ण शिवराम मुंजे थे. इसका उद्देश्य लोकमान्य तिलक के 'केसरी' क`लेखों को हिंदी में प्रस्तुत करना था. सन् १६0८ में लोकमान्य तिलक को जिस राजद्रोहात्मक लेख 'ये उपाय टिकाऊ नहीं हैं' के कारण छह वर्षों की सजा दी गई थी, वह लेख 'हिंदी केसरी' में भी छपा था. इसलिए उसके संपादक श्री माधवराव सप्रे पर राजद्रोह का मुकदमा चला. बाद में हिंदी केसरी बंद हो गया. ''[9] इसी प्रकार गणेश शंकर 'विद्यार्थी' का प्रसिद्ध पत्र 'प्रताप' भी प्रेस कानून का शिकार हुआ. यह कानपुर से प्रकाशित होता था. ''श्री गणेश शंकर विद्यार्थी ने देवात्थान एकादशी ६ नवंबर, १६१३ को कानपुर से इसका प्रकाशन प्रारंभ किया.''[10] 'प्रताप' के आक्रामक रवैये से उसे कई बार चेतावनी मिली तथा कई बार जमानत माँगी गई. पुलिस ने गणेश शंकर विद्यार्थी के घर पर छापा मारा. कार्यालय की तलाशी ली गई. ''प्रताप का प्रकाशन प्रारंभ होने के चंद महीने बाद ही प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया. और 'भारत रक्षा कानून' लागू हो गया. 'प्रताप' को भी इसका दुष्परिणाम भोगना पड़ा. 'प्रताप' ने जनवरी १६१५ का एक अंक 'राष्ट्रीय अंक' के नाम से प्रकाशित किया, जिसमें गांधी जी पर श्री मैथिलीशरण गुप्त की लिखी हुई एक कविता 'अफ्रीका प्रवासी भारतवासी' छपी. फीजी में प्रवासी भारतीयों की विषम स्थिति पर 'प्रताप' में बराबर ध्यान दिया गया. उसके अप्रैल १६१५ के अंक में लक्ष्मण सिंह का 'कुली–प्रथा' नाटक छपा, जिसमें फीजी के प्रवासी भारतीयों की दुर्दशा का चित्रण था. प्रताप कार्यालय ने इस नाटक को अलग से पुस्तक के रुप में भी प्रकाशित किया. इस अंक के प्रकाशित होते ही पुलिस ने प्रताप प्रेस तथा श्री गणेश शंकर विद्यार्थी और श्री शिवनारायण मिश्र के मकान पर छापा मारा. कार्यालय में दो अन्य पुस्तकें बिक्री के लिए रखी हुई थीं. पुलिस उन्हें उठा कर ले गई और ग्राहकों के पतो ंके रजिस्टर भी ले गई. इसके बाद जो एजेंट 'प्रताप'

मगाँते थे उन पर दबाव डाला गया कि वे एजेंसी समाप्त कर दें. कई ने तो समाप्त भी कर दी. 'कुली–प्रथा' नाटक जब्त कर लिया गया. और ३0 अक्तूबर १९१६ को प्रताप प्रेस से एक हजार रुपये की जमानत माँगी गई. इसके कारणों में लिखा गया कि प्रेस से आपत्तिजनक साहित्य मिला है तथा वहाँ से प्रकाशित 'कुली–प्रथा' नामक पुस्तक को सरकारी ने जब्त कर लिया है.''[11] इसके बाद 'प्रताप' से भी जमानत माँगी गई. ''जब 'प्रताप' ने चंपारण में गांधी जी के सत्याग्रह समाचार छापे तो फिर ९ अगस्त १९१७ को विद्यार्थी जी को चेतावनी दी गई. कि वे ऐसे समाचार न छापें. 22 अप्रैल १९१८ को एक कविता छापने के आरोप में एक हजार रुपये की जमानत जब्त कर ली गई.''[12]

इसके अलावा जब मुंशीगंज में किसानों की सभा के दौरान सरदार वीरपाल सिंह ने गोलियाँ चलाई, जिसमें किसानों की मौत हो गई. 'प्रताप' ने इस घटना को प्रकाशित किया. ''फलतः सरदार वीरपाल सिंह ने नोटिस भेजा कि श्री गणेश शंकर विद्यार्थी और श्री शिवनारायण मिश्र इस समाचारों और अग्रलेखों के प्रकाशन के लिए माफी माँगें वरना उन पर भारतीय दंड विधान की धारा ५00 के अंतर्गत मुकदमा चलाया जायेगा.''[13] माफी न माँगने पर उन पर मुकदमा चला और सजा मुकर्रर की गई. ''मजिस्ट्रेट महोदय ने ३0 जुलाई १९२१ को दोनों अभियुक्तों श्री गणेश शंकर विद्यार्थी और श्री शिव नारायण मिश्र को तीन–तीन महीने की कैद की सजा दी और पाँच–पाँच रुपए जुर्माना कर दिया.''[14] यही नहीं, ''मुकदमे के दौरान विद्यार्थी और मिश्र जी से दफा १0८ के अंतर्गत पंद्रह–पंद्रह हजार रुपए के जमानती मुचलके माँगे गए थे.''[15]

पटना से प्रकाशित होने वाले पत्र 'पाटलिपुत्र' को भी सरकार की कुदृष्टि का शिकार होना पड़ा. ''सन ्१९१३ में ही पटना से एक पत्र निकला. इतिहास और पुरातत्व के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल का नाम इसके साथ जुड़ा हुआ है. इस पत्र का नाम था–'पाटलिपुत्र'. इसका प्रकाशन हथुआ नरेश के पटना में स्थापित 'एक्सप्रेस प्रेस' से होता था. इस पत्र ने भी राष्ट्रीयता को जाग्रत करने में अभूतपूर्व योगदान दिया. जब डॉ. जायसवाल यूरोप चले गए तो बाबू सोना सिंह चौधरी इसके संपादक हुए. असहयोग आंदोलन को समर्थन देने के अपराध में ३ मई १९२१ को शासन के आदेश से 'पाटलिपुत्र' को बंद कर दिया गया.''[16] 1913 में अमेरीका में 'गदर–पार्टी' स्थापना के साथ–साथ गदर पत्र का संपादन किया गया. ब्रिटिश सरकार ने उस पर सख्त पाबंदी लगाई. ''गदर पार्टी की सीापना के साथ 'गदर' पत्र की स्थापना हुई, जिसका पहला अंक नवंबर १९१३ में प्रकाशित हुआ. 'गदर' पत्र के अंक हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी, गुजराती आदि विभिन्न भाषाओं में निकले और भारत भेजे गए. ब्रिटिश सरकार उस पत्र से इतना दुःखी थी कि उसकी प्रति

रखना भी अपराध माना जाने लगा.''[17] इसी प्रकार 'भविष्य' नामक पत्र भी जमानत न अदा कर पाने की सूरत में बंद कर दिया गया. ''श्री सुंदरलाल ने देश के तेवर को देख कर सन् १९१९ में 'भविष्य' नाम से एक साप्ताहिक पत्र निकाला. उससे पहली बार तीन हजार रुपए की जमानत माँगी गई, फिर पाँच हजार रुपए की, फिर दस हजार रुपए की. तीनों बार सर तेजबहादुर सप्रू ने 'भविष्य' की ओर से इलाहाबाद उच्च न्यायालय में चुनौती दी; परंतु जमानत का आदेश रद्द नहीं हुआ और तीस हजार रुपए की जमानत न देने के कारण 'भविष्य' अंततः बंद हो गया.''[18] 1919 में प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्र 'विजय' भी जमानत की रकम न दे पाने के कारण बंद हो गया. ''यह पहला राष्ट्रीय पत्र था, जो खूब बिकने लगा. उस पर सरकार की कोपदृष्टि पड़नी ही थी, जमानत माँगी गई और संसरशिप लगाया गया. फलतः पत्र बंद करना पड़ा.''[19]

सन् 1920 में कलकत्ता से श्री अंबिकाप्रसाद वाजपेयी ने 'स्वतंत्र' नामक पत्रिका निकालनी शुरु की. परंतु 1930 के एक्ट के अनुसार उसे भी बंद कर दिया गया. ''स्वतंत्र भी सन् १९३0 तक चला. तब (सन् १९३0 में) प्रेस एक्ट की चपेट में आकर जमानत अदा न कर पाने पर उसे बंद होना पड़ा.''[20] खंडवा से प्रकाशित होने वाला पत्र 'मध्य भारत' भी सेंसरशिप की शिकार हुआ. ''श्री आगरकर ने सन् १९२३ में खंडवा से 'मध्य भारत' का प्रकाशन प्रारंभ किया. जब भोपाल तथा अन्य राज्यों ने उसके प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया तो पत्र बंद करना पड़ा''.[21] उस समय जो भी पत्र या सामग्री प्रकाशित होती सरकार की नजरों से बचना मुश्किल होता था. ऐसी न जाने कितनी सामग्रियां जबत की गई. न जाने कितनों से जमानत माँगी गई. '' उन समाचार पत्रों और अखबारों के विरुद्ध, जो प्रेस एक्ट से पहले विद्यमान थे, प्रेस एक्ट के अधीन जिस प्रकार की कार्रवाई की उनकी संख्या लगभग एक हजार यानी नौ सौ इक्यानबे थी. इनमें से दो सौ छियालीस को चेतावनी दी गई, जो इस बात के लिए काफी थी कि हमेशा से उनके लिए उनकी उन्नति और विस्तार को रोक दे तथा छोटे उद्योगों को अपंग बना दे. शेष सात सौ पाँच से भारी जमानतें माँगी गई और वे जब्त कर ली गई. वर्ष १९१७ तक बाईस समाचार पत्रों में से अठारह का प्रकाशन जमानत माँगने के बाद ही बंद हो गया. इसी तरह जिन अट्ठासी पुराने प्रेसों से, जो समाचार पत्र भी छापते थे और अन्य छपाइ का काम भी करते थे, जमानत माँगी गई तो विवश होकर चालीस को बंद करना पड़ा. इस अधिनियम के लागू होने से पहले पाँच वर्षों के अंदर सरकार ने पाँच लाख रुपए की जमानतें जब्त की. १९१८ के एक सरकारी आंकड़े के अनुसार अधिनियम के अंतर्गत पांच सौ समाचार पत्रों को जब्त कर लिया गया. ''[22]

दिल्ली से प्रकाशित होने वाले एक अन्य पत्र को सरकारी आदेश से बंद कर दिया गया. ''दिल्ली से सन् १६२५ श्री रामचंद्र शर्मा ने 'महारथी' नामक मासिक पत्रिका शुरु की. इस पत्र के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. इस कारण इस पत्र से जमापत माँगी गई और संपादक को नौ महीने की सजा हुई. ''महारथी के शक्ति अंक, राजपूत अंक, प्रताप अंक, आदि स्फूर्तिदायक विशेषांक निकले थे. चौवन अंक निकलने के बाद अप्रैल १६३0 में जब प्रेस अध्यादेश लागू हो गया और 'महारथी' से जमानत माँगी गई तो उसका प्रकाशन बंद कर दिया गया. श्री रामचंद्र शर्मा ने 'महारथी' को ४ जून १६३0 से दैनिक पत्र के रुप में छापना शुरु कर दिया और लाला लाजपतराय की दूसरी पुण्य तिथि पर २0 नवंबर १६३0 को उनके नाम से एक विशेषांक निकाला. इसी विशेषांक में प्रकाशित 'कफन की कीलों पर' शीर्षक अग्रलेख लिखने के कारण शर्मा जी को नौ महीने की सजा हुई. ''[23] मई 1931 में 'अभ्युदय' का भगतसिंह विशेषांक प्रकाशित हुआ. यह अंक जब्त किया गया''[24] ''अभ्युदय का ही अंक फिर से 18 नवंबर 1931 का किसान अंक प्रान्तीय सरकार द्वारा जब्त किया गया.''[25] 1932–33 में शंखनाद के अंक राजद्रोहात्मक स्वीकार करते हुए जब्त घोषित किए गए.''[26] कानपुर से प्रकाशित होने वाले पत्र वर्तमान भी जब्त किया गया। इसके संपादक रमाशंकर अवस्थी थे. इसका प्रकाशन 22 अक्टूबर 1920 को हुई थी. राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थन करने के कारण सरकार ने कई बार चेतावनी दी तथा जमानत के आदेश जारी किए. ''6 फरवरी 1934 के 'वर्तमान' के अंक में पं. जवाहरलाल नेहरु के 'पूर्वी बंगाल में राजनीतिक भूकम्प' शीर्षक लेख (जिसमें बंगाल में सरकारी दमन नीति पर विस्तृत प्रकाश डाला गया था.) को प्रकाशित करने के अपराध में 'वर्तमान' का उक्त अंक सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया और पत्र से पन्द्रह सौ रुपए की जमानत मांगी गई.''[27] इसके अलावा उसके संपादक पर भी मुकदमा चलाया गया. ''वर्तमान के प्रकाशन में तीन वर्ष बाद सोलह अग्र लेखों पर राजद्रोह भड़काने का आरोप करते हुए श्री रमाशंकर अवस्थी पर मुकदमा चलाया गया और सन् १६२४ में उन्हें दो वर्ष की सपरिश्रम कारावास की सजा मिली.''[28] ''लखनऊ से 1927 में सुधा का प्रकाशन शुरु हुआ. इसके संपादक दुलारेलाल भार्गव थे. यह मासिक पत्र था. 'भगतसिंह के लिए' शीर्षक कविता प्रकाशित होने के कारण जुलाई 1931 का अंक सरकार द्वारा जब्त घोषित किया गया. ''[29] होम पोलिटिकल फाइल, राष्ट्रीय अभिलेखागार से प्राप्त जानकारी के अनुसार 'हलधर' नामक पत्र भी 15 तथा 30 जुलाइ 1939 का अंक भारतीय दंड़ विधान की धारा 153 ए और 124 ए के तहत् उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जब्त किया गया.''[30]

आगरा से एक और महत्वपूर्ण पत्र 'सैनिक' का प्रकाशन हुआ. इसके संपादक कृष्णदत्त पालीवाल थे. इसकी शुरुआत 1 जून 1925 को हुई. ब्रिटिश सरकार ने इस पत्र से आतंकित होकर इस पर कई

बार जब्ती के आदेश दिए. यह मुख्यतः राजनीतिक पत्र था. इसने राष्ट्रीय चेतना जगाने में पुरजोर योगदान दिया. '6सैनिक' पत्र से अनेक बार जमानतें मांगी गई और जब्त हुई. बीच–बीच में उन्हें यह पत्र बंद करना पड़ा और जब सन् १९४१ में महात्मा गांधी ने व्यक्गित सत्याग्रह प्रारंभ किया तो श्री विनोवा भावे की गिरफ्तारी का समाचार छापने के अपराध में 'सैनिक' कार्यालय पर सरकार ने ताला लगा दिया.''[31] इसका विवरण इस प्रकार है, ''प्रातः काल का समय था. श्री पुरुषोत्म विजय ड्यूटी पर थे. एक पुलिस इंस्पेक्टर कार्यालय को बंद करने का आदेश लेकर कुछ सिपाहियों के साथ आया. मुद्रक तथा प्रकाशक को आदेश दिखाया गया. मैं उस समय कार्यवश 'सैनिक' कार्यालय में गया हुआ था. मेरे सामने ही श्री श्रीपति लाल दूबे को आदेश थमा दिया गया और सबको बाहर निकाल कर प्रेस पर ताला लगा दिया गया.''[32] प्रयागराज से प्रकाशित होने वाले पत्र 'नया हिंदूस्तान' को भी साम्राज्यवादी शक्तियों का कोपभाजन बनना पड़ा. इसके संपादक सज्जाद जहीर व शिवदान सिंह चौहान थे. सितंबर 1939 में इस पत्र को प्रतिबंधित घोषित किया गया. गोरखपुर से 6 अप्रैल 1919 को प्रकाशित होने वाला पत्र 'स्वदेश' को भी जब्त घोषित किया गया. 1924 में पण्डेय बेचनशर्मा उग्र के संपादन में इसका विजयांक निकाला गया जिसके कारण यह जब्त हुआ. ''पाण्डेय बेचनशर्मा उग्र पर ('स्वदेश के विशेषांक का संपादन करने के कारण') ताजिरात हिन्द की दफा 124 के अनुसार राजद्रोह का मुकदमा चल रहा था, वह आज खत्म हो गया. जिला मजिस्ट्रेट ने उनको नौ महीने सख्त कैद की सजा दी है''[33] टोडर सिंह तोमर के पत्र 'वालंटियर'(कानपुर) को भी जब्त किया गया.

सन् 1922 में 'चांद' पत्रिका का प्रकाशन हुआ. इसके संपादक रामरख सिंह सहगल थे. इसका फांसी अंक प्रतिबंधित किया गया. फांसी अंक का प्रकाशन नवंबर 1928 में हुआ. फांसी अंक के संपादक आचार्य चतुर्सेन शास्त्री थे. इन पर इस कारण मुकदमा भी चलाया गया. यही नहीं, लाहौर से प्रकाशित होने वाले पत्र 'बलिदान' के नव वार्षिक अंक को भी सरकार द्वारा जब्त घोषित किया गया. इस पत्र की शुरुआत धर्मवीर महाराज राजपाल थे. इसमें ऐसी सामग्री प्रकाशित हुई जो सरकार द्वारा काफी आपत्तिजनक मानी गई. आचार्य देवशम्र 'अभय' एवं भीमसेन विद्यालंकार के सहयोग से 'अलंकार' का संपादन हुआ. दिसंबर 1934 का अंक जब्त किया गया. 'क्रान्ति' (राजाराम शास्त्री) ने सितंबर 1939 तथा अक्टूबर 1939 लगातार प्रतिबंधित किए गए.''[34] क्राति उस दौर की महत्वपूर्ण पत्रिका थी. इसमें प्रकाशित सभी सामग्री काफी आपत्तिजनक थी. इसने उग्र विचारों के प्रसार में बहुत मदद की. 'भूखेराम की डायरी', 'भगतसिंह और सुखदेव' जैसे लेख काफी चर्चित रहे. इस प्रकार सरकार ने लगातार कई पत्रों , पुस्तकों को जब्त किया.

3.2 स्वाधीनता आंदोलन, अभिव्यक्ति का सवाल और साहित्य

स्वाधीनता आंदोलन को आगे बढ़ाने में साहित्य की प्रमुख भूमिका रही. आजादी की लड़ाई में एक ओर क्रांतिकारी व आंदोलनकारी सक्रिय थे तो दूसरी ओर संपादकों और लेखक समुदाय भी जी–जान से जुटे हुए थे. जनता को जागरुक करने के अपराध में उन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा. सश्रम कारावास की सजा भी दी जाती. पुस्तकों, पर्चो, अखबारों पर कड़ी पाबंदी थी. स्वतंत्रता के लिए जागरुक करने वाले विचारों के प्रसार को रोकने के लिए साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपनी पूरी ताकत लगा दी. ''अंग्रेजी राज में हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी और दूसरी भारतीय भाषाओं में पुस्तकों और अन्य प्रकाशनों पर प्रतिबंध की प्रक्रिया 19 वीं सदी से ही शुरु हो गई थी, लेकिन वह अधिक कठोर और आतंककारी बनी 20 वीं सदी के पहले दशक से, विशेष रुप से 1905 ई. के बंग–भंग के विरोध में विकसित स्वदेशी आंदोलन के समय से. सन् 1907 से 1947 तक प्रतिबंधित प्रकाशनों पर ध्यान दीजिए तो यह सच सामने आता है कि जिन प्रकाशनों में 1857 ई. के प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम की तारीफ होती थी या भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नों का ब्यौरा होता था या किसी अन्य देश के स्वाधीनता आंदोलन का इतिहास होता था, उन सब पर पाबंदी लगा दी जाती थी. 1917 के बाद जिन प्रकाशनों में रुस की क्रांति, समाजवाद या साम्यवाद के पक्ष में कुछ भी होता था उस पर भी प्रतिबंध लगा दिया जाता था. भारत में देश की आजादी के लिए जो सशस्त क्रांतिकारी आंदोलन चल रहा था उसके समर्थन में लिखा और छपा हुआ साहित्य प्रतिबंध का शिकार होता था, इसलिए प्रतिबंधित प्रकाशनों में सबसे बड़ी सूची भगतसिंह पर छपी या उनके संगठन द्वारा प्रकाशित किताबों की है. बाद के समय में एक स्थिति ऐसी आई कि अंग्रेजी राज के शोषण और दमन के बारे में सच लिखना अपराध मान लिया गया.''[35]

सेंसरशिप के बावजूद लेखकों ने लेखन जारी रखा. जनता में उनके स्वतंत्र विचारों की धूम मची हुई थी. बलिदान के गीत छोटे–छोटे बच्चों की जुबां पर भी चढ़ गए थे. ब्रिटिश सत्ता अपने दमन और शक्तियों के बावजूद इनसे बेहद डरी हुई थी. अभिव्यक्ति की इस ताकत को रोकने के लिए उसने कई कमेटियां बनाई गई. पुलिस का सहारा लिया गया. सजाएं मुकर्रर की गई, फिर भी कामयाबी न मिली. 'पराधीनों की विजय यात्रा' पुस्तक जो ब्रिटिश काल में जब्त कर ली गई थी, की भूमिका में डॉ. मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं, ''असल में जो लोग भारत में अंग्रेजी राज के संचालक और रक्षक थे, वे इतिहास के महत्व और प्रभाव से परिचित थे. वे जानते थे कि इतिहास के सच का असर कितना गहरा और दूरगामी होता है, इसलिए वे इतिहास के सच से डरते थे. पंडित सुंदरलाल की किताब

'भारत में अंग्रेजी राज' पर प्रतिबंध घटना से यह स्पष्ट होता है. उस प्रतिबंध की कहानी पंडित सुंदरलाल के ही शब्दों में इस प्रकार है–

'पुस्तक का 2000 प्रतियों का, पहला संस्करण 18 मार्च 1929 को प्रकाशित हुआ. पुस्तक के लिखे जाने के दिनों में ही अंग्रेजी शासकों के बीच इतनी खलबली मच गई थी कि इतनी बड़ी पुस्तक के प्रकाशन के पहले ही उसकी जब्ती का फैसला हो चुका था.

22 मार्च 1929 को अंगरेज सरकार की ओर से जब्ती की आज्ञा लेकर पुलिस प्रकाशक के दफ्तर पहुंच गई. इस बीच तीन दिन के अंदर किसी तरह 1700 किताबें एक बार ग्राहकों के पास पहुंचा दी गई थीं. बाकी 300 किताबें सरकार ने रेल या डाक खाने में जब्त कर लीं. इन 1700 के लिए भी ग्राहकों के पते लगा–लगा कर हिंदोस्तान भर में सैकड़ों तलाशियां ली गईं जिनमें अनेक पुस्तकें पुलिस के हाथ लग गई.''[36] अभिव्यक्ति की इस चेतना को रोकने के लिए प्रशासन पूरे जोर–शोर से लगी हुई थी. स्वतंत्रता इतना महत्वपूर्ण थी कि लोग जान की परवाह किए बगैर इस लड़ाई को आगे बढ़ाने के लिए जुटे हुए थे.''मलयालम के प्रसिद्ध कवि कुमारन् आशान ने गाया था–स्वतंत्रता ही जीवन है.''[37] इस स्वतंत्रता को जीवन मानने वाले लोगों ने अनन्त कुरबानियां दीं. तमाम संकटों के बावजूद यह लड़ाई जारी रखी गई. देश में रहने वाले लोगों के अतिरिक्त देश से बाहर रहने वाले व्यक्तियों ने भी इस लड़ाई में बहुत योगदान दिया. बाहर से प्रकाशित होने वाले पत्रों को कई बार अत्यंत गुप्त तरीके से स्वदेश पहुंचाया जाता. ब्रिटिश सरकार ने उन सभी सूचनाओं, समाचारों पर भी प्रतिबंध लगाना शुरु किया , जिनके माध्यम से जनता में चेतना के प्रसार का अंदेशा था. विदेशों से आने वाली खबरों को रोकने के लिए सरकार तैनात थी. गुलामी के खिलाफ विश्व में हो रही क्रातियों का सीधा प्रभाव देश पर पड़ रहा था. सोवियत की क्रांति ने तो हलचल मचा दी थी. ''हिंदी की अनेक पत्र–पत्रिकाओं ने रुसी क्रांति का स्वागत किया और उसे भारत की स्वाधीनता के लिए मददगार माना. उन पत्रिकाओं में प्रमुख हैं–मर्यादा, प्रताप, अवधवासी, भारतवासी, भविष्य, शक्ति, प्रह्लाद, प्रभाकर, मतवाला, अभ्युदय आदि. इन सब ने रुसी क्रांति और उसकी विचारधारा को भारत की स्वाधीनता और उसके भावी स्वरुप से जोड़ कर देखा. कानपुर से प्रकाशित होने वाले संसार में दिसम्बर 1919 के अंक में लिखा गया था–बोल्शेविज़्म सामाजिक अन्याय का शत्रु है. वे लोग इसका विरोध करते हैं जो दूसरों को अपने अधीन रखना चाहते हैं ओर अन्य देशों से व्यापार कर के मोटे मुनाफे कमाना चाहते हैं. ओर वर्तमान पंजीवादी समाज में मौजूद असमानता को कायम रखना चाहते हैं.' यह सब देख कर , भारत की अंग्रेजी सरकार बहुत परेशान हुई. वह भारतीय जनता के बीच समाजवाद और रुसी क्रांति के विचारों के प्रचार–प्रसार से भयभीत

थी और बौखलाई हुई थी. इसलिए वह ऐसे प्रभावों से देशभक्तों को हर कीमत पर दूर रखने के लिए कोशिश कर रही थी. उसने साम्सवादी साहित्य को भारत पहुंचने से रोकने के लिए एक विशेष डाक व्यवस्था का घेरा बनाया था. ऐसे सभी प्रकाशनों पर तत्काल पाबंदी लगा दी जाती थी.''[38]

अंग्रेजों के इन शिंकजों की चर्चा ज़ब्तशुदा साहित्य से भी मिलती है. पाण्डेय बेचनशर्मा उग्र की ज़बत की गई कहानी 'निहिलिस्ट' में दिखाया गया है कि अभिव्यक्ति के कितने खतरे थे. देश की दुर्व्यवस्था का यथार्थ दिखाने वाले चित्रों में रेटकिन देखता है, '' एक चित्र में कोई दानव एक मनुष्य की जीभ को उसके होठों से सटा कर सी रहा था. दानव के नीचे लिखा था–पशु बल, मनुष्य के मुख के पास लिखा था, हमारी बोलने की स्वतंत्रता और सूजे के पास लिखा था, 'कानून'. ''[39] यह कानून ही था जो लोगों के मुंह खोलने पर दण्ड देता था. इसी कहानी में श्रेंगरिफ के गाने पर पुलिस उसे पकड़ लेती है–

''हमारे प्यारे बंधु किसान,

मरते हाय! अ–नय के कर से पाते दुख महान।

अनियंत्रित शासन है, कारण इसका एक प्रधान।

जब तक यह न मिटेगा तब कहीं नहीं कल्यान।

मास्को के हेड पुलिस स्टेशन (कोतवाली) पर बैठे हुए पुलिस सुपरिटेंडेंट ने सुना और देखा–कोई युवक उक्त गान को गाता हुआ चला जा रहा था. फौरन चार पुलिस कांस्टेबिल दौड़ाए गएं युवक पुलिक सुपरिटेंडेंट के सामने लाया गया.''[40]

पुलिस के खौफ के बावजूद प्रकाशनों ने अनेक पुस्तके प्रकाशित की. आजादी की भावना से अनुप्राणिरत अनेक पत्र प्रकाशित किए जाते थे. ज़ब्त पुस्तक 'आगरा सत्याग्रह संग्राम' से ज्ञात होता है कि ब्रिटिश राज के खिलाफ पत्रों का प्रकाशन सफलतापूर्वक होता रहा. ''आगरा में प्रकाशन विभाग ने जिस मुस्तैदी के साथ काम किया उसकी सभी प्रशंसा करते हैं, यह काम श्रीयुत् महेन्द्र जी के सुपुर्द था, सैनिक को चलाते हुये भी संग्राम के सब समाचार बाहर प्रकाशनार्थ वे ही भेजते थे. यह उन्हीं के उद्योग का फल था कि आगरा सत्याग्रह के समाचार अनेक पत्रों में छपते रहे. जब कांग्रेस की आज्ञानुसार सैनिक का प्रकाशन बन्द कर दिया गया तब भी 'आगरा सत्याग्रह समाचार' निकालना आप ही का काम था.''[41] इसमें ऐसी सामग्री प्रकाशित की जाती थी, जिसका सीधा असर

जनता व प्रशासन दोनों पर होता था. ''प्रकाशन के सिलसिले में आगरा के एक सुप्रसिद्धसाहित्यसेवी द्वारा लिखी हुई'आगरा के कलक्टर के नाम खुली चिट्ठी, 'टोडी बच्चा नम्बर एक और नम्बर दो''विलियमसन साहब और ग्रान्ट साहब की विदाई' समुचित साहित्य की सुंदर चीजें थीं. इन चीजों को जिसने पढ़ा उसकी तबियत फड़क गई.''[42] अंग्रेज अधिकारी इस बात से बौखलाए हुए थे उन्होंने अपनी दमनात्मक कार्रवाई शुरु कर दी. '' पत्रों और प्रेसों का दमन करने में आगरे के अधिकारियों ने बड़ी मुस्तैदी दिखाई. यद्यपि सैनिक कांग्रेस की आज्ञानुसार वैसे ही बन्द कर दिया गया था फिर भी प्रेस तथा पत्र से पूरी–पूरी जमानत मांगी गई! सत्ताइस जून को जैन प्रेस से एक हजार की जमानत मांगी गई. इसके बाद मार्डन प्रेस से एक हजार की जमानत मांगी गयी. विरोधस्वरुप दोनों प्रेस बंद कर दिये गये. सैनिक बंद होने पर जो सत्याग्रह समाचार बेचने वाले टीकाराम हॉकर को थाने में बुला कर डराया, धमकाया गया और दो घंटे तक हवालात में रखा गया. दो जौलाई से बारह बजे ताज रोड के चौराहे पर एक यूरोपियन पुलिस अधिकारी ने दुर्गाप्रसाद हॉकर को धक्के देकर समाचार छीन लिए.''[43]

लोगों के बीच जागृति की लहर रोकने के लिए पुलिस जगह–जगह तलाशियां ले रही थी. कई बार पुलिस मशीन तक उठा ले जाती.''प्रेस आर्डिनेंस द्वारा सैनिक तो बंद ही कर दिया गया था अब अधिकारियों ने साइक्लोस्टाइल वाले आर्डिनेंस से काम लेकर सत्याग्रह समाचार को बन्द करने की ठानी. चौथी जुलाई को पांच बजे ही 1. बायकाट कमेटी के दफ्तर 2. महेन्द्र जी के मकान 3. आदर्श प्रेस और सैनिक कार्यालय, 4. आगरा सत्याग्रह समाचार कार्यालय 5. समाचार के संपादक के मकान 6. सत्याग्रह छावनी, 7. महिला सत्याग्रह छावनी तथा 8. बाबू श्री चन्द दौनेरिया के मकान की तलाशी ली. महिला छावनी की तलाशी में छत्ते के दरोगा तथा नये डी. एस. पी. का बर्ताव बहुत निन्दनीय रहा. सत्याग्रह समाचार कार्यालय से पुलिस साइक्लोस्टाइल मशीन उठा ले गई. लेकिन फिर भी सत्याग्रह समाचार का निकलना बन्द नहीं हुआ.''[44]

यही नहीं, ज़ब्तशुदा उपन्यास 'गदर' की भूमिका में ऋषभचरण जैन लिखते हैं कि सुंदरलाल को उनकी पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज' में अज़ीमुल्ला खां के बचाव में लिखने के कारण ज़ब्त घोषित किया गया था. यह बात ओर है कि पुस्तक में और भी कई बातें थीं जिसके कारण अंग्रेजी सरकार ने उसे जब्त कर लिया.

इस समय सच बोलना अत्यंत खतरनाक था. स्वातंत्र्य चेतना का प्रसार करने वाले लागों को पुलिस पकड़ती, मारती–पीटती, पुस्तकें, समाचार–पत्र वग़ैरा छीन लेती. 'आगरा सत्याग्रह संग्राम' में अनेक ऐसे कुत्सित घटनाओं का यर्थाथ सामने आता है–

''छः जुलाई को रावतपाड़ा और जौहरी बाजार के तिराये पर आगरा सत्याग्रह समाचार बेचने वालों ने अपूर्व सत्याग्रह किया. एक सिपाही ने एक–एक करके दो हाकरों को मारा तथा उनसे समाचार छीन लिये. इस पर आठ–दस हाकर एक मद वहीं आकर समाचार बेचने लगे. सिपाही दौड़कर दारोगा तथा सिपाहियों को बुला लाया. उन्होंने आ कर दो को पकड़ लिया. बाकी बराबर अखबार बेचते रहे. रात के नौ बजे हजारों की भीड़ में वहां समाचार चिल्ला–चिल्ल्ला कर बेचा जाता रहा. जो दो गिरफ्तार किये गये थे उनका दफा तीन सौ तिरेपन में चालान किया गया. यह सब करने पर भी पुलिस समाचार का बिकना न रोक सकी. सत्याग्रह समाचार बिक्री सत्याग्रह सर्वथा सफल हुआ. जो दो सत्याग्रही पकड़े गये थे उन्हें दूसरे दिन छः छः दिन की सजा दे दी गयी. मंगलवार को सबेरे फिर चार लड़के समाचार बेचते पकड़े गये थे. पर उन्हें उसी समय छोड़ दिया गया. समाचार धूम के साथ बिकता रहा. ताज रोड़ पर जो द्वारिकाप्रसाद समाचार बेचते हुए पकड़ा गया था. वह जेल काट कर लौट आया तथा फिर सत्याग्रह समाचार बेचने लगा.''[45] डॉ. मैनेजर पाण्डेय 'एक आन्दोलनकारी किताब की कहानी' में लिखते हैं, ''देशेर कथा की अपार लोकप्रियता से अंग्रेजी राज भयभीत हुआ और 28 सितंबर 1910 को यह विज्ञयप्ति निकाल कर उसको जब्त कर दिया गया. 'देशेर कथा' पर पाबंदी की खबर 30 सितंबर को कुछ दैनिक अखबारों में छपी.....देशेर कथा पर पाबंदी इस आधार पर लगाई गई है कि उसमें ऐसी सामग्री है जिसको पढ़ कर पाठकों के मन में सरकार के प्रति अलगाव का भाव पैदा होगा.''[46] सरकार दमनचक्र में जुटी हुई थी फिर भी स्वातंत्र्य चेतना को रोकने में सफल न हो सकी. इस युग में तलाशियों का दौर चल रहा था. ''अगस्त तक प्रेस आर्डिनेंस की वजह से बन्द हुये तथा छः प्रेस अगस्त के दूसरे सप्ताह में सत्रह अगस्त को श्री ज्वालाप्रसाद बुक सेलर के मकान व दुकान की तलाशी ली गयी. वहां से पुलिस महात्मा जी की ग्यारह शर्तें, स्वराज का डंका, भारतमाता के भक्त, स्वतंत्रता की देवी, वीर लख्मीबाई, राष्ट्रीय आल्हा आदि तीन सौ पुस्तकें ले गयी. आगे चलकर इनसे 108 में पांच सौ की जमानत ली गई. अगस्त के अंतिम शुक्रवार को शाम को एक लड़का सत्याग्रह–समाचार बेच रहा था. सिपाही ने उसके समाचार छीनने चाहे. लड़के ने नहीं दिये. सिपाही उसे पीटने लगा. इस पर कुछ लोगों ने सिपाही को रोका. सिपाही ने कुछ और कानिस्टिबल को बुलवा लिया ओर लोगों को लाठियों से पिटवाया. फिर श्री गोविन्द सिंह, लाला मोतीलाल और हरनारायन को दफा तीन सौ तिरेपन और एक सौ सैतालिस में चालान कर दिया गया ओर इन लोगों को उस का दण्ड भोगना पड़ा. शनिवार को प्रातः काल पुलिस ने, जिस साइक्लोस्टाइल पर सत्याग्रह–समाचार छपता था उसके लिये श्री महेन्द्र सिंह के घर की तलाशी ली लेकिन वहां कुछ न मिला.''[47] कई प्रेसों से

जमानतें मांगी गई, ''चार फरवरी को फिर सैनिक पत्र तथा आदर्श प्रेस से पूरी यानी दो–दो हजार की जमानतें मागी गयी फलस्वरुप पत्र तथा प्रेस फिर बंद कर दिया गया.''[48]

ब्रिटिश हुकूमत ने लेखकों की आजादी छीन ली थी. उनकी रचनाओं को जन सामान्य से दूर रखने के लिए पुरजोर प्रयत्न जारी था. इस सिलसिले में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की रचनाएं भी जब्त की गई. ''उग्र की सर्वाधिक आग बरसाने वाली कहानी 'प्यारे' 'मतवाला' में 1924 में प्रकाशित हुई. इस अंक पर तत्काल रोक लगा दी गई और कहानी जब्त कर दी गई. गोरखपुर से प्रकाशित 'स्वदेश' पत्रिका का 'विजयांक' इसी वर्ष छपकर बाजार में आया. इस अंक में राजद्रोही सामग्री पाई गई, उस पर प्रतिबंध लगा. उग्र इस अंक के अतिथि–सम्पादक थे, उन पर राजद्रोह का मुकदमा चला और 1925 में उन्हें जेल जाना पड़ा. 1928 में उग्र का चर्चित कहानी संग्रह 'चिनगारियाँ' प्रकाशित हुआ. संकलन के शीर्षक को सार्थक करतीं इसकी धधकती कहानियाँ क्रान्तिमूलक पाई गईं, 1928 में उस पर पाबन्दी लगी. इस संग्रह में कुल बारह कहानी शामिल की गईं, जिनमें से छह कहानियों की विषय वस्तु रुसी क्रान्ति से सम्बद्ध है. इनका रचनाकाल 1923–24 है. सरकार को यह विश्वास था कि रुसी–क्रान्ति की ऐसी सफलता का सहारा लेकर देशवासियों को क्रान्ति–मंत्र सिखाया जा रहा है. इन कहानियों में अप्रत्यक्ष रुप से राजद्रोह के संकेत हैं. सम्भवतः इसलिए यह संग्रह जब्त हुआ. इस संग्रह की शेष छ कहानियाँ भी सम्भवतः 1924 के आसपास लिखी गई होंगी. उग्र का एक और संग्रह 'क्रान्तिकारी कहानियाँ' 1939 में प्रकाशित हुआ, उस पर भी प्रतिबंध लगाया गया.''[49]

स्वाधीनता आंदोलन को आगे बढ़ाने में इन क्रांतिकारी लेखकों की बड़ी भूमिका थी. ये जान हथेली पर लेकर लिखते थे ओर खतरों के लिए सदैव तैयार रहते थे. जिस समय बोलना, लिखना–पढ़ना गुनाह था ऐसे कठिन समय में भी लेखकों ने यह बीड़ा अपने सर पर उठा रखी थी. बग़ैर भयभीत हुये वे जनता को जागरुक करने व आजादी को हासिल कर लेने की ओर प्रतिबद्ध करने में बड़ी भूमिका निभाई.

3.3 रंगमंच, नुक्कड़ सभाएं और अभिव्यक्ति का सवाल

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई को आगे बढ़ाने में रंगमंच और नुक्कड़ सभाओं का बड़ा योगदान था. दरअसल, जनता के बीच नाटकों व सभाओं का प्रभाव कहानियों व उपन्यासों से अधिक पड़ता था. नाटक दृश्य विधा होने के कारण जन सामान्य के भीतर गहरे पैठ जाते थे. ब्रिटिश हुकूमत ने इन पर भी कड़ा प्रतिबंध लगाया. उसने अभिव्यक्ति के हर माध्यम पर पहरे बैठा

रखे थे. फिर भी आजादी के सच्चे सिपाही इस खतरे का सामना कर ब्रिटिश सरकार को कड़ी चुनौती दे रहे थे. औपनिवेशिक भारत में जन–जागृति के लिए अनगिनत नाटक रचे गए. पाबंदियों के बावजूद उनका मंचन होता रहा. देश की दुर्व्यवस्था का कटु यथार्थ सामने रखने का सिलसिला चल पड़ा था. ऐसे समय में पाबंदियों का खेल हर भाषा में रची रचना व रचनाकार के साथ जारी था. शासन की पोल खोलने व जागरण का संदेश प्रसारित करने के लिए नाटक महज हिन्दुस्तान में ही नहीं रचे गए वरन विश्व भर में ऐसे प्रयत्न बहुत पहले से जारी थे. अत्याचारी शासकों के विरुद्ध पहले भी तमाम नाटक रचे गए तथा रंगमंच के माध्यम से उनका उद्देश्य प्रसारित किया गया. हिंदुस्तान में रंगमंच व नाटकों पर लगे सेंसरशिप को देखने से पूर्व विश्व के दूसरे भागों में इन पर लगी पाबंदियों की संक्षिप्त जानकारी लेना आवश्यक है. ''एरिस्टोफेन्स एथेन्स के श्रेष्ठ कवि व नाटककार थे. पुरानी कुरीतियों तथा विकृतियों पर चुभते व्यंग्य को चुस्त नाट्य–कला में गुथने की प्रतिभा उन्होंने अर्जित कर ली थी. राजनेता, विशेषकर क्लीऔन जैसे चालबाज राजनेता उनके क्रूर प्रहारों से न बच सके. सम्भवतः इसलिए उन्हें राजदंड का शिकार होना पड़ा. राजनैतिक कारणों से उन्हें देश से निष्कासित कर दिया गया था. एस्किलस एक अच्छा, ऊँचे दर्जे का नाटककार था. एस्किलस को भी राजनीति का प्रकोप सहना पड़ा, उसकी निष्कासन में मृत्यु हुई. सत्ता की प्रभुता कहीं भिन्न नहीं है. दोनों नाटककार को सत्ता का प्रकोप सहना पड़ा. दोनों ग्रीक थिएटर की महती प्रतिभाएँ हैं जिन्हें अपने निष्पक्ष होने और साहसी लेखन का इतना कड़ा दंड मिला.''[50]

स्वयं शेक्सपियर को भी पाबंदी का दंश भोगना पड़ा था. सत्येंद्र कुमार तनेजा लिखते हैं, ''रिनेसाँ का प्रथम चरण : 16 वीं–17 वीं शताब्दी, इंग्लैंड में शेक्सपियर जैसा महान नाटककार हुआ. यह महारानी एलिजाबेथ–1 का ज़माना था. राजसत्ता के प्रतिनिधि के नाते लॉर्ड चेम्बरलेन एक ऐसा वरिष्ठ अधिकारी नियुक्त किया गया जिसे समाज में शान्ति एवं मर्यादा का संरक्षक कहा जा सकता है. राजद्रोह या अनैतिक या अश्लील प्रदर्शन जैसी वारदातों पर वह कड़ी नजर रखता था. नाटक के प्रदर्शन से पूर्व लॉर्ड चेम्बरलेन की लिखित अनुमति लेना अनिवार्य होता था. लॉर्ड चेम्बरलेन के सारे निर्णय उनकी वैयक्तिक पसन्द–नापसन्द पर निर्भर करते थे. किसी रचना या प्रदर्शन पर पाबन्दी या सेंसरशिप को लेकर कोई नियम–कानून या मापदंड नहीं बने थे इसलिए सेंसरशिप का पूरा इतिहास लॉर्ड चेम्बरलेन की स्वेच्छाचारिता पर चला था. नाटक की गुणवत्ता या नाटककार की महत्ता की किसी को परवाह न थी. 1597 में लिखित शेक्सपियर के नाटक 'द ट्रेजिडी ऑफ किंग रिचर्ड–द सेकेंड' का घटनाक्रम उस समय की राजशाही, उससे जुड़ी उठापटक से सीधी सम्बद्ध था. एक षणयन्त्र के तहत राजा रिचर्ड को गद्दी से हटाने का विद्रोह सफल हो गया. ऐसी ही स्थितियों से महारानी एलिजाबेथ–1 को गुजरना पड़ा. राजनैतिक आशंकाओं से अस्थिर महारानी ने

इस नाटक के दो दृश्यों को बदलने के आदेश दिए. पाबन्दी के बावजूद पुराने नाट्यलेख के 40 प्रइवेट प्रदर्शन हुए. शेक्सपियर ने सुधार किए. 1602 में लिखित शेक्सपियर की विश्वविख्यात ट्रेजिडी 'हैमलेट' के नाट्यालेख और प्रदर्शन दोनों पर समय–समय पर पाबन्दियां लगती रहीं.''[51] इसी प्रकार इंग्लैंड के ही एक अन्य नाटककार हेनरी फीलि्डंग के संलन पर भी पाबंदी लगी. ''18 वीं सदी में इंग्लैड के एक श्रेष्ठ प्रतिष्ठित नाटककार हुए थे हेनरी फीलि्डंग जिन्होंने अपने समय में राजनीति एवं राजनेताओं में व्याप्त भ्रष्टाचार और उससे जुड़े काले कारनामों को आधार बना कर चुभने वाले व्यंग्य नाटक लिखने की कला में दक्षता हासिल कर ली थी. फीलि्डंग ने 1736 में 'पैस्क्वीन : ए ड्रमैटिक स्टायर ऑन द टाइम्स' नामक नाटक लिखा. इसमें दो ऐसे नाटक– 'द इलेक्शन' तथा 'द डेथ ऑफ कामनसेंस' संकलित किए गए, इसमें राजनैतिक हेराफेरी के मसलों को उठाया गया और जो सीधे प्रधानमन्त्री (रॉबर्ट वालपोल) को लपेट में लेते थे. इन नाटक के लेखल और प्रदर्शन से वालपोल तिलमिला उठे. वालपोल ने कुछ चुस्ती और कुछ जोड़–तोड़ से जल्दी यह कानून पास करव लिया–'एक्ट ऑफ 1837' जिसके तहत नाटक के सार्वजनिक प्रदर्शन की शर्तें बहुत कड़ी हो गईं.''[52]

फ्रांस में भी सत्ता की मुखालफत करने वाले नाटककारों के नाटकों पर पाबन्दी लगी. इनके विषय में सत्येंद्र कुमार तनेजा लिखते हैं, ''आश्चर्य है, बौ0िक जागृति और आधुनिक मूल्य पद्धति के इस युग में मोलियर की श्रेष्ठ कॉमेडी है 'तारतूफ' जिस पर 1664 में प्रतिबंध लगा.''[53] अभिव्यक्ति पर पाबंदी के शिकार हेनरिक इब्सन भी हुए. ''आधुनिक नाट्य–लेखन क`जनक हेनरिक इब्सन के प्रसिद्ध नाटक 'घोस्ट' (1881) के सार्वजनिक प्रदर्शन पर इसलिए पाबंदी लगाई गई क्योंकि इस नाटक में विवाह प्रथा के प्रति अनादर–भाव दिखाया है और अनैतिक सम्बंधों पर एवं यौन–रोगों को समर्थन मिलता है.''[54] यही नहीं, जॉर्ज बर्नार्ड शॉ के नाटक भी आकाओं केगे न उतरे.. '' नाट्य–लेखन के क्षेत्र में इंग्लैंड की दूसरी विलक्षण प्रतिभा हुई जॉर्ज बर्नार्ड शॉ जिन्होंने इस कला में नए कीर्तिमान स्थापित किए. नाटककार के साथ–साथ वे एक अरसे तक रंग–समीक्षक भी रहे. उस दौर की पत्र–पत्रिकाओं में बर्नार्ड शॉ ने मूल्यांकन पद्धति के नाम पर लॉर्ड चेम्बरलेन के अराजक–निर्णयों के इतिहास की भर्त्सना की. 1894 में लिखे उनके नाटक 'मिसेज वारन्स प्रोफैशन' का 1902 में एक प्राइवेट प्रदर्शन हुआ, इस नाटक के सार्वजनिक प्रदर्शन पर 1926 तक रोक लगी रही.''[55]

नाटक व थिएटर के प्रभावशाली भूमिका को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता. जनता को जगाने के ये सशक्त माध्यम हैं. थिएटर नाटकों को जनता तक पहुंचाते रहे हैं.''फ्रांस के विख्यात समाजशास्त्री देविनॉद के अनुसार अपनी परिणति एवं परिणाम में थिएटर एक राजनैतिक कदम या

दखल है. थिएटर जीवन के यथार्थ को उठाता है, वह व्यवस्था या सत्ता को वस्तुस्थिति का दर्पण दिखाता रहता है. यह थिएटर की मूल प्रकृति है. सोवियत समाज के अन्तर्विरोध इस तथ्य की पुष्टि करते हैं.''[56] क्रूर शासकों को यह कैसे बर्दाश्त हो सकता है. नाटकों पर लगे प्रतिबंध के विषय में सत्येंद्र कुमार तनेजा की राय यह है कि ''विश्व के विभिन्न देशों के 125 चुने नाटक ऐसे रहे हैं जिन पर किसी–न–किसी प्रकार की पाबन्दी लगाई गई. यह संख्या प्रमाणिक नहीं है, पाबन्दी लगे नाटक या प्रस्तुतीकरणों की वास्तविक संख्या कहीं अधिक होगी. इन नाटकों या प्रस्तुतीकरणों पर प्रतिबंध लगाने के आधार या कारण में कोई तर्क–पद्धति या औचित्य को ढूँढ़ना व्यर्थ होगा. कानून के होने या न होने का भी कोई महत्व नहीं है. अधिकांश निर्णय मनमाने ढंग से लिए गए जिनके मूल में वैयक्तिक हित या अहित या सत्ता की सुरक्षा जैसी वृत्तियाँ काम करती रहीं. आश्चर्य यह है कि यह सिलसिला किसी शासन प्रणाली में रुका नहीं.''[57] पाबंदी का खेल विश्व भर में उफान पर था. भला हिंदुस्तान इससे अछूता कैसे रह सकता था, जबकि यहां साम्राज्यवादी शक्ति का वर्चस्व था. ऐसे समय में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की कल्पना व्यर्थ थी.

हिंदुस्तान में अंग्रेजों के अत्याचार की कहानी लेकर अनेक नाटक रचे गए. लेखकों को कई बार अपने नाम गुप्त रखने पड़ते थे. अंग्रेजों के क्रूर राज को माध्यम बना कर लिखने वाले लेखकों के बारे में सत्येंद्र कुमार तनेजा 'सितम की इन्तिहा क्या है' पुस्तक में लिखते हैं, ''1857 का जन–संघर्ष कोई आकस्मिक घटना न थी और इस प्रवाह में 1859–60 में हुआ नील–विद्रोह अचानक उठा कोई उबाल न था. बंगाल के नील–प्लांटरों द्वारा रैयत पर बरसों से हो रहे जुल्म की वस्तुतः यह आक्रामक अभिव्यक्ति थी. यह प्रतिरोध बढ़ता ही गया, इस जन–आंदोलन के दबाव में आ कर ब्रिटिश सरकार ने 1860 में एक जांच कमीशन का गठन किया ताकि असलियत सामने आ सके. सरकारी मुलाज़िम और इसी इलाके के गांवों में खूब घूमे दीनबंधु मित्र की मनोभूमि का विकास इन्हीं परिस्थिति में हुआ.''[58] उन्होंने गोरे अत्याचारी शासकों की सचाई को अपने नाटक 'नील–दर्पण' में सामने रखा. इस नाटक ने अंग्रेजी शासकों में खलबली मचा दी. इसे जब्त कर लिया गया. इसके मंचन पर रोक लगाई गई. ''नील प्लांटरों द्वारा रैयत के बर्बर शोषण की विधि और प्रकार को 'नील–दर्पण' का माध्यम बना कर दीनबंधु ने एक ऐतिहासिक प्रयोजन भी सिद्ध किया है, उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के निरंकुश शासन तंत्र और धूर्त दुष्ट–वृत्ति को बेनकाब किया है, उन्होंने, दरअसल आने वाले रचनाकारों के लिए प्रतिरोध का मार्ग प्रशस्त किया है.''[59] इस नाटक ने हलचल मचा दी फलतः अंग्रेजी सरकार ने इस पर प्रतिबंध लगा दिया. इसके मंचन भी हुए. ''नेशनल थिएटर की पहल पर 'नील–दर्पण' का प्रथम सार्वजनिक प्रदर्शन 1872 में हुआ. 1875 में ग्रेट नेशनल थिएटर ने उत्तर – भारत के कुछ नगरों– दिल्ली, मथुरा, वृन्दावन, आगरा का दौरा

करते हुए लखनऊ में इसके प्रदर्शन किए. लखनऊ–प्रदर्शन में क्षेत्रमणि–बलात्कार प्रसंग के अवसर पर जब तोराप ने रोज़ को पीटना शुरु किया तब कुछ यूरोपियन दर्शक बौखला उठे और बेकाबू हो गए. प्रदश्नन को रोकना पड़ा. भगदड़ मच गई, सेना बुलानी पड़ी. 'नील–दर्पण' पर पहला विवाद उठा था. 1861 में–उसके लिखित पाठ पर और दूसरा उठा 1875 में उसके प्रदर्शन पक्ष को लेकर. ब्रिटिश सरकार सतर्क हो गई. उसे स्पष्ट हो गया कि नाट्य–लेखन और नाट्य–प्रदर्शन की कितनी अप्रत्याशित संभावनाएं है और उसके कितने खतरे हो सकते हैं.''[60]

इस नाटक ने लोगों के भीतर चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. ''नील–दर्पण' के प्रकाशन और लम्बे अरसे तक चली परिचर्चा ने बंगला नाट्य जगत में प्रतिरोध की नई विधि का सूत्रपात किया. वातावरण में आत्मविश्वास की लहर आ गई. दर्पण नाटकों की परिपाटी –सी चल पड़ी जिसमें 12 नाटक लिखे गए, निम्न उल्लेखनीय हैं– चौ–कौर–दर्पण , 'भारत–दर्पण', 'जमींदार–दर्पण', 'बंग–दर्पण'.''[61] नाटकों ने लोगों में जबर्दस्त चेतना जगाई. साम्राज्यवादी शक्तियां यह कैसे स्वीकार कर सकती थीं. उसने नियम पास करके इनके मंचन पर रोक लगा दी. ''ड्रामैटिक एक्ट' लागू हो जाने के बाद ब्रिटिश सरकार नाटक के प्रदर्शनों के प्रति कड़ी हो गई, वह सख्ती से पेश आने लगी. उसके लिए बंगला थिएटर के कटु अनुभवों को भुलाना आसान न था. मौजूदा सूरत में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध अब सीधे आवाज उठाने के रास्ते बंद हो गए. थिएटर पर इसका असर पड़ा परंतु दमन की कोशिश सदा प्रतिक्रियामूलक सिद्ध हुई है. प्रतिरोध सिलसिला रुका नहीं. ''[62] अंग्रेजों की इस नीति का शिकार खाडिलकर द्वारा लिखित नाटक 'कीचक–वध' भी हुआ. इस नाटक में महाभारत के पात्रों के माध्यम से रचनाकार ने क्रांतिकारी तरीके से आजादी पाने पर बल दिया है. ''कीचक–वध' नाटक का लक्ष्य ब्रिटिश शासन की नृशंस–वृत्ति का चित्रण करना है. मातृभूमि की तरह शीलवान है द्रौपदी. बंग–भंग ऐसे हैं जैसे सैरन्ध्री(द्रौपदी) का कोई शील भंग कर रहा है. यह दुस्साहस कीचक अर्थात् लॉर्ड कर्जन ने किया है. इस विकट स्थिति का सामना कर रहे धर्मराज नरमदल को व्यंजित करते हैं. मातृभूमि की स्वतंत्रता या द्रौपदी के शील की रक्षा सशस्त्र क्रांतिकारी भीम करता है.''[63]

देश भक्ति की भावना से अनुप्राणित नाटकों के मंचन में थिएटरों ने बहुत सहयोग दिया. ''हिन्दी–प्रदेशों में स्वदेश–प्रेम के बहते जनाधार ने दर्शक–समाज में अपेक्षाओं को जगाया. स्वाधीनता की इस उमड़ती लहर को पारसी थिएटर कैसे अनदेखा कर सकता था. इस दिशा में पारसी नाटककारों ने सराहनीय पहल की. अपनी उल्लेखनीय उपलब्धियों के कारण आग़ा हश्र कश्मीरी पारसी नाट्य'–जगत के प्रतिष्ठित पुरुष रहे हैं. अपने नाटकों में देश–प्रेम के मुद्दे को

उठाने में वे स्पष्ट एवं अग्रणी रहे. 20 वीं सदी के संभवतः वे पहले पारसी नाटक कार हैं जिन्होंने 1902 में आजादी की आवाज़ को बुलन्द किया. 'भारतमाता की पुकार' (1902).शीर्षक को सार्थक करते हुए वे भारत माता की अकांक्षा को यूंही प्रगट करते हैंः

'ओ दुनियां वालों, हिन्द के आते हैं दीवाने,

हम आए हैं माता के सर पर ताज पहनाने

यह मुल्क हिन्दुस्तान, हमारा है हमारा।''[64]

नाटककारों ने बड़ी चतुराई से प्रतीकों को माध्यम बना कर अंग्रेजों के क्रूर षासन की पोल खोली. ''पारसी हिन्दी थिएटर के अग्रणी नाटककार राधेश्याम कथावाचक ने पहले नाटक 'वीर–अभिमन्यु' (1914) की सफलता से प्रमाणित कर दिया कि गूढ़–विधी के कलात्मक प्रयोग में उन्होंने कितनी दक्षता हासिल की. पौराणिक आख्यान को नाटकीय आकर देते समय वे इस बात कें लिए सचेत रहते हैं कि राष्ट्रीय भावना का परिप्रेक्ष्य कहां कैसे दिया जा सकता है.''[65] इसके अलावा इस दिशा में अनेक रचनाकारों ने जी–जान से सहयोग किया. ''राजनैतिक चेतना के अन्य नाटककार थे–मशहर अम्बालवी का 'गरीब हिंदुस्तान उर्फ स्वदेशी नाटक', रियाज का –शहीदे वतन', अज़हर का 'बेकारी', यह सूची छोटी नहीं है परंतु इस धारा में सबसे अग्रणी नाटककार रहे किशनचंद्र ज़ेबा जिन्होंने 1921–27 की अवधि में एक साथ आठ राजनैतिक–जागृति के नाटक लिख डाले. गांधी व असहयोग आन्दोलन ने ज़ेबा को इस कदर उद्वेलित किया कि उन्होंने पारसी का व्यावसायिक नाट्य–लेखन छोड़ कर राजनीतिक नाटकों का मार्ग अपना लिया, उनके प्रमुख नाटक हैं– 'भारत दर्पण', 'ज़ख्मी पंजाब', 'देश दीपक', 'ग़रीब हिंदुस्तान',. सरकार की कठोर दमन नीति को ध्यान में रखें तो ज़ेबा के साहस की प्रशंसा करनी होगी जिन्होंने लगातार अपने इतने नाटकों में प्रतिरोध की आवाज बुलंद रखा.''[66]

राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में लगे हुए लोग कई रास्ते निकाल कर अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई जारी रखा. ''रामलीला को निमित्त बनाकर कभी वे जालियांवाला बाग़ की झांकियां निकालते, कभी रामलीला के कलाकारों को खद्दर की वेशभूषा पहना कर उनमें देश प्रेम की नई स्फूर्ति पैदा करते थे. अपने नाटक 'सीय–स्वयंवर' में युवा पीढ़ी को सचेत करने वाली निम्न टिप्पणी इस प्रवृत्ति की एक और मिसाल है–'ब्रिटिश कूट राजनीति के समान कठोर इस धनुष को तोड़ना दूर रहा, वीर भारतीय युवा इसे टस–से–मस न कर सके, यह अत्यंत दुख का विषय है,' माधव शुक्ल के नाटकों पर समय–समय पर प्रतिबंध लगाये गए, परन्तु यहां भी सेंध लगाने में वे पीछे नहीं रहे. अपने

नाटकों के शीर्षक बदल कर अधिकारियों को चकमा देने में वे सफल होते थे, जैसे –'महाराणा प्रताप8 को 'भामाशाह की राजभक्ति', 'महाभारत–पूर्वार्ध' को 'कौरव–कलंक', 'मेवाड़–पतन' को विश्व प्रेम' के परिवर्तित नाम देकर प्रस्तुत किया गया. नाटक लिखना, नाटक खेलना, प्रदर्शन के दौरान नाटक के अंतर्पाठ के स्तर पर राष्ट्रीय स्वर जोड़ना, नाटक के प्रस्तुतिकरण से समाज में जन–जागृति लाना ओर उनको आजादी की लड़ाई के लिए उत्प्रेरित करना, माधवशुक्ल के जीवन एवं लेखन का एकमात्र लक्ष्य रहा है.''[67]

जनता को जागरुक करने में नाटकों की बड़ी भूमिका रही. इसके माध्यम से जनता तक उनका संदेश सीधे पहुंचता था. ब्रिटिश सरकार ने अभिव्यक्ति के सारे माध्यमों पर बंदिशें लगाई थीकृ सभाओं, जुलूसों, जलसों पर दमन चक्र चलाना आम बात हो गई थी. जालियांवाला बाग हत्याकंड किससे छुपा है!प्रतिबंधित पुस्तक 'आगरा सत्याग्रह संग्राम' में इस बात का विवरण है कि सभाओं पर जबर्दस्त प्रतिबंध लगाई जाती थी. ''इसी दिन फिरोजाबाद में दफा एक सौ चवालीस लगा कर सभा करने तथा जुलूस निकालने की मनाही कर दी गई. कांग्रेस कमेटी के सभापति पंड़ित श्री कृष्णदत्त पालीवाल की आज्ञानुसार श्रीयुत् श्री भगवान सेवक और पंड़ित रामचंद्र पालीवाल ने इस हुक्म की कुछ भी परवाह न करके सभा की, उसमें झण्डा गान गाया तथा व्याख्यान दिए. फलस्वरुप दोनों गिरफ्तार कर लिये गये और दूसरे दिन दोनों को बिलकुल गैर कानूनी तरीके से छः छः महीने की सजा सुना दी गयी.''[68]

सभा करने पर पुलिस सत्याग्रहियों को पीटती, जुर्माने करती और लागों को गिरफ्तार कर जेल में डाल देती. सभाओं को धारा 144 के तहत गैर कानूनी घोषित किया गया था. ''इस दिन कांग्रेस की तरफ से एक आम सभा होने वाली थी. अधिकारियों ने एक सौ चवालीस धारा के अनुसार हुक्म दिया कि सभा न हो. सत्याग्रही सैनिकों ने उस हुक्म को ठुकरा दिया. तत्कालीन प्रथम सेवक श्री जगनप्रसाद जी रावत उस दिन धोलपुर स्टेशन पर पण्डित श्रीकृष्ण दत्त पालीवाल से जो उस समय झांसी ले जाये जा रहे थे, मिलकर स्वयं श्रीमती परवती देवी तथा कुछ अन्य स्वयंसेवकों को लेकर घटना स्थल पर पहुंचे. पुलिस ने उन्हें रास्ते में ही रोकना चाहा पर ये लोग नहीं रुके. ऐत्मादपुर में कोइ सवारी न मिली इसलिए ये लोग पैदल ही मोहमूदाबाद पहुंचे. वहां पुलिस गांव के तमाम रास्तों को घेरे खड़ी थी. उसने इन्हें रोका पर ये लोग नहीं रुके और गांव की हद में पहुंच कर सरकार की आाज्ञा के विरुद्ध व्याख्यान देने लगे. पुलिस ने व्याख्यान देते हुए रावत जी को धक्के देकर हटाना चाहा पर वे न हटे, तब वे गिरफ्तार कर लिये गये.''[69]

सभाओं को रोकने के लिए पुलिस ने आने–जाने वाली गाड़ियों पर भी प्रतिबंध लगाये. उनका चालान किया. सभाओं में मार–पीट करने के बाद डाक्टरों को स्वयं–सेवकों के इलाज करने से रोका. ''इस पैचाशिकता का यही अंत नहीं हुअ. जिस डाक्टर ने दौनेरिया तथा स्वयं–सेवकों की मरहम–पट्टी की उससे डिस्ट्रिक बोर्ड के चेयर मैन ने जवाब तलब किया कि वह कांग्रेस में हिस्सा लेने के जुर्म में नौकरी से क्यों न बरखास्त कर दिया जाये. डिस्ट्रिक मजिस्ट्रेट ने चेयर मैन को एक चिट्ठी लिख कर हिदायत की कि वह बोर्ड के जूनियर वाइस चेयर मैन् पण्डित इन्द्रजीत शर्मा से जवाब तलब करे कि उन्हें बाह के स्कूल की इमारत में जांच कमेटी की मीटिंग करने देने का क्या अख्तियार है? पुलिस ने लारी वालों को दबाया कि वे कमेटी मम्बरों को अपनी लारियों में बिठा कर बाह न जावें.

घटना के आठ नौ दिन बाद जब सब बनिए वहां से चले गये तब एक सौ चवालीस दफा के मुताबिक जरार में सभा करना जुर्म करार दिया गया. जब कमेटी गवाहियां ले रही थी तब खुफिया और यूनिफार्म में पुलिस वाले गवाहों को डरा कर उन्हें गवाही देने से रोकने के लिए वहां खड़े उनके नाम नोट करते थे.''[70]

पुलिस सभा करने वाले स्वयं–सेवकों के साथ अमानुषिक अत्याचार करती थी. बावजूद इसके देशभक्तों की टोली आगे बढ़ने से न कतराती थी. ''सत्याग्रहियों ने एक सौ चवालीस दफा के खिलाफ सत्याग्रह किया. स्वयं–सेवकों के जत्थे उस आज्ञा का उल्लंघन करने के लिए जाते थे पुलिस वाले उन्हें लौट जाने के लिए कहते थे, वे नहीं मानते थे, तो पुलिस के और चौधरी के गुण्डे उन पर अमानुषिक अत्याचार करते थे. भिलास के लिए तेइस जून को जब छः सत्याग्रहियों का जत्था पुलिस के कहने पर भी न लौटा तब एक पुलिस वाले ने एक स्वयं–सेवक के थप्पड़ मारा और सिग्नल के मिलते ही सब वीरों पर लात घूंसों और लाठियों की मार पड़ने लगी. उन्हें पकड़ कर पानी और कीचड़ के गएढे में दबोचा गया. बेहोश होने पर खींच कर पानी से बाहर डाल उनके तमाम कपड़े उतार लिए गए और उन्हें नंगा करके सरकार की जय बोलने को कहा गया! इनकार करने पर उनके मुंह में कीचड़ भर दी गई! इन सब दृश्यों को सब इंसपैक्टर तथा अन्य पुलिस अफसर देख कर हंसते रहते थे.''[71] कहना न होगा कि देशभक्तों के ऊपर होने वाले अत्याचारों की कोई सीमा न थी. जुल्म करने के नए नए तरीके ईजाद किए जाते. स्वयं–सेवकों को सताया जाता, बात–बात में जुर्माने लगाये जाते, गिरफ्तारियां होती, तलाशी ली जाती. अंग्रेजों ने अभिव्यक्ति के सारे रास्तों परपबंदियां लगा रखी थी. बावजूद इसके जुझारु व्यक्तियों ने अपनी जान की बगैर परवाह किए इस संघर्ष को आगे बढ़ाते रहे.

[1] हिंदी प्रत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं–2011 पृ. 40
[2] वही, पृ. 38
[3] हिंदी प्रत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं–2011 पृ. 54
[4] वही, पृ. 56
[5] वही, पृ. 94
[6] वही, पृ. 84
[7] हिंदी प्रत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं–2011 पृ. 121
[8] वही, पृ. 121
[9] वही, पृ. 122
[10] वही पृ. 126
[11] हिंदी प्रत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं–2011 पृ. 128
[12] वही, पृ. 128
[13] वही, 132
[14] वही, पृ 133
[15] वही, पृ 133
[16] वही, पृ. 134
[17] हिंदी प्रत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं–2011 पृ. 137
[18] वही, पृ. 152
[19] वही, पृ. 154
[20] वही, पृ. 130
[21] वही, पृ. 156
[22] हिंदी प्रत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं–2011 पृ. 157
[23] वही, पृ 170–171
[24] होम पोलिटिकल फाइल 230/1932 पृ. 6 भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
[25] गवर्नमेंट नोटिफिकेशन, 3391/8–1684/1931(होम पोलिटिकल फाइल 117/1932 पृ.258, राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली)
[26] होम पोलिटिकल फाइल 149/1932, 207/1932, 2081/1932, 48/4/1932. राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
[27] पुलिस फाइल 1205/1932, पृ. 29 उत्तर प्रदेश अभिलेखागार, लखनऊ
[28] हिंदी प्रत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं–2011 पृ. 203
[29] होम पोलिटिकल फाइल 117/1932, पृ. 204, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
[30] 37/34/1932, पृ 9, सीरियल नं. 5, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
[31] हिंदी प्रत्रकारिता का इतिहास : जगदीश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं–2011 पृ. 205
[32] वही, पृ. 205
[33] स्वदेश अंक 25 जून 1925
[34] होम पोलिटिकल फाइल 37/34/1939, पृ. 9 सीरियल नं. 5 राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
[35] श्रीवास्तव, नवजादिकलाला, , सं मैनेजर पाण्डेय : पराधीनों की विजय यात्रा, स्वराज प्रकाशन, संस्करण : 2014, पृ. 10
[36] वही, पृ. 10
[37] शशिधरन, आर. : स्वतंत्रता और साहित्य, भूमिका
[38] श्रीवास्तव, नवजादिकलाला, , सं मैनेजर पाण्डेय : पराधीनों की विजय यात्रा, स्वराज प्रकाशन, संस्करण : 2014, पृ. 13
[39] राय, रुस्तमः प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–1, राधाकृष्ण, सं 1999 पृ.69
[40] वही, पृ. 70
[41] आगरा सत्याग्रह संगाम, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 16
[42] वही, पृ. 16
[43] वही, पृ. 16
[44] आगरा सत्याग्रह संगाम, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 16
[45] वही, पृ. 16
[46] देउस्कर, सखाराम, अनु.बाबूराव विष्णु पराड़कर : देश की बात, नेशनल बुक ट्रस्ट, सं : 2010 पृ. 8

[47] आगरा सत्याग्रह संगाम, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 17
[48] वही, पृ. 17
[49] तनेजा, सत्येंद्र कुमार : सितम की इंतिहा क्या है ? , राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, सं 2010, पृ. 342
[50] तनेजा, सत्येंद्र कुमार : सितम की इंतिहा क्या है ? , राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, सं 2010, पृ. 15
[51] तनेजा, सत्येंद्र कुमार : सितम की इंतिहा क्या है ? , राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, सं 2010, पृ.15–16
[52] तनेजा, सत्येंद्र कुमार : सितम की इंतिहा क्या है ? , राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, सं 2010, पृ. 16
[53] तनेजा, सत्येंद्र कुमार : सितम की इंतिहा क्या है ? , राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, सं 2010, पृ. 17
[54] तनेजा, सत्येंद्र कुमार : सितम की इंतिहा क्या है ? , राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, सं 2010, पृ. 17
[55] तनेजा, सत्येंद्र कुमार : सितम की इंतिहा क्या है ? , राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, सं 2010, पृ. 18
[56] तनेजा, सत्येंद्र कुमार : सितम की इंतिहा क्या है ? , राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, सं 2010, पृ. 19
[57] तनेजा, सत्येंद्र कुमार : सितम की इंतिहा क्या है ? , राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, सं 2010, पृ. 19
[58] तनेजा, सत्येंद्र कुमार : सितम की इंतिहा क्या है ? , राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, सं 2010, पृ. 20
[59] वही, पृ. 21
[60] वही, पृ. 22
[61] वही, पृ 22
[62] वही, पृ. 23
[63] वही, पृ. 24
[64] वही, पृ 25
[65] वही, पृ. 25
[66] वही, पृ. 26
[67] वही, पृ 27
[68] आगरा सत्याग्रह संगाम, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 4
[69] वही, पृ. 11
[70] वही, पृ 13
[71] वही, पृ. 14

चौथा अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य में राष्ट्र मुक्ति का सवाल

4.1 प्रतिबंधित साहित्य में नवजागरण की चेतना

4.2 प्रतिबंधित साहित्य में स्वतन्त्रता की धारणा

4.3 प्रतिबंधित साहित्य में दमनकारी तंत्र का प्रतिरोध

4.4 प्रतिबंधित साहित्य में गुलामी से मुक्ति की अकांक्षा

चौथा अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य में राष्ट्र मुक्ति का सवाल

4.1 प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य में नवजागरण की चेतना

हिन्दुस्तान में जागृति के सन्देश प्रसारित करने में प्रतिबंधित रचनाओं ने प्रमुख भूमिका निभाई. जिस दौर में लेखन जारी रखने पर अपराधी साबित किए जाने का खौफ था, उस समय बेबाकी से जागरण की लहर को आगे बढ़ाने में रचनाकारों ने अहम योगदान दिया. लेखनी के माध्यम से देश के कोने–कोने में चेतना फैलाने की कोशिश की गई. देश की समस्या मात्र पराधीनता ही न थी वरन् अपने ही लोगों द्वारा बनाई गई शोषणकारी नीतियों की बदौलत आम जन–जीवन अत्यंत त्रस्त था. ऐसी दशा में जागरण लाने के जितने भी प्रयास हुए , वे सभी अनेक बिन्दुओं (राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक) से जुड़े थे. 'आज का भारत' में रजनी पाम दत्त स्वीकार करते हैं कि हिन्दुस्तान एक साथ अनेक समस्याओं से जूझ रहा था. वे लिखते हैं, ''हिन्दुस्तान की मूल समस्या राष्ट्रीय ही नहीं, सामाजिक भी है. हिन्दुस्तान की जनता साम्राज्यवाद को जो चुनौती दे रही है, उसका सीधा मतलब यह है कि मानव जाति का पांचवां हिस्सा विदेशी राज्य से मुक्ति चाहता है. यह मांग आजादी की राजनीतिक मांग का रुप ले लेती है, लेकिन उसके पीछे और बहुत सी बातें भी छिपी हैं. यह उस शोषण की व्यवस्था को चुनौती है जिसकी जड़ तो लंदन के बैंकों में है और जिसकी शाखाएं और पत्तियां हिंदुस्तान में लहलहा रही हैं. इनका आपस में अटूट सम्बंध है. एक को मिटाने के लिए दूसरे पर चोट करना जरुरी है. इस प्रकार हिंदुस्तान की समस्या का मूल रुप सामाजिक है.''[1]

रजनी पाम दत्त ने यह बात भले ही आर्थिक पक्ष को ध्यान में रख कर कहा, लेकिन यह बात सभी क्षेत्रों में सत्य है. इन सभी समस्याओं के खिलाफ चेतना के स्वर उठने लगे थे. जहाँ तक हिंदुस्तान में नवजागरण का प्रश्न है तो यह अंग्रेजों की देन नहीं थी. देश में जिस चेतना की लहर उठी थी उसका संबंध एक व्यापक प्रक्रिया से है. '1857 और नवजागरण के प्रश्न' पुस्तक में प्रदीप सक्सेना इस बात की चर्चा करते हैं कि इसका श्रेय यूरोप की औपनिवेशिक विजयों को ही नहीं दिया जा सकता. नवजागरण की व्याख्या और उसके लिए उत्तरदायी कारकों की चर्चा में कई महत्वपूर्ण ततवों को नजरंदाज कर दिया जाता है. वे लिखते हैं, ''यूरोप की औपनिवेशिक विजयों, लूट और जनसंहार के गर्भ में विकसित होती हुई औद्योगिक पूंजी ने अपनी प्रतिष्ठा के लिए 'सर्वोच्च मूल्यों' का सृजन अवश्य किया. लेकिन यह सुनिश्चित अर्थ में पुनर्जागरण नहीं है, वह पूंजीवाद की भव्यता का आवरण है, जिसका विशेष चरित्र है, जो न केवल अमेरिका के बल्कि स्वयं यूरोप के विकास क्रम में अप्रतिम है. वह जनतंत्र सभ्यता का शिखर, मनुष्य और समाज, जिस व्यक्तिवाद को

प्रतिष्ठित करता है, वह उस व्यक्ति को, नहीं उत्पन्न कर रहा, जिसे पुनर्जागरण ने पैदा किया था, जिसकी सीमा व्यक्तिवाद न थी और जिसका विकास 'फिलिस्टाइन' हो सकता था. आज साम्राज्यवाद समस्त रिनेसांस जगत के महान मूल्यों को निगल रहा है. आज विज्ञान की आड़ में; गणितीय–सामाजिक तर्क पद्धतियाँ जो विचार की हत्या में सर्वप्रमुख हैं, रिनेसांस की महान उपलब्धियों को नकारने का विराट प्रयत्न किया जा रहा है. क्यों, क्योंकि ये मूल्य साम्राज्यवाद के हितों का पोषण नहीं करते.''[2]

भारतीय नवजागरण भी अनेक सूत्रों से जुड़ा है. इस पर विचार करते समय इन सूत्रों को नेपथ्य में रख दिया जाता है. प्रदीप सक्सेना मानते हैं, ''भारतीय पुनर्जागरण को समझना ओर भी कठिन है. क्योंकि यह विविध देशों और एक राष्ट्रीयता वाले समाजों की अनेक विशेषताएँ एक साथ रखता है, उसमें संश्लिष्टता और जटिलता का अत्यंत रुप होना अनिवार्य है. अतः भारतीय पुनर्जागरण की भारतीय परिवेश में व्याख्या का कार्य अत्यंत पेचीदा हो गया है.''[3] भारतीय नवजागरण लाने का श्रेय राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, केशव चंद्र सेन आदि समाज सुधारकों को है. इन्होंने भारतीय संकीर्णताओं पर खुली चोट की और नवीन विचारों का स्वागत किया. सामाजिक व धार्मिक अनेक कुरीतियों के खात्मे का बीड़ा उठाया. जटिलताओं में फँसे जन–साधारण के लिए सहज मार्ग सुझाया. इनके प्रयास बहुत हद तक कारगर रहे. भारतीय समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों का खात्मा हुआ, मसलन ; सती–प्रथा का अन्त, विधवा–विवाह का समर्थन, बाल–विवाह का विरोध, जाति–प्रथा का विरोध इत्यादि. इस सम्बंध में मदनलाल वर्मा 'क्रान्त' लिखते हैं, ''भारतीय इतिहास में यहीं से नवजागरण युग का आरम्भ हुआ समझा जाता है जब राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द जैसे आध्यात्मिक, सामाजिक और शिक्षा–शास्त्री नेताओं के साथ–साथ हिन्दी–साहित्य के प्रथम पुरोधा भारतेन्दु हरिश्चंद्र का पदार्पण हुआ.''[4]

भारतीय नवजागरण में इन सभी का बहुत बड़ा योगदान है. किन्तु इसे यहीं तक सीमित कतई नहीं किया जा सकता. यह एक ऐसी चेतना थी जिसका जन्म अकस्मात नहीं हो गया था अपितु इससे तमाम महत्वपूर्ण बिन्दु जुड़े हुए थे. ''भारतीय नवजागरण का मसला अत्यंत गंभीर और संवेदनशील है. इस मसले की गम्भीरता यह है कि इसका परिप्रेक्ष्य आज तक राष्ट्रीय नहीं बन सका. राजा राममोहन राय से लेकर आज तक यह संज्ञा अपनी अंतर्वस्तु में संकीर्ण रही है और रुप में विस्तीर्ण. शब्द–बन्ध या रुप रहा–भारतीय नवजागरण अन्तर्वस्तु रही–बंगला नवजागरण, अतः भारत में जनवादी आन्दोलन के ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह परिप्रेक्ष्य असंगत है. जटिल इसलिए है कि इस

मामले के अनेक पहलू ऐसे हैं, जिनमें मार्क्सवादी, उदार जनतंत्रवादी, बदतरीन राष्ट्रवादी तक समान रुप से इसके रुप को ग्रहण कर रहे हैं जबकि अंतर्वस्तु सबकी भिन्न–भिन्न है. संवेदनशील इसलिए है कि भारतीय समाज में विघटन की प्रक्रिया को इससे बल मिल रहा है और आजादी की लड़ाई के दौरान जो मूल्य अर्जित किए गए थे, भारतीय जन को उससे वंचित किया जा रहा है. स्मरण रहे कि भारतीय जनगणों की आजादी की लड़ाई 1885 से शुरु नहीं हुई जैसा कि साम्राज्यवादी इतिहास–लेखन ऐसा मानता रहा है.''[5] आगे प्रदीप सक्सेना लिखते हैं, ''जिस तरह यूरोप के पुनर्जागरण में 'ब्लैक डैथ' को भुला दिया जाता है उसी तरह भारतीय पुनर्जागरण में कत्लेआम और लूट की आकस्मिक विपत्तियों को जिनसे अंग्रेजों को भारी मदद मिली. यहाँ यह देखना चाहिए कि भारतीय चिन्तक इस पुनर्जागरण और नवजागरण में 'प्रगति का विचार' छोड़ देते हैं. चूँकि 1857 यहाँ एक विभाजक रेखा है अतः उससे पूर्व का युग ही विवेचनीय है. इसी युग में वे मान्यताएँ जुड़ी हैं. पहली मान्यता ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चरित्र की, उसके द्वारा अंग्रेजों की प्रगतिशीलता की भ्रामक समझ से जुड़ी रही है. यह समझ आज भी बहस के केन्द्र में है. दूसरी मान्यता भी भ्रामक है यह अंग्रेजों के सुधार युग से सम्बंधित है और उसका संबंध इंग्लैण्ड के विकास से है.''[6]

वास्तव में जो तत्व साम्राज्यवादी हितों का पोषण नहीं करते, उन तत्वों को नजरंदाज करने की साजिश चल रही थी. भारतीय नवजागरण के सन्दर्भ में भी दरअसल यही हुआ. जब्त की गई रचनाएँ इस बात की गवाह हैं. इन रचनाओं में बिना लाग–लपेट के साम्राज्यवाद व जड़ताओं पर चोट किया गया था. इनके माध्यम से धर्म, जाति, स्त्री–पृरुष के भेद से परे जा कर संघर्ष को आगे बढ़ाया जा रहा था. प्रगति के मसले पर इनमें रुकावटों को झपट कर हटा देने की प्रवृत्ति थी. बात जहाँ तक प्रतिबंधित हिन्दी–साहित्य में नवजागरण की चेतना का है, तो इसने अंग्रेजों के तमाम विरोध के बावजूद भी हर स्तरों पर चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. ढहते मुगल वंश और उभरने के लिए प्रयत्नशील हिन्दू राजवंश के बीच अंग्रेजों ने दमनकारी नीतियों की बदौलत हिन्दुस्तान के हर क्षेत्रों को हस्तगत कर लिया था. उनके शोषण के आतंक से देश त्रस्त था. ऐसे समय में सेंसरशिप के बावजूद लेखकों ने विविध विषयों की ओर जनता का ध्यान दिलाने की कोशिश की. जब्त की गई रचनाओं में भारतीय जनता को जागृत करने की पुरजोर कोशिश दिखाई देती है. रचनाकारों का ध्यान देश की दुर्दशा पर था. इनल`खकों ने देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक सभी स्तरों पर अपने विचार प्रस्तुत किए. अंग्रेजों द्वारा बनाई जा रही रणनीति और देश को इनसे आजादी दिलाने के लिए की गई कोशिशों की पूरी समझ इन लेखकों के पास थी. एक ओर अंग्रेजों के बढ़ते शोषण को बेनकाब किया गया तथा दूसरी ओर उसका मुँहतोड़ जवाब देने के लिए जान की बाजी लगा कर नीतियाँ तैयार की गई. क्रांतिकारियों ने कठिन

परिस्थितियों में भी आजादी की चिंगारी को जलाए रखा. क्रांतिकारियों की नीतियाँ अलग थी ; खासतौर पर अहिंसावादियों से पूरी तरह. अंग्रेजों के क्रूर दमन के आगे अहिंसा की नीति व्यर्थ सी साबित हो रही थी. ब्रिटिश सरकार यदि वास्तव में भयभीत थी तो इन क्रांतिकारियों के दलों से.

अंग्रेजों के खिलाफ जो विरोध चल रहे थे, उनमें क्या–क्या बाधाएँ थी, जब्तशुदा रचनाओं में इसका भी उल्लेख है. क्रांतिकारी लेखकों का अहिंसावादियों से कोई विरोध न था, लेकिन इसमें मौजूद छद्मवेशियों से उन्हें बाधाओं का अवश्य सामना करना पड़ा. चंद युवक आजादी के लिए अपनी जान हथेली पर लेकर घूम रहे थे, ऐसे में वे पूरे देश का समर्थन चाहते थे. धनाभाव के होते हुए भी बड़ी मुश्किलों में भी अपने कदम आगे बढ़ाते रहे. अंग्रेजों द्वारा दी गई यातनाओं को सह पाना सभी के वश की बात न थी. यह बात सत्य थी कि अहिंसावादियों के साथ अनेक दोगले चरित्र वाले लोग भी शामिल हो गए थे, जो क्रान्तिकारियों के मार्ग में बाधाएँ बन कर सामने आते. अपनी रचना 'बन्दी–जीवन' में शचीन्द्रनाथ सान्याल ने लिखा है, ''शायद लेनिन ने कहा था कि प्रत्येक सच्चे बोल्शेविक के साथ कम से कम 39 बदमाश और 60 मूर्ख उनके दल में मिल गए थे और मैंने श्रद्धेय शरतचन्द्र चटोपाध्याय से सुना है कि देशबन्धु दास ने भी कदाचित् कहा था कि वकालत करते–करते हम बुड्ढे हो गए और इस बीच में हमको बड़े–बड़े धोखेबाजों से भी साबका पड़ा, किन्तु असहयोग आन्दोलन में हमने जितने धोखेबाज और दगाबाज आदमी देखे हैं, वैसे जिन्दगी भर में नहीं देखे थे !''[7]

प्रतिबंधित रचनाओं में महज राजनैतिक विसंगतियों पर ही नहीं लिखा गया, वरन सामाजिक स्तर पर भी सुधार लाने के प्रयास किए गए. देशवासियों को जागृत करना इन रचनाकारों का अंतिम उद्देश्य था. ये एक ओर अंग्रेजों के खिलाफ थे, तो दूसरी ओर अपने देश के शोषणकारी तत्वों के खिलाफ. उस समय समाज अनेक बुराईयों से ग्रस्त था. तरक्की पसंद लोग इनके खिलाफ आवाज उठा रहे थे. इन बुराईयों में सती–प्रथा प्रमुख थी. यह एक जघन्य प्रथा थी, जिसमें पति की मृत्यु के पश्चात स्त्री को उसकी चिता के साथ जिन्दा जला दिया जाता. इसमें उसकी इच्छा–अनिच्छा का कोई प्रश्न न था. इस प्रथा के अनुसार अनगिनत स्त्रियों को जीवित जला दिया गया. ''1818 और 1828 के बीच लगभग 8000 अग्निदाह तो शासकीय अभिलेखों में अंकित थे. 1818 से 1829 के बीच राममोहन राय ने अपने तीन लेखों में इस हिंसात्मक प्रथा की तीव्र भर्त्सना की. सती–प्रथा के विरुद्ध उन्होंने सर्वश्रेष्ठ धार्मिक पुस्तकों से प्रमाण प्रस्तुत किए और साथ ही समाज के लोगों से विवके एवं सहानुभूति से काम लेने की प्रार्थना की उन्होंने दलित हिंदू स्त्री–समाज की रक्षा का जोरदार समर्थन किया और पुरुषवर्ग में दया का अभाव देख कर उस पर गंभीर प्रहार किए.''[8]

4 दिसम्बर 1929 ई. को राममोहन राय व लॉर्ड विलियम बेंटिक के प्रयास से सती–प्रथा के विरोध में कानून पास अवश्य हुआ ; लेकिन यह बात भूलने योग्य नहीं है कि सती–प्रथा के चलन में अंग्रेजों का भी हाथ था. 'राधामोहन गोकुल की अप्राप्य रचनाएँ' पुस्तक की भूमिका में रुपा गुप्ता लिखती हैं, ''यह एक क्रूर और बर्बर समाज था जो ढोल बजा कर औरतों को जिन्दा जला देता था. राजा राममोहन राय जैसे करुण हृदय समाज सुधारक ने अंग्रेजों की सहायता माँगी. अंग्रेज शासकों ने सती निरोधक कानून बनाया, तब कहीं जाकर यह नृशंस और वीभत्स प्रथा बन्द हुई, किंतु यह जानना आश्चर्यजनक होगा कि स्वयं राजा राममोहन राय ने सती की कुप्रथा फैलाने के लिए अंग्रेजों को दोषी माना है. उनका स्पष्ट मतह ै कि स्त्री संबंधी पारंपरिक भारतीय कानून के अस्वीकार किये जाने के कारण ही बंगाल में यह कुप्रथा जन्मी. बंगाल में हिंदुओं के संपत्ति संबंधी अधिकार के लिए प्रचलित ग्रंथ 'दायभाग'(लेखक जीमूतवाहन) के अनुसार संपत्ति के मालिक की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र की भांति उसकी पत्नी का भी अधिकार होता है. संपत्ति के मालिक के भाई अथवा अन्य संबंधियों की अपेक्षा उसकी विधवा का दावा ही सही माना जाएगा. तत्पश्चात राममोहन राय ने ईश्वरचंद्र विद्यासागर की तरह बृहस्पति, याज्ञवल्क्य, कात्यायन, नारद, भीष्म और व्यास आदि के उद्धरणों से यह प्रमाणित किया कि संतान के पिता की मृत्यु के पश्चात उसकी माँ को मिलेगी ताकि उसे जीवनयापन में कठिनाई न हो, किंतु अंग्रेजों ने उन पुरोहितों और जमींदारों की स्वार्थ रक्षा के लिए जो सती–प्रथा के समर्थक थे ताकि बहुविवाह (यह भी अंग्रेजों की दुर्नीति के कारण बढ़ रहा था) के कारण संपत्ति के बढ़ गए दावेदारों को ठिकाने लगाया जा सके, पारंपरिक कानून को नकार दिया. राममोहन राय यह मत उन अंग्रेजी राज और अंग्रेजी शिक्षा के गुण गायकों के उस बहुप्रचारित तथ्य के परीक्षण की माँग करता है जिसके अनुसार भारतीय परंपरा ने स्त्रियों को कोई अधिकार नहीं दिया एवं अंग्रेजों ने बर्बर असभ्य भारतवासियों को सदैव प्रगति का प्रशस्त पथ दिखलाया.''[9] वास्तव में सती–प्रथा अत्यंत अमानवीय प्रथा थी. इसका अन्त होना अत्यंत आवश्यक था. ''राजा राममोहन राय का सबसे महत्वपूर्ण कार्य सती प्रथा का विरोध है. विधवाओं को उनके मृत पति के साथ जलाना ऐसा काम है जिसका दूर से भी कोई संबंध अंग्रेजी राज से नहीं दिखाई देता. फिर भी बंगाल में जो सती प्रथा का चलन था, उससे कहीं न कहीं अंग्रेजी राज भी जुड़ा था. सती प्रथा के एक समर्थक को उत्तर देते हुए राममोहन राय ने उस प्रथा का उल्लेख किया था जिसमें विधवाओं को चिता के बड़े–बड़े लककड़ों के साथ बाँध दिया जाता था. राममोहन राय का कहना था कि ऐसा केवल बंगाल में होता है ओर थोड़े दिन से हो रहा है. सारे देश में यह होता हो ऐसा नहीं है.''[10]

अब लोगों में चेतना का प्रसार होने लगा था. उनकी बदलती धारणा स्त्री शक्ति को पहचानने लगी थी. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की जब्त कहानी 'ऐसी होली खेलो लाल' में स्त्री शक्ति के महत्व का आकलन किया गया है. महासिंह से पद्मा की हुई बातचीत से ज्ञात होता है िकवह जौहर नहीं करना चाहती. वह पुरुषों की तरह युद्ध करना चाहती है.

''महासिंह कहते हैंः स्त्रियों को हमारे रण–प्रस्थान के पूर्व ही, 'जौहर' करना होगा और बच्चों को किसी प्रकार बचाकर सुरक्षित स्थान में भेजना होगा. इसलिए मैं तुम्हें यह संदेश सुनाने के लिए आया हूँ कि मुसकराती–मुसकराती आग में कूदने को शीघ्र ही प्रस्तुत हो जाओ.

'मैं ?' कुछ सोचती हुई पद्मा गंभीर भाव से बोली, 'मैं जौहर नहीं करुँगी.'

'फिर क्या करोगी ?'

'होली खेलूँगी !' मुसकराहट के साथ उत्तर मिला.

'किससे ?'

'विदेशी मुगल सेनापति से, विदेशी दानव से !.'' [11]

अपने प्रण के मुताबिक पद्मा वीर वेश में शत्रुओं का विनाश करती है. ''जब जरा प्रभात का प्रकाश फैला तो शत्रु से घोर युद्ध करते हुए महासिंह ने देखा उनसे थोड़ी दूर पर कोई तेजस्वी युवक राजपूत विचित्र तेजी और पराक्रम से शत्रुओं का संहार कर रहा था. महासिंह ने गद्गद् हो कर उसे बढ़ावा दिया, 'धन्य वीा ! तुम मेवाड़ के गौरव हो !' उस युवक योद्धा ने मानो अपने सैनिक की बातें सुन लीं. वह महासिंह की ओर देख कर मुसकराया, 'मैं कोई अपरिचित योद्धा नहीं– तुम्हारी पद्मा हूँ. महा भैया आज होली है न ! विदेशी सेनापति मेरी कृपाण–पिचकारी के प्रहार से यहीं कहीं रक्ताक्त पड़ा होगा. बड़ा आनंद है–बड़ा सुख है इस अनोखी होली...आह ! यह क्या ? आह !''[12]

पद्मा का जौहर न करना इस बात का संकेत था कि स्त्रियों के कदम अब दूसरी और सकरात्मक दिशा में उठ चुके थे. सती–प्रथा के अतिरिक्त समाज में बासल–विवाह भी होते थे. मान्यता यह थी कि कम उम्र में विवाह करने से माता–पिता को पुण्य की प्राप्ति होती है. समाज सुधारकों ने बाल–विवाह के विरुद्ध भी अपना आंदोलन छेड़ रखा था. ''राजा राममोहन राय की मृत्यु के बाद विद्यासागर ने कुंठित सामाजिक सुधारों की बहुमूल्य परंपरा को पुनर्जीवित किया और एक बार फिर

उन्हीं प्रश्नों को उठाया, जिनसे समाज अत्यधिक प्रभावित हुआ. यद्यपि वे ब्रह्म समाज के सदस्य न बने फिर भी तत्वबोधिनी वर्ग से उनकी घनिष्टता थी. व्यक्तिगत जीवन में सयनातनी और तरुण बंगाल के सपनों से भी अधिक आडंबरहीन इस विद्वान लेखक के कंधों पर ही, दलित वर्ग के हित में, राममोहन राय के सामाजिक जिहाद की विशिष्ट परंपराओं को आगे बढ़ाने का भार पड़ा. 1850 ई. में ही उन्होंने बाल–विवाह के विरुद्ध जोरदार आवाज उठा दी थी.''[13] इस बात के भी साक्ष्य प्रतिबंधित कहानियों में प्राप्त होते हैं. मुनीश्वरदत्त अवस्थी की ब्रिटिश काल में जब्त की गई कहानी 'तरुण तापसी' में पात्र सुबोध घोष अपनी कन्या का विवाह 8 वर्ष की ही उम्र में कर देते हैं. इसके पीछे उनके धार्मिक विचार थे, ''दारोगा जी के आठ साल की लड़की थी और दस वर्ष का लड़का था, घोष महाशय की स्त्री बड़ी धर्मभीरु थी. उन्होंने अपने स्वामी से कन्या का पाणिग्रहण इसी साल कर देने के लिए लाचार किया. कहा, नौवें वर्ष में या उसके बाद कन्या का ब्याह करने से पाप लगता है. सारांश यह कि उसका ब्याह गाँव के दस कोस की दूरी पर एक धनाढ्य के यहाँ हो गया.''[14]

उस युग में धर्म के नाम पर तमाम ऐसे कृत्य होते थे, जिसमें मानवता का अंश ही विलुप्त हो जाता था. नियम इतने कठोर थे कि उनसे उबरना अत्यंत कठिन था. धर्म रुढ़ियों में जकड़ा हुआ था. विभिन्न धर्मों के बीच आपसी कटुता विद्यमान थी. राजा राममोहन राय ने आपसी विभेद व रुढ़ियों का पुरजोर विरोध किया. इसके लिए रुढ़िवादी व्यक्तियों से उन्हें आलोचनाएँ झेलनी पड़ी. 'बंगला नवजागरण' पुस्तक में सुशोभन सरकार लिखते हैं, ''कलकत्ता में रहकर राममोहन राय ने 1815 ई. में आत्मीय सभा के रुप में अपने चारों ओर के अभिजात तथा नूतन मध्यवर्गीय उदारचेताओं की एक आंतरिक मंडली गठित की. नियमित वाद–विवाद सभा में उसी पद्धति का अनुसरण किया गया जो इसके पूर्व उनकी रंगपुर की मंडली में अपनाई गई थी, जहाँ वे कुछ समय तक अधिकारी रहे थे. अपने अदम्य साहस से उन्होंने प्राचीन हिन्दू धर्म में प्रचलित उन कुरीतियों का विरोध किया जिनकी समसामयिक विद्वान एवं विवेकशील व्यक्ति अनभिज्ञ जन साधारण के प्रति घृणा और अवहेलना के कारण उपेक्षा करते थे.''[15] यही नहीं, ''उन्होंने ईश्वरवाद की विवकेशीलता तथा पूर्ण व्यवहार्यता प्रतिपादित करते समय सहज बुद्धि तथा अन्य देशवासियों की धार्मिक रीतियों का हवाला दिया. उन्होंने मूर्तिपूजा की तर्कसंगत अव्यावहारिकता को भी स्पष्ट किया, जिसके परिणामस्वरुप ''सामाजिक संगठन विछिन्न'' तथा नैतिक सुधार में गतिरोध उत्पन्न होता है. उनके विचार से कोई भी विशेष धर्मग्रंथ त्रुटियों से रहित नहीं और यह मानव का जन्मजात अधिकार है िकवह परंपराओं से हटकर चले, विशेषकर यहि परंपराएँ 'सीधे अनैतिकता की ओर ले जाती हों और सामाजिक सुखों के मार्ग में बाधक बनती हों.' यह भारतीय नवजागरण के अग्रदूत का अविस्मरणीय संदेश था.

''[16] मुनीश्वरदत्त अवस्थी अपनी कहानी में रुढ़ियों के दुष्परिणाम का वर्णन करते हैं. सुशील की बहन की मृत्यु धार्मिक कारणों से होती है. वे लिखते हैं, ''इन्हीं दिनों उसे अपनी बहन की मृत्यु का समाचार मिला. मृत्यु के कारणों ने उसे पागल बना दिया. मृत्यु के दिनों वह गर्भवती थी और जिस दिन उसकी मृत्यु हुई उस दिन एकादशी था. पेट के दर्द से घबराकर उसने जल माँगा. सनातनधर्मी ससुर ने एकादशी व्रत भंग के कारण जल से उसे वंचित रखा और अंत में यही धर्म प्रेम उसके मृत्यु का कारण बना.''[17]

स्त्रियों की दुर्दशा देख कर शचीन्द्रनाथ सान्याल अत्यंत दुखी थे. अपनी रचना में वे उनकी पीड़ा उकेरते हैं. धर्म के ठेकेदारों ने विधवाओं को आजीवन अविवाहित रहने और दुखद स्थिति में जीवन निर्वाह करने के लिए मजबूर कर दिया था. अवसर का लाभ उठा कर लोग उन्हें वेश्यागृह में बेच देते थे. चुराई गई व बेची गई औरतों का बाजार बहुत बड़ा हो गया था. अत्यंत दुखद अवस्था में उन्हें अपनी देह बेचने के लिए मजबूर होना पड़ता था. शचीन्द्रनाथ सान्याल लिखते हैं, ''यदि मैं औरत होती तो मेरे लिए जीविका उपार्जन करने का कम–से–कम एक रास्ता तो खुला रहता ही जैसा कि मैंने कलकत्ता की बीसों सड़क के जंगले पर बैठी हुई औरतों को देखा था. मेरी आँखों में आँसू आ जाते थे.;''[18] नवजागरण की आहट अब सब ओर से सुनाई देने लगी थी. नवयुवकों में विशेष उत्साह था. वे रुढ़ियों को तोड़ देना चाहते थे. 'बन्दी–जीवन' में शचीन्द्रनाथ सान्याल लिखते हैं कि उनके भाई के विचार बड़े ही खुले थे. '' मेरे मँझले भाई रवीन्द्रनाथ सामाजिक विषयों में घोर परिवर्तन के पक्षपाती थे और मैं प्राचीन प्रथाओं का समर्थक था. रवीन्द्रनाथ चाहते थे कि पुरुष और स्त्रियों के अबाध मिलन में कोई बाधा न रहे. मैं ऐसे अबाध मिलन का विरोधी था और अब भी हूँ. रवीन्द्रनाथ पुरुष–स्त्री के एक साथ शिक्षा पाने के पक्ष में थे.''[19]

समाज में परिवर्तन ने दस्तक दे दी थी. कट्टर धर्म पर की जाने वाली अंधभक्ति पर से पर्दा उठाने के लिए लेखकों ने रचनाएँ की. इसके कठोर व अमानवीय स्वरुप को उद्घाटित किया. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कहानी 'नागा नरसिंहदास' में साधुओं की उदण्डता के बारे में लोगों की बातचीत से ज्ञात होता है. वे कहते हैं, ''धीरे से, धीरे से. वह देखिए, उस बगीचे के आगे दर्जनों संड–मुसंड खड़े हैं. ये सच्ची बातों से इस तरह भड़कते हैं जैसे छाता से भैंस, रक्त–पताका से बैल ! अस्तु, इन्हें सुनाकर सत्य भी मत कहिए. आपका पहनावा, चेहरा ऐसा नहीं है कि, आप इनके निकट, सकुशल इनकी निंदा कर सकें.'

'बड़े समझदार हो यार ! बहुत दूर की बात कही. इस नेक सलाह के लिए धन्यवाद. बेशक, इनसे खुदा की पनाह ! वह देखो, वे लड़ने पर आमादा हो रहे हैं, बगीचे के रखवालों से.'

'पेड़ काटने को माँगते होंगे. धूनी जलेगी न. गर्मी हो या सर्दी, धूनी तो साधु की जलती ही रहेगी. अलख निरंजन के लिए नहीं, तो गाँजा–गंजन ही के लिए सही. कल भी उसी बगिया से आम की हरी डाल काट ले गए थे. जीती डाल ! बेचारे रखवाले मारे डर के चूँ तक न कर सके. आज फिर उसी पर आक्रमण है. अरे, बात बढ़ती नजर आती है. आह ! कैसी वीभत्स गालियाँ दे रहे हैं. दूसरों की सम्पत्ति लूटेंगे, डाका डालेंगे– और रोकने पर हत्या तक करने पर ततपर हो जाएँगे ! वाह रे साधु !...''[20]

धर्म के ऐसे पाखण्डी रुप को देख कर लागों को उससे वितृष्णा सी होने लगी थी. अत्याचार की सीमा से गुजरने के पश्चात ऐसे भाव आने स्वाभाविक ही थे. जब धर्म व ईश्वर की सत्ता पर से विश्वास उठ जाए , तो व्यक्ति सही रास्ते के चुनाव की ओर अग्रसर होता है. 'निहिलिस्ट' कहानी में रेटकिन और श्रेंगरिफ को जब ज़ार की आज्ञा से जिन्दा जला दिया जाता है और क्रूरता की मूर्ति बन कर ज़ार के लोलुप सेवक हँस–हँस कर यह दृश्य देखते रहे. तब लेखक की उक्ति है, ''दानवता के दासों ने मनुष्यता–भक्तों का तड़पना हँस–हँस कर देखा. उस समय शायद पृथ्वी पर हृदय नहीं था, करुणा नहीं थी, मनुष्यता भी नहीं थी, और न ही था वह मायावी जिसे लोग 'ईश्वर' कहकर पुकारते हैं !''[21]

प्रतिबंधित कहानी 'नेता का स्थान' में भी ईश्वर की सत्ता से ऊपर मनुष्यता को रखा गया है. दरअसल, उस समय तक धर्म के भीतर मनुष्यता को स्थान दिलाने की लड़ाई जोर पकड़ रही थी. इस कहानी में दोनों मित्रों के बीच हुई बातचीत से यह ज्ञात होता है कि लोग झूठे धर्म को समाप्त करना चाहते थे.–

''पहला– हमस त्य के प्रचारक होंगे, असत्य के विरोधी. हम न्याय के प्रचारक होंगे, अन्याय के विरोधी. हम प्रेम के प्रचारक होंगे.

दूसरा– और हम मनुष्य की पीठ पर हाथ–हाथ रखकर उसे ठोंकते हुए उससे कहेंगे–अरे आदमी ! तू डरता किससे है ? तेरा बादशाह कौन हो सकता है. तेरे ऊपर शासन कौन कर सकता है ? तुझे अपमानित करने का अधिकार स्वर्ग के देवताओं तक को नहीं है. फिर तू डरता किससे है, भाई ? आँखें खोल ! तू मामूली प्राणी नहीं है–

मत सहल हमें जानों फिरता है फलक बरसों,

तब खाक के परदे से इनसान निकलते हैं.''[22]

क्रांतिकारियों व लेखकों ने जन साधारण को जागरुक करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी थी. वे देश की दुर्दशा को अपनी रचनाओं में जगह दी. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने कहानी 'नेता का स्थान' में इसी दुर्दशा को बखूबी उकेरा है. वास्तव में अंग्रेजों के शोषण और रुढ़ियों से दबे देशवासियों में चेतना का प्रसार ही नवजागरण है. उग्र जी लिखते हैं, ''यह उस देश की राजनीतिक अवस्था थी. उस देश के मुट्ठी भर आदमियों ने सरकार की कृपा से राष्ट्र की संपूर्ण संपत्ति अपने हाथ में कर रखी थी. देश की एक–दो नहीं कोटियों–करोड़ जनसंख्या थी. पर देश की अनंत सम्पत्ति के भोक्ता प्रति करोड़ सौ से भी कम थे. याने वहाँ एक लाख मनुष्य गरीब थे और एक मनुष्य भयानक अमीर; यह विषमता की चरम सीमा थी. अमीर और अमीरों के कुत्ते–साथियों ने समाज में अनर्थ मचा रखा था. चारों ओर स्वेच्छाचारिता और नगद–नारायण के बल पर जुल्म करने का रोग फैला हुआ था. मजूर और किसान, गरीब और अनपढ़ खून देकर भी पेट भर भोजन नहीं पाते थे. गरीबों की स्त्रियाँ, बेटियाँ, बहनें अमीरों के उन्माद की दासियाँ थीं. शासकों और अमीरों ने गुट बना कर घर–घर में फूट डाल रखा था. अपमानित महिलाओं का, प्रताड़ित पुरुषों का और पेट–पीड़ित परिवारों का खोज लेने वाला कोई नहीं था.–ईश्वर भी नहीं था. यह उस देश की सामाजिक अवस्था थी. मुट्ठी भर धर्म के ठेकेदारों ने–पंडे–पुरोहितों और ईश्वर के नाम पर और भी भयानक उत्पात मचा रखा था. उनमें से कोई भी अपने को नहीं पहचानता था पर ईश्वर–दर्शक होने का दावा सबका था. ईश्वर के निवास स्थानों (देवालयों, मठों) को उन्होंने होटल और वेश्यालय बना रखा था, त्यागियों और सन्यासियों की विभूति देख कर गृहस्थ चकरा जाते थे. विरागियों का वासनानुराग संसारियों को दहला देता था. सच्चे साधु, सच्चे पंडे और सच्चे धर्माध्यक्षों का कहीं पता नहीं था. चारों ओर धूर्तों, कामुकों, आततायियों और बोलबाला था. ये पुरोहित पुजारी भी अत्याचारी सरकार से मिले थे. कारण ये सब धनी थे. ये सरकार की मदद करते थे–राजा और राजा के प्रतिनिधियों को ईश्वर का अवतार या अंश बताकर. सरकार इनकी मदद करती थी–प्रथा की पुराण की दुहाई देकर. धर्म की आड़ में उस धर्माध्यक्षों ने न जाने कितने घर तबाह कर डाले, न जाने कितनी कुमारियों का कौमार्य नष्ट कर डाला. न जाने कितनी सतियों का सतीत्व लूट लिया, न जाने कितने गरीबों का गला रेत डाला. यह उस देश की धार्मिक अवस्था थी.''[23]

'पागल' कहानी जो अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त घोषित कर दी गई थी, उसमें भी धर्म के पाखण्ड को सामने रखा गया है. पागल क्रोडेकाफ की बात अक्षरशः सत्य है. पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र लिखते हैं, ''पागल ने पाकेट से एक छोटी सी कापी निकालकर पढ़ना आरंभ किया– बायबिल में लिखा है–अगर कोई तुम्हारे बाएँ गाल पर तमाचा लनगाए तो उसके सम्मुख अपना दाहिना गाल भी कर दो. इसका सुधार यों होना चाहिए – यदि तुम्हें कोई शांतिप्रिय व्यक्ति दिखाई पड़े तो ईश्वर के

नाम पर उसकी शांति अवश्य भंग करना. इसी से स्वर्ग पाओगे.'पादरी ने कहा–'क्रोडेकाफ, पवित्र पुस्तक का अपमान न करो.'

क्रोडेकाफ–'मैं अपमान करता हूँ? आप ज़ार से यही बात क्यों नहीं कहते? पर वहाँ कैसे कहिएगा. वहाँ तो रुबल्स(रुपये) आपका मुँह बन्द कर देते हैं. एक दिन उनसे भी कहिए–वह भी तो ईसाई है. यह लोगों के खून का प्यासा क्यों है? जरा ईसाइयों पर दृष्टि कीजिए. यह भीषण संग्राम क्यों हो रहा है? ईसाई खून चाहते हैं–जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम और वह लंबा–चौड़ा, मोटा–ताजा इंग्लैण्ड–सभी खून के प्यासे हैं? क्या यही धर्म पुस्तक की प्रतिष्ठा है?''[24]

धर्म के भीतर अनाचार, दुराचार, हिंसा को जड़ से निकाल देने की कोशिश होने लगी थी. वास्तविक धर्म आडम्बरहीन होता है. स्वार्थ, कुण्ठा, दमन की इसमें कोई जगह नहीं. अत्याचार करने वाले धर्म को ढाल बना कर शोषण की राजनीति को जारी रखते हैं. जब्त कहानी 'धर्म–दृष्टि' में ग्रेहम धर्म के ऐसे स्वरुप पर भड़क उठता है. मुनीश्वर दत्त अवस्थी लिखते हैं, ''ग्रेहम की आँखें लाल हो गईं. बोला–'पोलक, सचमुच तुम निरे बच्चे हो. धर्म क्या किसी जन समुदाय पर किए गए अत्याचारों का समर्थन कर सकता है. वह धर्म ही क्या वस्तु रहा, जिसकी सम्मति से लाखों प्राणियों को दिन–दहाड़े लूट लेना, बेइज्जत करना और निरपराध सताना क्या न्यायानुकूल है.' कुछ क्षण रुक कर ग्रेहम ने पुनः कहा–'पोलक! जनते हो किसी देश को गुलाम बनाए रखने के लिए स्वार्थी धर्म का ढोल पीटते हैं. जो स्वयं धर्म पतित हैं उसे धर्म की दुहाई लगाने का अधिकार ही क्या.''[25]

धर्म के ठेकेदार अधिकारों की लड़ाई को नेस्तनाबूद करना चाहते हैं. इसलिए वे यह शिक्षा देते हैं कि मनुष्यों के दुख का कारण उनके कर्म हैं. कहानी 'बलिदान की भावना' में मास्टर साहब और राबर्टस की बातचीत से धर्म गुरुओं की असली मंशा ज्ञात होती है. मुनीश्वर दत्त अवस्थी लिखते हैं, ''राबर्ट्स की हृदयतंत्री झनझना उठी. वह बोल उठा–'राष्ट्रप्रेमी कैसे हैं मास्टर साहब?' 'पराधीन देश में पले हुए बच्चे !'' मास्टर साहब ने करुण स्वर में कहा–'तुम नहीं जरनते इन दिनों तुम्हारे देश पर नाना प्रकार के प्रहार होते हैं. इन प्रहारों से समाज की रक्षा करने वाले को राष्ट्रप्रेमी कहते हैं.' 'मास्टर साहब देश के धर्म गुरु तो बताते हैं कि जन–समाज की दुर्दशा का कारण अपने कर्मों का फल है.'

'ठीक है बेटा तुम्हारी अकर्मण्यता का कर्म ही निसन्देह तुम्हारी सबकी दुर्दशा का कारण है. इसमें कुछ भी झूठ नहीं.''[26]

असल में धर्म मिथ्याचारियों का अड्डा हो गया था, जिसके भीतर सारे दुराचार मौजूद थे. शचीन्द्रनाथ सान्याल की रचना 'बन्दी–जीवन' में तथाकथित धार्मिक लागों की हकीकत को उकेरा गया है. यह रचना ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर ली गई थी. शचीन्द्रनाथ सान्याल लिखते हैं, ''मेरी समझ में यह बात नहीं आई कि हमारे समाज के श्रेष्ठ महापुरुष क्यों समाज में नहीं आते; क्यों सामाजिक काम में अग्रणी नहीं होते? साधु–सन्तों के संसर्ग में आ कर मैंने यह देखा कि साधन–भजन करना छोड़ कर ये लोग एक कदम भी इधर–उधर नहीं जाते. यहाँ तक कि साधन–भजन के बारे में भी इनके जो कुछ अनुशव हैं उन्हें भी ये पुस्तक के आकार में समाज को देना नहीं चाहते. इनमें त्याग है, अध्ययनशीलता है, दत्तचित्त होकर एक काम में लग जाने की शक्ति है, लेकिन ये समाज सेवा के किसी काम में आना नहीं चाहते. मैंने अपने मन में सोचा कि यदि हमारे पूर्वज भी ऐसे ही होते तो आज हमें पाणिनी जैसा व्याकरण ही मिलता , न वेद–वेदान्त, उपनिषद, ज्योतिष, गणित या आयुर्वेद शास्त्र ही प्राप्त होते.''[27]

धर्म की दुहाई देने वाले लोग अकर्मण्यता से इस कदर लिपटे होते हैं कि उनसे किसी प्रकार की अपेक्षा करना व्यर्थ है. आगे सान्याल जी लिखते हैं, ''भारत की उन्नति यथार्थ रुप में तभी हो सकती है जब कर्म जीवन भी प्रकृत ज्ञान के आलोक से विशुद्ध हुआ हो. लेकिन वास्तविक जगत में मेरा वांछित आदर्श पुरुष मुझे नहीं मिला. यदि स्वामी विवेकानन्द या स्वामी रामतीर्थ के तुल्य माहापुरुष भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन में अग्रणी होते, तभी मुझे प्रकृत सन्तोष होता.''[28] धर्म की बड़भ–बड़ी डींग हाँकने वाले लोग , अपने हित के लिए अधर्म, अत्याचार देख कर एक अँगुली तक उठाने से कतराते थे. इसी रचना में शचीन्द्रनाथ लिखते हैं, ''मैंने बाद को यह भी देखा कि हमारे सैकड़ों भाई, भारतीय आदर्श की दुहाई देकर, आध्यात्मिकता के बहाने अपनी स्वार्थ बुद्वि से प्रणोदित होकर, तामसिक वृत्ति के आवेश में आकर भारतीय स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने में प्श्चातपर्द रहे. ऐसे आध्यात्मवादियों के लिए घर–गृहस्थी के काम करने में कोई बाधा नहीं है, ये मजे से खाते–पीते हैं, बाजार करते हैं, अपने परिवार का प्रतिपालन करने के लिए तरह–तरह के काम धंधे भी करते हैं, शादी भी करते हैं, सन्तान–उत्पादन एवं सन्तान–पालन भी करते हैं. अर्थात् गृहस्थ आश्रम के सभी काम करते हैं, केवल राजनीति में भाग लेने के अवसर पर धार्मिक जीवन व्यतीत करने की दुहाई देकर भारतीय आध्यात्मवाद की आड़ में अपनी कायरता को छिपाते हैं.''[29]

विश्व में तेजी से होते बदलाव व ऊथल–पुथल से सभी परिचित थे. वैरागियों का कुछ दल भी इन सब बातों में गहरी दिलचस्पी रखता था. सान्याल लिखते हैं, ''मेरे मामा जी के पास एक साधु आए थे. वे भी निष्कलंकी दल की तरह अनेक बातें कह गए थे. पिछले युद्ध के समय अमेरीका जब

जर्मनी के विरुद्ध अंग्रेजों के पक्ष में नहीं मिला था, उस समय यही साधु आकर मामा जी से और मेरे मँझले भाई से अमेरीका के अंग्रेजों से मिल जाने और अन्त में अंग्रेजों के पक्ष के जीतने की भविष्यवाणी कर गए थे; अण्डमान में रहते समय ही यह सब बात मुझे लिख भेजी गई थीं, वह पत्र अब भी मेरे पास है.''[30]

वे लोग जो धर्म और भगवान में लीन रहते थे, वे सामाजिक कार्यों की अवहेलना करना थे. धार्मिक जगत में लीन रहने के नाम पर लोगों का एक बड़ा समूह अकर्मण्य बना बैठा था. वह खोल में छिपे हुए कछुए की भांति जीवन व्यतीत कर रहा था. शचीन्द्रनाथ सान्याल ऐसे वर्ग से बेहद दुखी थे. उन्होंने लिखा है, ''एक बात हम सभी ने सुनी है कि धर्म–कर्म करते–करते हमारा देश एकदम उजड़ गया है. बड़े ही दुख के साथ एक बात स्वीकार करनी पड़ती है कि दस–बारह बरस के विप्लव–कार्य के तजुरबे में हमने देखा है कि जो लोग धर्म–कर्म बहुत पुकारा करते थे उनमें सौ में से निन्यानवे आदमी बाद को लोक हित के कार्य में निरुत्साह हो जाते थे और अन्त में, इने–गिने, एक–दो आदमियों के सिवाय और सभी प्रायः तामसिक वृत्ति के हो जाते थे. धर्म और आन्तरिकता की पूरी परख होती है त्याग में; और इस त्याग की कसौटी पर कसे जाने पर अधिकांश धार्मिक कहलाने वाले लोग तामसिक और स्वार्थपरायण प्रमाणित हुए हैं. हमारा विश्वास है कि आर्य–सभ्यता में दो बड़े ऊँचे सिद्धान्त हैं–अधिकार भेद और गुरुवाद, इन दोनों की ओर एकदम ध्यान न देकर जब हम धर्म–कर्म करते जाने को कहते हैं तब स्वधर्म छोड़ कर पर धर्म करने लगते हैं और इसी कारण हमारी दुर्गति होती है. इसी से सात्विकता की ओट में हम प्रायः तामसिकता को आश्रय देते हैं और धर्म के नाम पर केवल अधर्माचरण करने लगते हैं.''[31]

यहाँ धर्म के नाम पर आँख बन्द कर जीने वाले लोगों को बेनकाब किया गया है. इसके अलावा प्रतिबंधित रचनाओं में अन्य विषयों की ओर भी ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया गया. देश में राष्ट्रीयता व जागरण के प्रसार के लिए वीरों की यादें सुरक्षित रखना अति आवश्यक था. ब्रिटिश हुकूमत ने इसे नेस्तनाबूद करने के लिए कई नीतियाँ बनाई. यहाँ तक कि उसने इनके बारे में भ्रांतियाँ फैलाने का भी प्रयत्न किया. किसी भी देश की जनता के भीतर चेतना के प्रसार के लिए उसके पिछले गौरव से अवगत होना आवश्यक होता है. ''श्रीयुत् चमनलाल पत्रकार ने डबलिन स्थित शहीदों के अजायबघर का वृतान्त नवम्बर सन् 1939 के 'विप्लव' में लिखा है–...आयरलैण्ड के राष्ट्रीय वीरों का यह स्मारक आयरलैण्ड की पार्लामेण्ट के विशाल भवन में कायम है. इस अजायबघर में मुल्क की आजादी की लड़ाई में भाग लेने वाले वीरों और उस युद्ध की घटनाओं की स्मृतियों का एक बहुत प्रभावशाली संग्रह है. इसमें वीरों की आदमकद मूर्तियाँ हैं, वे वर्दियाँ हैं जिन्हें

पहन कर उन्होंने अपनी लड़ाईयाँ लड़ीं. उनके हथियार हैं, चिह्न, बैज, झण्डे इत्यादि भी हैं. उनकी लिखी पुस्तके, उनके व्याख्यान, ऐलान तथा पत्र इत्यादि खूब सुरक्षित ढंग से रखे हुए हैं. आयरलैण्ड के स्त्री–पुरुष, वृद्ध और बच्चे वहाँ पहुँच कर और उन स्मृति–चिह्नों को देखकर राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ते हैं. जिन जनरल रॉजर्स केसमेंट को अंग्रेजों ने फाँसी दी थी, उनके जीवन की सम्पूर्ण गाथा आपको यहाँ देखने को मिलेगी. प्रथम महायुद्ध में उन्होंने जर्मनी की सहायता के लिए आयरिश सेना तैयार की थी और ज़हाज द्वारा वह आ ही रहे थे कि जहाज़ अंग्रेजों के हाथ पड़ गया. कैसमेंट को फाँसी हुई, पर राष्ट्रीय अजायबघर में वह अब भी जिन्दा हैं. कीर्तिर्यस्य स जीवति. इस अजायबघर में आयरलैण्ड के प्रसिद्ध शहीद टेरेंस मेकस्विनी का भी चित्र मिलेगा, जिन्होंने 74 दिन का अनशन कर के अपने प्राण दिए थे. जनरल माइकेल कॉलिन्स की भी मूर्ति विद्यमान है. हैरी बोलैण्ड सुप्रसिद्ध वीर सेनापति डी वेलेरा के सेक्रेटरी थे. एक संकट के समय वह अपने जूते के तले में छिपा कर एक पत्र डी. वेलेरा के लिए ले गए थे. वह मार डाले गए; पर उनका जूता अब भी सुरक्षित है.''[32]

जब हमारे देश के स्वाभिमान को नष्ट किया जा रहा था, यहाँ के गौरवशाली इतिहास को खण्डित किया जा रहा था, तब साहित्य व अन्य माध्यमों से उसे पुनः स्थापित करना अति आवश्यक हो गया था. जन–जागरण के लिए इस दिशा में अनेक लेखकों के प्रयास उल्लेखनीय हैं. अन्य देशों की तुलना में अपने देश में अधिक साहित्य–सृजन करने के लिए लोगों को प्रेरित किया गया. शचीन्द्रनाथ लिखते हैं,''यूरोप, अमेरीका अथवा चीन के किसी भी आन्दोलन को ले लीजिए उन देशों में जितने प्रकार के साहित्यों की सृष्टि उनका शतांश भी हमारे देश में नहीं हुई. कम्युनिस्ट आन्दोलन के संबंध में इतनी पुस्तकें, पुस्तिकाएँ एवं सामान्य पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई हैं कि उनसे संसार भर में विप्लव मचा हुआ है. साम्राज्यशाही राष्ट्रों के निकट कम्युनिस्टों की एक साधारण पुस्तिका मशीनगन से भी अधिक भीतिप्रद एवं आपत्तिजनक समझी जाती है. उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में बंग भाषा में मेजिनी, गैरीबाल्डी इत्यादि प्रसिद्ध राष्ट्र–विप्लवियों के जीवन–चरित्र लिखे गए हैं. बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही बंकिम, रवीन्द्रनाथ, नवीनचन्द्र, शरतचन्द्र इत्यादि प्रतिभाशाली लेखकों ने जिस साहित्य की सृष्टि की है उसकी तुलना आज भी भारत में नहीं मिल सकती. फिर ऐतिहासिक गवेष्णा में, वैज्ञानिक अनुसंधान में, काव्य में, कला में, अर्थात् राष्ट्रीय–चेतना की प्रत्येक दिशा में प्राण शक्ति का अपूर्व स्फुरण हुआ था. कलकत्ता हाइकोर्ट के न्यायालय में जब पहले–पहल राजनीतिक षणयंत्र के मामलों पर विचार प्रारम्भ हुआ तो युगान्तर पत्र के अनुवादक के संबंध में जजों के सामने यह कहा गया था कि युगान्तर की भाषा इतनी मौलिक है कि उसका भाषान्तर करना संभव नहीं. मिल्टन की भाषा में जो शक्ति है, बर्क की शैली में जो ओजस्विता है, मार्ले की भाषा में जो प्रांजलता और प्रसाद है , युगान्तर की भाषा में मानो इन सब गुणों की

अद्‌भुत व्यंजना व्यक्त हुई है. युगान्तर की तुलना में हिन्दी भाषा में हमें कुछ भी नहीं मिल सकता. ''[33]

राष्ट्रीय जागरण के लिए साहित्य का उत्कर्ष आवश्यक था. इसे क्रान्तिकारी लेखक भली–भांति समझते थे. शचीन्द्रनाथ सान्याल 'बन्दी–जीवन' में अन्य देशों का हवाला दे कर जनता को इस दिशा में जागरुक करने का प्रयास करते हैं. वे लिखते हैं, ''नेपोलियन के समय में जर्मन प्रदेश शतधा विभक्त था. सौ मील जाने में तीस टुकड़े–टुकड़े स्वतंत्र प्रान्तों से होकर जाना पड़ता था. नेपोलियन द्वारा तीव्र रुप से आघात प्राप्त कर के जर्मनी में राष्ट्रीय चेतना का उन्मेष हुआ था. उस समय जर्मन साहित्य में अद्‌भुत जागृति दिखाई दी थी. जर्मन विश्वविद्यालय के एक प्रसिद्ध अध्यापक फान टिटश्के ने नवीन शैली से अद्‌भुत प्रेरणा के वशीभूत हो कर जो इतिहास लिखा था उसी के प्रभाव से जर्मनी में एक नवीन राष्ट्रीय चेतना का संचार हुआ. भारतवर्ष के राष्ट्रीय आन्दोलन की चर्चा करने पर हमें नितान्त निराश होना पड़ता है.''[34]

इसका अर्थ यह था कि हिन्दुस्तान में जागृति के लिए जो साहित्य–सृजन हो रहा था उसे और भी अधिक विस्तार देने की आवश्यकता थी. 'बन्दी–जीवन' में इसकी पुरजोर वकालत की गई. सान्याल जी लिखते हैं, ''मेजिनी 'यंग–इटली' नामक जो पर्चा निकाला करते थे, उसका साहित्यिक एवं क्रान्तिकारी प्रभाव इटली के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा है. दूसरे देशों से ये पर्चे इटली में आते थे. विदेशों में रह कर ही मेजिनी 'यंग–इटली' का संपादन कार्य करते थे. इटली के किसी व्यक्ति के पास इस पर्चे के निकलने पर उसे फाँसी का दण्ड दिया जाता था. 'यंग–इटली' क`लेखों का संग्रह करके ग्रथित आज भी अंग्रेजी में एक ग्रंथ उपलब्ध है और उसे प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति बड़े उत्साह के साथ पढ़ता है और उससे लाभ उठाता है. उसकी नैतिक एवं साहित्यिक मर्यादा आज भी पूर्ववत् अक्षुण्ण है. इसकी तुलना में भारतवर्ष में राष्ट्रीय आंदोलन या क्रांतिकारी आंदोलन के सम्पर्क में हम कुछ भी नहीं दिखला सकते. रुस के क्रांतिकारी आन्दोलन के प्रति दृष्टिपात करने पर भी हमें विदित हो जाएगा कि उपयुक्त साहित्य की दृष्टि से हमारा आन्दोलन कितना पिछड़ा हुआ था और अब भी है. चीन में भी राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलन के सम्पर्क में लाखों की संख्या में पर्चे एवं पुस्तिकाएं बाँटी गई हैं. उस देश में भी नवीन आंदोलन के सम्पर्क में नवीन साहित्य की सृष्टि हुई है. केवल इतना ही नहीं, अपितु डाक्टर सनयात सेन आदि प्रमुख नेताओं के चीन के दार्शनिक नेताओं में भी महान परिवर्तन लाने की चेष्टा की थी. इसी प्रकार रुस के विप्लवी नेताओं ने भी विचार जगत में विप्लव मचा दिया था. भारत में भी श्री अरविन्द एवं स्वर्गीय स्वामी विवेकानंद,

रामतीर्थ, दयानंद, लोकमान्य तिलक जैसे महानुभाव नेताओं ने दार्शनिक दृष्टिकोण से तीव्र जागृति पैदा की थी, एक नवीन दार्शनिक आंदोलन प्रबल रुप से प्रारम्भ कर दिया था.''[35]

कहने की आवश्यकता नहीं कि जन–जागृति के लिए विचार अनिवार्य हैं. उस युग में क्रांतिकारियों के उग्र आंदोलन के बावजूद क्रांतिकारी साहित्य की आवश्यकता महसूस की जा रही थी. प्रतिबंधित साहित्य के माध्यम से इसकी पूर्ति करने की चेष्टा की गई. विदेशी सत्ता और अपनी मान्यताओं की श्रृंखला में जकड़े जन सामान्य के भीतर जागरण की ज्योति जलाने के प्रयत्न हुए. चेतना के प्रसार में लेखकों ने बहुत मदद की. प्रतिबंधित रचनाओं के माध्यम से नवजागरण लाने का भरसक प्रयत्न किया गया.

4.2 प्रतिबंधित साहित्य में स्वतंत्रता की धारणा

प्रतिबंधित साहित्य में हर ओर स्वतंत्रता की लहर गूंजती दिखाई देती है. इनके माध्यम से देश की जनता को लेखन के माध्यम से झकझोरा गया. परतंत्रता की बेड़ियों को उखाड़ फेंकने के लिए देशवासियों को ललकारा गया. सेंसरशिप के बावजूद लोग लिखते रहे. स्वतंत्रता उनका अंतिम लक्ष्य था. कहानियों, कविताओं, उपन्यास, नाटक, पैम्फलेट, भाषणों इत्यादि को माध्यम बना कर चेतना के प्रसार के लिए लोग प्रयत्नशील थे. इस चेतना से घबरा कर ब्रिटिश हुकूमत ने ऐसी सारी पुस्तकों, पत्रों, समाचार–पत्रों को जब्त कर लिया. पाण्डेय बेचनशर्मा उग्र की जब्त की गई कहानी 'उसकी मां' में लाल गुलामी के शिकंजे को तोड़ डालने के लिए तत्पर दिखाई देता है. चाचाजी द्वारा सरकार विरोधी कार्य करने पर मना किए जाने पर वह बेबाक ढंग से कहता है – ''आपने गलत सुना चाचाजी. मैं किसी षणयंत्र में नहीं. हां मेरे विचार स्वतंत्र अवश्य हैं, मैं जरुरज–बेजरुरत जिस–तिस के आगे उबल अवश्य उठता हूँ. देश की दुरवस्था पर उबल उठता हूं ; इस पशु–हृदय की परतंत्रता पर।''[36]

आजादी की लड़ाई में सभी कूद पड़े थे. किसी को प्राणों का मोह न था. यहां तक कि परमात्मा में लीन रहने वाले वैरागी भी देश की दशा न सह सके. वे भी स्वतंत्रता के लिए इस लड़ाई में शामिल हो गए नागा नरसिंह दास अन्य साधुओं को इस लड़ाई में आने के लिए कहते हैं, '' कुछ परस्वापहारी नर–राक्षस डेढ़ सौ वर्षों से इस तपोभूमि में आ कर हमारे सनातन धर्म का ध्वंस कर रहे हैं.'मदहिष मानुष–धेनु–खर–अज' भक्षकों के सगे भाई–से हैं. वे विदेशी है, विधर्मी हैं, हमारी सभ्यता और संस्कृति के विपक्षी हैं , वे अंग्रेज हैं. उन्हीं की दुष्ट नीति से आज हमारे गाँव उजाड़ और शहर नरक हो गए. उन्हीं से, रामभक्त गांधी के नेतृत्व में, अहिंसात्मक धर्म–युद्ध हमें करना है.

''[37] अंग्रेज और उनके चापलूसों ने देशभक्तों पर अनवरत अत्याचार करते फिर भी उनका प्रण टस से मस न होता. 'आगरा–सत्याग्रह–संग्राम' जिसे ब्रिटिश सरकार ने जब्त घोषित किया था, में अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर किए गए भयंकर जुल्मों का विवरण प्राप्त होता है–''जिला कांग्रेस कमेटी के उपसभापति बाबू शांतिस्वरुप जी पर एक चपरासी से दफा ५०६ और ४२६ में एक मामला दायर करा दिया गया था जिसमें आप अदालत से साफ छूटे, तारीख नौ जुलाई को इसी मामले के सिलसिले में श्रीयुत् रामबाबू और श्यामकुमार जी मुख्तार को लेकर तहसील गये, वहां चपरासियों ने शांतिस्वरुप तथा श्रीयुत् रामबाबू पर हमला किया! तहसीलदार के आने पर उसके हुक्म से मयं वकील के तीनों बुरी तरह पीटे गये. तहसीलदार के इस नीचतापूर्ण व्यवहार के विरोधस्वरुप शूरवीर सत्याग्रही श्रीयुत् रामबाबू ने राष्ट्रीय झण्डा लेकर तहसील के दरवाजे पर धरना देना शुरु कर दिया. नायब तहसीलदार ने वह झण्डा छिनवा लिया और राम बाबू जी को पिटवाकर खेतों में डाल दिया. जब आप दुबारा वहां फिर पहुंचे तो तहसीलदार ने आकर उन्हें खूब पिटवाया. आप के कपड़े उतरवाकर नंगा कर दिया और मारते–मारते बेहोश कर दिया गया. ''[38]

देशभक्तों के ऊपर होने वाले जुल्मों की कोई सीमा न थी. 1931 में अज्ञात लेखक द्वारा रचा गया नाटक 'रक्तध्वज' में वीर क्रांतिकारी शेर की वाणी में देश की वेदी पर कुर्बान होने की अदम्य अकांक्षा तथा परतंत्रता के बंधन को तोड़ देने का साहस दिखाई पड़ता है. – 'शेर : और स्वाधीनता की गूंज उठने लगेगी. हर एक देश से, हर एक गांव से, हर एक घर से, हर एक मुंह से,– हर एक वाणी से और हर एक जिह्वा से एक ऐसी अगिनमयी जागृत उत्पन्न होगी, जो विश्व के कोने–कोने में व्याप्त होकर, अत्याचार, अन्याय और पशु बल के घोर बन को भस्म कर देगी. उस समय भारतवर्ष के वीर युवक प्रलय काल के शंकर होंगे और स्त्रियां, हां, भारत की वीर माताएं वे वीर प्रसविनी, कोमलांगी बालाएं देशोद्धार के लिए, मातृ–भूमि के संकट निवारण के लिए साक्षात रणचंड़ी का वेश धारण करेंगी. अन्यायी शासन की जड़ हिला देंगी. नौकरशाही का तख्ता नष्ट–भ्रष्ट कर देंगी.''[39] 'चांद'(1928) के फांसी अंक में प्रकाशित आचार्य चतुर्सेन शास्त्री की कहानी 'फंदा' में मास्टर साहब स्वाधीनता के लिए प्रतिबद्ध हैं. वे कहते हैं, ''चुप रहो मैं प्रार्थना करता हूं कि ईश्वर मेरी आत्मा को ज्वलंत अशांति दे, जो तब तक न मिटे जब तक मेरा देश स्वाधीन न हो जाए और मेरे देश का प्रत्येक व्यक्ति शांति न प्राप्त कर ले.''[40]

इस समय तक हिंदुस्तान में नवजागरण की चेतना कोने–कोने में फैल चुकी थी. देशवासी एकमत होकर आजादी के लिए प्रयत्नशील थे. ब्रिटिश काल में जब्त की गई पुस्तक 'देशेर कथा' में इस बात की चर्चा की गई है कि हिंदुस्तान में हो रही जागृति से अंग्रेजों को भी अनुभव होने लगा था

था कि अब उन्हें स्वशासन दे देना चाहिए. ''भारत में आजकल राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन का जो गोलमाल देखा जाता है, उसी के भीतर शीघ्र ही कुछ युक्ति–संगत आदर्श प्रकट होगा. यह आदर्श क्या है? वर्तमान समय में बड़े–बड़े चिंताशील लोग इसका विचार कर रहे हैं. पर एक बात तो निश्चित है कि भारत में वर्तमान शासन प्रणाली इस देश के लिए सर्वथा अनुपयुक्त हो गई है.... समूचा भारतवर्ष जाग उठा है, तथा भारतवासियों में गत शताब्दी के संप्रदायों की जगह अब राष्ट्रीय भाव का उदय देखा जाता है. सारांश यह है कि जिन जापान और फारस राज्यों में प्रजातंत्र शासन प्रणाली की प्रतिष्ठा हो गई है, उनसे भारतवर्ष किसी भी हालत में कम सभ्य नहीं है.'' इसी लेख में 'इंग्लिशमैन' मुक्त कंठ से स्वीकार करता है कि बहुतेरे उच्च पदस्थ अंग्रेज भी भारतवासियों को स्वराज (home rule) दिलाने की चेष्टा कर रहे हैं. 'इंग्लिशमैन' यह भी कहता है कि भारत में शासन और विचार विभाग शीघ्र ही अलग हो जाना चाहिए.''[41]

इसी प्रकार 'और मेरे भी' शीर्षक कहानी की जसरानी भी आजादी की लड़ाई का हिस्सा बनने का दृढ़ संकल्प ले चुकी है.–

''जोर की अट्ठाहास की ध्वनि हुईग और जसरानी ने कहा, ''ओहो। तुम क्या मुझे अपने घर ले चलने का इरादा रखते हो?''

''और क्या? मेरा घर कहां? अब तो तुम्हारा घर है। चलो।''

''न मैं तो और जगह जा रही हूं?''

''कहां?''

''जेल में।''[42]

फिरंगियों से मुक्त होने की ललक हर ओर दिखाई दे रही थी. प्रतिबंधित की गई कहानी 'गुरु दक्षिणा' में महात्मा शिवचरण गिरि ने अपने शिष्य हरिदास को देश सेवा के लिए भेज दिया. उनके लिए यही सबसे बड़ी गुरु दक्षिणा थी. वे कहते हैं, ''आज से तीन चार वर्ष पूर्व फिरंगियों से पीड़ित हो हमने सोचा कि इस बुढ़ापे में क्या कर सकता हूं। तुम भारत के हर एक भाग में फिरंगियों की कुटिल नीति का भंडा फोड़ कर दो। जाओ, हमारा आशीर्वाद है। अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहो।''[43] 'तरुण तापसी' कहानी में फिरंगियों को उखाड़ फेंकने का जब्बा दिखाई देता है–''सन् 1662 ई. के मई मास में वह एक नदी किनारे बैठा था। उसके बाल बढ़ गए थे। पैरों में रक्षा के लिए कोई वस्तु

न थी। गले में था कुरता, बगल में कंबल, ह्रदय में था दर्द और प्रेम। उसने समाज का कार्य दूसरों पर छोड़ कर राजनीतिक सुधार का बीड़ा उठाया। सुशील अब बदल गया। यह तरुण तापसी निर्धनों की आंखों का तारा है और परदेशियों के ह्रदय का शूल।''[44] आजादी का समर्थन करने व अंग्रेजों के विरुद्ध अनगिनत रचनाएं लिखी गईं. रचनाकार तूफान की तरह स्वातंत्र्य विचार को फैलाने की कोशिश कर रहे थे. 1929 में गोविन्द राम सेठी द्वारा लिखा गया नाटक 'बरबादिए हिन्द' में अंग्रेजों से मुक्ति का स्वप्न दिखाई देता है. लखपत और दौलतखान की बातचीत में आजादी पाने ज़ज़्बा उभर कर सामने आता है–

''दौलतखान : अब गुलामी की हमारे तन पै इक जंजीर है।

इसको लेकिन काटने की कौन सी शमशीर है।

इस बला से छूट जाएं ऐसी क्या तदबीर है।

गरज़ मोहलक से शफ़ा पाने की क्या अक़्शीर है।

किस तरह जालिम तबाह हों किस तरह हम शाद हों।

पंजा–ए–सैयाद से हम किस तरह आजाद हों।

लखपत : खान साहब! इस रोग की चिकित्सा हमारे हाथ में है। इस बला की बागडोर हमारे वश में है। यदि हम चाहें तो एक दिन अपने खोए हुए आदर और प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सकते हैं छीने हुए राज्य को ले सकते हैं–

बना सकते हैं फिर जिन्नतनिशां हम गुलिसतां अपना।

बसा सकते हैं फिर उजड़ा हुआ हम आशियां अपना।

और वह इस प्रकार कि हम अंग्रेजी माल का प्रयोग करना पाप समझें. अपने देश की बनी वस्तुओं से प्रेम करें। मजदूरी करके अपना निर्वाह करें, परंतु अपने भाइयों का खून बहा कर पैदा की हुई कमाई को विष समझें सब आपस में प्रेम और मेल रखें, अपने लड़ाई झगड़ों को छोड़ दें. दिल से ईर्ष्या और द्वेष की जंजीरें तोड़ दें। इससे हम फिर उन्नति करेंगे, भारतवर्ष फिर धन–धान्य से भरपूर होगा। दासता और गरीबी से छुटकारा पाकर फिर हरा–भरा होगा–
चमन में भारत के आएगी फिर वह पहिली सी बहार इक दिन।

फलेगा फूलेगा देखना फिर यह गुलशनें खार दार इक दिन।''[45] इसी प्रकार 'संकल्प' शीर्षक कविता में गुलामी की जंजीरों को उखाड फेंकने का दृढ़ संकल्प दिखाई देता है–

''सह नहीं सकते हैं अब अपमान हम।
मान पर हो जाएंगे बलिदान हम।।
यंत्रणाएं दे कठिन से भी कठिन
कष्ट कारागार का हो रात दिन।।
हाथ हथकड़ियां गले में तौक़ हो।
बेड़ियों का भी निराला शौक़ हो।।
जिनकी झंकारों में गाएं गान हम।
मान पर हो जाएंगे बलिदान हम।।''[46]

अंग्रेजों के प्रति देशभक्तों के मन में कितना आक्रोश था, उसे ये पंक्तियां बयां करती हैं–

''परम, पाखण्डी, डाकू, धूर्त;
फरेबी छलियों के सरताज़।
मुझे 'जाली' कहने में क्यों न;
गिरा तेरी जिह्वा पर गाज़?
....
फोड़ कर तेरी दोनों आंख;
मिटा दूं तेरा सब अभिमान।
मोद से खा कर तेरे अंग;
तृप्त हो जावें गीदड़ श्वान।''[47]

भारत से फिरंगियों का कुशासन मिटाने की जल्दी है–

''शीघ्र ही भारत से रे नर कीट;
मिटेगा तेरा अत्याचार।
स्वयं तुझको तेरे ही मित्र;
कहेंगे निष्ठुर नीच अपार।।''[48]

प्रतिबंधित किए गए साहित्य में आजादी की भावना कूट–कूट कर भरी गई है. अत्याचारों का सामना और उसे उखाड़ फेंकने का अदम्य साहस भरा गया है. लोगों के भीतर चेतना फैलाने का ज़ज़्बा इस कदर है कि रचनाकारों ने अपने जान तक की परवाह न की.

4.3 प्रतिबंधित साहित्य में दमनकारी तंत्र का प्रतिरोध

प्रतिबंधित साहित्य चाहें किसी भाषा में लिखा गया हो, उनमें आजादी की भावना प्रबल दिखाई देती है. इस देश में अंग्रेजों के अत्याचार की कोई सीमा न थी. लूट, हत्या, शोषण , भयंकर दमन हर ओर जारी था. देशभक्ति की सजा मौत थी. अंग्रेजों के खिलाफ बोलना, लिखना, पढ़ना इत्यादि जुर्म था. ऐसी अनगिनत पुस्तकें जब्त की गई जिनमें आजादील की भावना परिलक्षित होती थी. हिन्दी साहित्य में भी अनगिनत सामग्री साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा जब्त घोषित की गई. जमानतें मांगी गई. पुस्तकों की प्रतियां प्रशासन द्वारा ढूंढ़ कर जला दी गई. सरकार लेखकों से आतंकित थी. उसने कानून बना कर प्रसारित होती चेतना को रोकनें की पुरजोर कोशिश की. फिर भी चेतना का ज्वार न थम सका. बलिदानी वीरों की फौज दिन–ब–दिन बढ़ती गई. अज्ञात लेखक द्वारा रचा गया नाटक 'रक्तध्वज' में अंग्रेजों को देश से बाहर करने के लिए युवकों के मन में आग धधकती दिखाई देती है. तमाम कष्टों को झेलने के लिए युवक तैयार हैं. वे क्रांतिकारी दल का संगठन करना चाहते हैं और ब्रिटिश सरकार से मोर्चा लेने के लिए आतुर दिखते हैं. नाटक के 9वें दृश्य में सरदार के कथन से एक ओर भारत की वर्तमान स्थिति ज्ञात होती है, तो दूसरी ओर लड़ाई को आगे बढ़ाने की अकांक्षा–

''सरदार–हमें दे जननी यह वरदान।

सफल कामना होवे राखूं मातृभूमि का सम्मान।।

मलिन देख जननी तवम ुख को, व्यथित होत हृदय धाम।

सुखी देख माता तुमको मम होवे पूरण काम। हमें।

विमल क्रांति की तरल तरंगे लहरावें अविराम।

कटें दासता की जंजीरें सुखी होवे तव प्रान।।हमें.।

मातृभूमि की सेवा में हो जीवन यह बलिदान।

पाऊं जन्म पुनः भारत में आऊं मां के काम।

हमें दे जननी यह वरदान।

सरदार आगे कहते हैं, ''माता! एक समय वह भी था जब इसी भारत के वीर तुम्हारी प्रसन्नमूर्ति को देखकर हर्षित होते थे। परन्तु आज हम अभागों को तुम्हारा यह वेश देखना पड़ रहा है। मातेश्वरी,

यह तुम्हारा दीन वेश हम लोगों को कब तक देखना पड़ेगा? चांद बादल में कब तक छिपा रहेगा? कब तक भारत के बच्चे इस यातना को सहते रहेंगे? हाय! कितना जुल्म है! अब तो देशभक्ति भी जुर्म में शामिल हो गई हैं माता के दुख को देखकर चार आंसू बहाना राजद्रोह माना जाता हैं आजादी के दीवाने युवकों को तो फांसी पर लटकाया ही जाता है, साथ ही इन निरपराध दुधमुंहें बच्चों को राजनीति का नाम भी नहीं जानते, जिन्होंने न कभी बम एवं पिस्तौल एवं का देखना तो दूर रहा, नाम भी न सुना हो वे भी पकड़े जाते हैं., उन पर षणयंत्र का मामला चलाया जाता है और न्याय के नाम पर जेलों में सडाए जाते हैं अथवा काले पानी की सजा दी जाती है। धन्य है तेरा न्याय। मातेश्वरी , बताओ कब तक भारत के लालों पर, तेरी आंखों के तारों पर इस प्रकार का वीभत्स अत्याचार होता रहेगा? कब तक भारत के होनहार बच्चे इस अधम नौकरशाही के अत्याचारों को सहते रहेंगे? ओ अत्याचारी शासन, तेरा नाश अवश्यम्भावी है। तेरा नाश अवश्य होगा। अन्याय, दुराचार, अत्याचार ओर पशु–बल पर स्थित शासन का नाश अवश्य होगा।''[49]

अन्याय ओर लूट पर आधारित शासन–व्यवस्था को मिटाने के लिए देशवासी संकल्प ले चुके थे. साम्राज्यवादी शक्तियों का दमन चक्र अधिक होता, देशभक्तों का जत्था उतने ही जोश से भीषण प्रतिकार करना. प्रतिबंधित पुस्तक 'आगरा सत्याग्रह संग्राम' में इसका चित्र सामने आता है, ''जिस जत्थे ने बाईस को रुनकते में नमक बनाया था, वही पालीवाल जी के उत्तराधिकारी, जिले के दूसरे डिक्टेटर श्रीयुत् एस मनोहरलाल की आानुसार तेइस को कोतवाली पहुंचा और वहां के अधिकारियों से कहा कि मिारा जो सामान कल आप ले आए हैं वह सब वापस दीजिए. पुलिस ने सब सामान वापस देने से इनकार किया। इस पर स्वयं सेवक कोतवाली के फाटक को रोक कर लेट गए। पुलिस के लाख धमकाने बहकावे से भी न माने। शहर में यह समाचार बिजली की तरह दौड़ गया कि सत्याग्रही सैनिकों ने सरकार की कोतवाली पर धरना दे दिया है। फलस्वरुप सहस्रों जन समूह इस दृश्य को देखने के लिए इक्कठा हो गया।''[50] अत्याचारी सरकार भीड़ पर भी जुल्म करने से जरा न चूकती. इन सब समाचारों के विवरण पर भी पुलिस को भयंकर ऐतराज था. यहां तक कि समाचार लेने वाले श्री गेंदालाल मिश्र का कैमरा भी तोड़ दिया जिससे वे विवरण न ले सकें. ''कांग्रेस के प्रकाशनाध्यक्ष महेन्द्र जी ने इस दृश्य का फोटो लेने के लिए श्री गेंदालाल मिश्र और समाचार लेने के लिए श्री के. जे. दास को कोतवाली पर भेजा। पुलिस ने श्री गेंदालाल जी का 70) का केमरा तोड़ दिया और छीन लिया। उन्हें धक्के भी दिये। श्री दास की कापी पेंसिल छीन ली, उन्हें पीटा और धक्के दिये, उनका चश्मा तोड़ दिया। यह हाल देख कर महेन्द्र जी स्वयं आये ।तब फोटो ली गई ओर संध्या तक वे वहीं रहकर बराबर समाचार लेते रहे। जनता के हुजूम और सत्याग्रहियों के प्रण को देख कर पुलिस घबड़ा गई। ग्यारह बजे के करीब पलिस सुपरिटेंडेंट

पच्चीस घुड़सवारों ढेरों कानिस्टिबलों , दो सरजेन्टों तथा एक और अफसर को साथ लेकर कोतवाली पहुंचे। आते ही नादिरशाही शुरु हो गई। दोनों और शांत खड़ी और जयजयकार करने वाली भीड़ पर घोड़े दौड़ा दिये गये। स्वयं सेवकों के हाथ–पांव पकड़ कर कोतवाली से बाहर सड़क पर रख दिया गया.''[51]

पुलिस सत्याग्रहियों पर घोड़े दौड़ाने से भी न कतराती. इसके अलावा उसने देशभक्तों के इलाज पर भी रोक लगाया. ''साढे तीन बजे के करीब जनता को तितर–बितर करने के लिए फिर घोड़े दौड़ाये गये लाठियों से भी काम लिया गया जिससे कई लोगों को चोट आई। साढ़े चार बजे सत्याग्रही गिरफ्तार कर लिये गये। घोड़ों की टापों और लाठियो की मार से जिन लोगों को चोट आई थी उनका इलाज करने से थामसन अस्पताल वालों ने इनकार कर दिया।''[52] युवाओं का दल शोषण मुक्त देश की कल्पना कर रहा था. उनके विचारों व कार्यों में यह भावना कूट–कूट कर भरी थी. प्रतिबंधित कहानी 'उसकी मां' में लाल कहता है, ''मेरी कल्पना यह है के जो व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो, उसका सर्वनाश हो जाए।''[53] दमनकारी तंत्र के विनाश के लिए युवक क्रांति की राह पर चल पड़े थे. चाचाजी से हुई बातचीत में लाल इस आजादी के लिए हर कीमत चुकाने के लिए तैयार है;

''चाचाजी नष्ट हो जाना तो यहां का नियम है। जो संवारा गया है वह बिगड़ेगा ही। हमें दुर्बलता के डर से अपना काम नहीं रोकना चाहिए। कर्म के समय हमारी भुजाएं दुर्बल नहीं, भगवान की सहस्र भुजाओं की सखियां हैं।''

''तो तुम क्या करना चाहते हो?''
''जो भी मुझसे हो सकेगा, करुगां''
''षणयंत्र''?
''जरुरत पड़ी तो जरुर.....''
''विद्रोह''?
''हां, अवश्य!''
हत्या ?''
''हां, हां, हां!''[54]

पुलिस के भयंकर अत्याचार को सत्याग्रही बड़ी धैर्यता से सहन करते मगर उनका दृढ़ निश्चय टस से मस न होता. वे अंग्रेजों का विरोध हर हाल में करते. 'ध्रुव–धारणा' कहानी का नायक उपेन्द्र

जेलखाने के अधिकारियों की भयंकर मार के बावजूद भी 13 अप्रैल यानी जालियांवाला बाग हत्याकांड, को जेल में भी हड़ताल करता है और बेबाक ढंग से कहता है–

''उपेन्द्र– आप जानते होंगे, आज 13 अप्रैल है। आज ही के दिन जालियांवाला बाग हमारे भाइयों के रक्त से रंगा गया था। आज मैं दिन भर व्रत करके उनकी आत्मा की शांति के लिए परम पिता से प्रार्थना करुंगा। शहर में भी आज हड़ताल होगी।''

जेल सुपरिटेंडेंट– ''उपेंद्र तुम्हें जानना चाहिए कि यह जेल है, घर नहीं ; और तुम बंदी हो, स्वतंत्र नहीं। तुम्हें जेल के नियमों का पालन करना और हमें कराना पड़ेगा।''

....

सुपरिटेंडेंट बहादुर कंबु–कुंदेंदु–कर्पूर–विग्रह' गौरांग थे। एक असितांग की दृढ़तामयी बातों ने उन्हें आपे से बाहर कर दिया। वह तमक कर बोल उठे, 'फाल इन!' यह शब्द सुनते ही प्रायः बीस सिपाही एक साथ उपेंद्र पर टूट पड़े और उन्हें हाथों , लातों और घूसों से लगे मारने। पशु–बल का यह तांडव पंद्रह मिनट तक होता रहा। इतनी ही देर में सुकुमार उपेंद्र मृत–प्राय हो गया। उसके शरीर से अनेक स्थानों से रक्त निकलने लगा। सुपरिटेंडेंट ने पुनः प्रश्न किया–

'बोल! बदमाश, अब काम पर जाएगा?'

उपेंद्र ने दृढ़ता भरे स्वर में उत्तर दिया, 'कदापि नहीं''[55]

प्रतिबंधित कहानी 'नादिरशाही' के रचनाकार पाण्डेय बेचनशर्मा उग्र अपनी कहानी के माध्यम से जुल्म के इतिहास को फिर से याद करते हैं. वे दिल्ली के पुराने वैभव और इसके लुटने की कहानी कहते हैं, '' तेरे दो प्रेमी भारत के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे, एक 'नादिरशाह' और दूसरे ग़दर काल के –नादिरशाह के दादे–'अंग्रेज'! नादिरशाह तुझसे रुप यौवन की भिक्षा मांगने नहीं आया था। वह तो खूंखार जंगली पशु था–डाकू था। उसे तेरे अनंत धन संपत्ति और रक्त मांस को लेने की इच्छा थी। इधर अंग्रेजों ने सन् 1857 में तेरे साथ जो व्यवहार किया उसकी कथा वीभत्स और रोमांचकारी है।''[56]

अंग्रेजों ने जिस क्रूरतापूर्ण तरीके से शहजादों को मारा था. वह अत्यंत वीभत्स था. उसका वर्णन जब्त कहानी 'नादिरशाही' से ज्ञात होता है, ''रथ जब शहर में पहुंचा तब हडसन ने अपने सैनिकों से कहा, 'यह शहजादे खूनी हैं। इन्होंने हमारी औरतों और बच्चों की हत्या की है।' इसके बाद

उन्होंने शहजादों को रथ से उतरने की आज्ञा दी। भय विह्वल अभागे शहजादे रथ से नीचे उतरे। सेनापति ने उन्हें कपड़े उतारने की आज्ञा दी। उन्होंने धीरे से अपने कपड़े उतार दिए। इसके बाद सेनापति का रुप अत्यंत भयंकर राक्षसों की तरह हो गया था. वह रक्त के प्यासे हो गए थे। एक अश्वारोही के हाथ से पिस्तौल लेकर उन्होंने असहाय, निरस्त्र और शरणगत तीनों शहजादों को तीन फायर में मार डाला।'

सेठ–'मार डाला! हाय, हाय! तैमूर के वंशज शहज़ादों को एक साधारण अंग्रेज सेनापति ने कुत्तों की तरह मार डाला।''

मुकुंद–' हां , बाबूजी, बड़ी निर्दयता से–राक्षसी ढंग से–हड़सन ने उन अभागे शहज़ादों की हत्या की। इसके बाद रथ का परदा हटा दिया गया जिससे शहर के लोग उस हत्याकाण्ड को देख कर अंग्रेजों की धाक मान लें–कांप उठे। इस तरह चांदनी चौक के थाने तक उस खूनी सेनापति के साथ वह रथ आया।''[57]

आजादी की लड़ाई लड़ने वाले वीरों को भयंकर यातनायेंद ी जाती. उनके गिरोह के अन्य सदस्यों का नाम जानने के लिए उन्हें मारा–पीटा, जलाया जाता. 'कर्तव्य और प्रेम' कहानी में रोवस्की अपनी बेटी डोराइना से अपने बेटे और उसके भाई पर ज़ार शासन द्वारा किए गए अत्याचार की चर्चा करता है. वह कहता है, '' जेलखाने में उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएं दी गई। तुझे नहीं मालूम है बेटी, ज़ारशाही के कारागार नरक के प्रतिरुप हैं। इनकी सृष्टि केवल देशभक्तों की दुर्दशा के लिए हुई है। वहां पर नाखूनों में सुइयां चुभो–चुभो कर, बेंत मार – मार कर, अंगुलियों में तेल से भीगे चिथड़े बांध कर और उनमें आग लगा कर , उनसे निहिलिस्ट दल की बातें पूछने की कोशिश की गई, पर वे पर्वत की तरह दृढ़ और मूक रहे। लाचार होकर अधिकारियों ने उनकी हत्या का ही निश्चय किया। वे सब कारागार के तहखाने में डूबो कर मार डाले गए।''[58]

ऐसी बर्बर सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए युवाओं का दल अपनी योजनाएं बनाता. 'स्वदेश के लिए' प्रतिबंधित कहानी में पेडरिन अपनी योजनाएं बताते हुए कहता है, ''विकास धीरे–धीरे होता है और क्रांति एकदम से ही स्थिति बदल देती है। हम अपने देश में क्रांति चाहते हैं।....हमारे देश में क्रांति ऐसे ही होगी कि हम अपने आदमियों को कई भागों में बांट दें। ज़ार के प्रति, राज्य की धींगा–धीगीं के प्रति असंतोष उत्पन्न करने वालों का एक दल रहे, दूसरा दल ज़ार के प्रत्येक विभाग में अपने आदमी पहुंचाने अथवा बनाने का काम करे, मजदूरों और ग़रीबों को संगठित करने का काम तीसरा दल करे, अत्याचारियों को भयभीत करने का तथा उसके लिए अस्त्र–शस्त्र एकत्रित करने

का काम एक दल के सिपुर्द हो और इसके अतिरिक्त भी एक दल ऐसा हो जो दूसरी आवश्यक बातों का पता लगाता रहे।''[59]

ऐसे युग में दमनकारी तंत्र व प्रतिरोधी लेखन दोनों सक्रिय रहे. वास्तव में ब्रिटिश सरकार इन्हीं से डरी हुई थी. क्रांतिकारियों के छोटे–छोटे दलों ने साम्राज्यवादी शक्तियों की नींद हराम कर दी थी. देश की आजादी में इन दलों का बहुत बड़ा योगदान था.

4.4 प्रतिबंधित साहित्य में गुलामी से मुक्ति की अकांक्षा

हिंदुस्तान को स्वतंत्र कराने और लोगों के भीतर चेतना के प्रसार में प्रतिबंधित की गई सामग्री ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. इनमें गुलामी से मुक्त कराने की अकांक्षा दिखाई देती है. यहां की जनता एक ओर अंग्रेजों से मुक्त होना चाहती थी तो दूसरी ओर अपने देश के कट्टरपंथी, शोषणकारी तत्वों से. ज़ब्त की गई सामग्री में शोषण के खिलाफ विद्रोह की चेतना उफनती दिखाई देती है. 'अंग्रेजों की इस तौर से करो बोलती बन्द' कविता संग्रह में विदेशी शासन को उखाड़ फेकने की ललकार है–

''ईश्वर के सिवा मत डरो किसी के कोप से,
मारे अगर तुम्हें कोई बन्दूक तोप से।
आत्मा अमर है, मरता कभी नहीं।
गीता में कृष्ण ने अर्जुन से यही कहा
गांधी भी यही कहते हैं सबको मिले आनंद
योरोप की फिर तो यों बोलती हो बंद।।''[60]

प्रतिबंधित नाटक 'जख्मी पंजाब' में हिंद को स्वतंत्र कराने का दृढ़ संकल्प दिखाई देता है–

''इस आजादी की खातिर अपना तन, मन, धन लगा देंगे।
हम अपने प्यारे भारत को स्वतंत्र फिर बना देंगे।।
अभी तो की है कुर्बानी सिर्फ माल और दौलत की।
ज़रुरत जब पड़ेगी तो यह जानें भी लड़ा देंगे।।
गुलामी की यह जंजीरें जिन्होंने देश को जकड़ा।
हम उनको तोड़ना तो क्या है, टुकड़े तक उड़ा देंगे।।''[61]

अक्टूबर 1939 में 'क्रांति' पत्रिका में प्रकाशित होने वाली कहानी 'लावारिश लाश' में किसानों की बदहाल, अत्यंत दुखद स्थिति को उकेरा गया है. इस पत्रिका को अंग्रेजों द्वारा जब्त घोषित किया

गया था क्योंकि यह उनके शोषणकारी शासन पर भयंकर चोट करती थी. किसानों के ऊपर होने वाले अत्याचार का चित्र इस कहानी में दिखाई देता है. भूखे, प्यासे हरखू को जमींदार के अमले उठा ले जाते हैं, उसे पीटते हैं और उसके श्रम से उगाया गया अनाज हड़प जाते हैं–

''अभी दुख का एक घाव भरा भी नहीं था कि दूसरा सर पर आ पहुंचा। पंद्रह दिन पहले उसकी पत्नी मर चुकी है। कफन के लिए पैसे न थे, उधार लाया, किसी प्रकार काम चला। भाई – बिरादरी को खिलाने–पिलाने में कुछ रुपये उड़े। और आज दोपहर के समय जब वह मड़नी चला रहा था, जमींदार के दो लट्ठबंद सिपाही उसके नज़दीक आंख तरेर कर खड़े हो गए। उसकी दस साल की छोटी लड़की साग और मोटी–मोटी रोटी लिए बैठी थी। सोचती थी अब आए, तब खाया। परंतु दुर्भाग्यवश उसका पिता उन दो रुखी–सूखी रोटियों की ओर दुख भरी दृष्टि से टुकुर–टुकुर देखता ही रह गया, एक ग्रास भी उसके मुख के अंदर न जा सका। सिपाही बोले चल हरामजादे! आज एक भी नहीं चलेगी! रुपये लेते बड़ा मजा आया होगा और देते जान निकलती है, नीच!''[62]

जमींदार किसानों पर मनमानी करते, मनमाना ब्याज लगाते, और वसूली न कर पाने पर किसानों को सताते.

''दोनों सिपाही हरखू को घसीटते, जलील करते, कटु गालियों की वर्षा करते मालिक के यहां ले चले। रास्ते भर वह हाथ जोड़–जोड़ कर पैरों पर गिरता रहा, परंतु उन्होंने उसकी एक न सुनी। सुनना क्या था ? उन्हें तो बकाया लगान, सूद और दंड के रूपये चाहिए। मालिक की लाल – लाल आंखों को देख कर हरखू कांप गया। एक क्षण के अंदर सैकड़ों डांटें महाजन ने बताई। अपना झूठा खाता खोल, जिसपर हरखू के जबरन हस्तखत करा लिए गए थे, महाजन महाशय ने अपने कब्र रुपी पेट पर हाथ फेर कर बोले, साढ़े तीन सौ कुल हुए। पाया केवल साढ़े बाईस् तब हरखू का एक अंग कांप उठा। आश्चर्य से बोला केवल साढ़े बाइस ?

'हां रे क्या मैं झूठ कहता हूं ? रामभरोसे लगा तो साले के ... ''पांच सात जूतियां उसके सर पर टूट गई। हरखू का भोजन मिल गया। मुरगा बनाया गया। पीठ पर ईंटे लादे गए। उसकी लड़की अपने बाप को पिटते देख रोती रही।''[63] प्रतिबंधित पुस्तक 'आजादी का बिगुल' में जुल्म के खिलाफ लोगों को ललकारा गया है–

''इलाही तुम भी ख़याल रखना गवाह तुमको बना रहे हैं।
हम हिंद वालों को पा के दुर्बल हर तरह से सता रहे हैं।।
सुना है फरियाद पर वो मेरे गज़ब के तेवर ढा रहे हैं।

तो सर कटाने की आर्जू में हम आज मक़तल में जा रहे हैं।।''[64]

आजादी के लिए लोगों में इस कदर उत्साह था कि लोग जेल जाने से भी न कतराते थे. बड़े–बड़े, ऊंचे खानदान के लोग इसके लिए हर कष्ट उठाने के लिए तैयार थे. भारत माता की बलि वेदी पर शीश चढ़ाए जा रहे हैं–

''अजब है उत्साह सबके दिल में कि लोग जेलों में जा रहे हैं।
जो कल थे मखमल पै सोने वालों वो आज कंबल बिछा रहे हैं।।
हम हिंद माता का ऋण चुकाने को खून अपना बहा रहे हैं।
मगर उन्हें क्या जवाब होगा जो हम पै गोली चला रहे हैं।।
हम हिंद मां के ऐसे हैं बच्चे जो जान अपनी लड़ा रहे हैं।''[65]

परतंत्र रह कर जीने को देशवासी व्यर्थ समझते हैं. स्वतंत्र होकर मरना स्वीकार है. वे इसके लिए हर जुल्म सहने को तैयार है.

''अधीन रह कर जीना बुरा है।
है मरना अच्छा स्वतंत्र होकर।।
सुधा को तज कर गरल का प्याला।
है भरना अच्छा स्वतंत्र हो कर।।
पड़ी हो हाथों में हथकड़ी गर।
तो स्वर्ण का सुख नहीं चाहिए फिर।।''[66]

देश हिंदुस्तानियों का था. शासक अंग्रेज बन बैठे थे. कानून उन्होंने बनाए थे अपनी सुरक्षा और अपनी हुकूमत को अधिक दमनकारी बनाने के लिए. ऐसे समय में क्रांतिकारियों का नाम लेने भर से रचनाएं प्रतिबंधित हो जाती थीं ओर रचनाकार को भरी मुश्किलों का सामना करना पड़ता. जनता में आक्रोश पैदा करना गुनाह था. 'रक्तध्वध' नाटक में बाबा, मदन और रवि आदि के बीच हुइ बातचीत से ज्ञात होता है कि देश को बंधनों से आजाद करने के लिए उनका रक्त उबल रहा है–

'मदन– बस भाई, बहुत हो चुका विशेष बातों में समय बिताने की आवश्यकता नहीं है। बहुत दिनों तक गुलामी का मजा उठा चुके। अब जरा शमशीर के प्रबल धार का मजा शत्रुओं को भी चखा दो। देश के शहीदों को याद रखकर आगे बढ़ो। और मातृभूमि की छाती पर भीषण तांडव करने वाली दासता को युवक मिलकर खतम कर दो।''[67]

रक्तध्वज नाटक में सूत्रधार देश की बलिवेदी पर चढ़ने वाले युवकों को पुनः याद दिलाता है साथ ही यह भी कहता है कि देश में ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो युवकों में अपूर्व उत्साह भरे.

'सूत्रधार–(हंसकर) शांत हो प्रिये, तुम्हारे मनोगत भावों का अध्ययन करने के लिए ही मैंने तुमसे यह प्रश्न किया था। परंतु तुम स्त्रियों को इतना महत्व देकर पुरुषों को नीचे गिरा रही हो, यह तुम्हारी भूल है। देखो अभी हाल में ही भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु जैसे होनहार युवक भारत की आजादी के लिए हंसते–हंसते फांसी के तख्तों पर चढ़ गए। स्वाधीनता का पुजारी चंद्रशेखर प्रसन्न मन से पुलिस की गोलियों का शिकार हो गया। बालक हरिकिशन निरंकुश नौकरशाही का कोपभाजन हुआ। त्यागवीर पंड़ित मोतीलाल आजादी के लिए लड़ते हुए अमरत्व को प्राप्त हुए। वीर जवाहर, सरदार पटेल, महामना मालवीय जी और देश के उज्जवल रत्न महात्मा गांधी जैसे योद्धा आज भी भरतीय स्वतंत्रता के लिए प्राणार्पण से चेष्टा कर रहे है। इतना होते हुए भी हमारे नवयुवकों में विशेष जागृति नहीं है, इसका भी एक कारण है। वह कारण है साहित्य की कमी। आज हमें आधुनिक समय का उपयुक्त साहित्य नहीं मिलता जिससे हमारे विचार बदलें ओर हमारे हृदय में देश प्रेम की सरिता प्रवाहित हो।''[68]

अंग्रेजों व जमींदारों के भयंकर जुल्म से किसान विद्रोही बनते जा रहे थे. शोषण अब असहनीय हो गया था. जब मृत्यु पहले से ही तय थी तो क्यों न आजादी का स्वाद चख कर कर मरें। लोगों के भीतर भयंकर आक्रोश पनप रहा था। अब क्रांतिकारी दल में शामिल होना चाहते थे–

''निश्चय ही हैक्सले की दुनियां बदल गई है। वह कायर और डरपोक नहीं रहा। वह इन दिनों कुछ चिंतित सा रहता है। अपने खेत के पास वाले पेड़ के नीचे बैठा एक दिन वह कुछ सोच रहा था। आधे घंटे तक वह मूर्तिवत बैठा रहा मानों उसमें प्राण ही नहीं। फिर कुछ स्पष्ट स्वर में सुनाई दिया, क्रमशः वह स्वर बढ़ने लगा। हैक्सले कहता था–

'ज़ारशही में गरीबों की दुर्दशा देख कर रोना आता है, उसके पास कपड़े नहीं हैं, खाने को नहीं है, ठठरियां शेष रह गई हैं। फिर भी ज़ार के दूत और चापलूस उन पर अत्याचार करते हैं, बिना मेहनत दिए काम लेते हैं, उनकी पैदावार छीन लेते हैं, उनकी स्त्रियों की बेइज्जती करते हैं और वह कृषक समाज हाय कितना निकम्मा समाज है, वह अपने दुखों का कारण नहीं जानता। आंतरिक कारण के बदले बाहरी कारण ढूंढ़ रहा है । वे कष्टों को भूल जाने के लिए उधार लेकर शराब पीते हैं। ज़ार और अमीरों के वेतन–भोगी विषय धर्म के ठेकेदार बनकर शांति का उपदेश देते हैं, राजनीतिक आंदोलनकारी भी तो इन्हीं गरीबों को ठगते हैं। आह! कितनी हृदय विदारक अवस्था

है। निरपराधों को जेल भेज दिया जाता है। अपना काम करने के लिए दूसरे के बदले दूसरे फांसी पर झुला दिए जाते हैं। रोने की आाा नहीं है, फरियाद का द्वार बंद है। ओह!....हम क्या करें ? ..... निहिलिस्ट.....बन तो सकता हूं।''[69]

शोषण की जड़ खोद डालने के लिए सब लोग जान हथेली पर लेकर कूद पड़े हैं. भीतर, बाहर सब जगह आग है–

''उबल रहा है खून आज मां! रण में मुझे उतरने दे।
कुद्ध केसरी सा दहाड़ कर निर्भय अरि से लड़ने दे।।
प्यासी है तलवार आज यह इसे खून पी लेने दे।
शोषित सरिता से कृपाण को तृषा तीव्र हर लेने दे।।
होकर सिंह शत्रु गज गण को आज मुझे दहलाने दे।
दीपशिखा बन रिपु पतंग को पल–पल राख बनाने दे।।''[70]

क्रांतिकारियों की गुप्त समिति की प्रतिज्ञाएँ बहुत कठिन होती थी. इसके निर्वाह के लिए जीवट व्यक्तित्व की आवश्यकता थी. 'भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास' में मन्मथनाथ गुप्त इस बात की चर्चा करते हैं. गुप्त समिति में नवयुवकों से ली जाने वाली प्रतिज्ञाएँ निम्नलिखित हैं–

''ओइम् बन्देमातरम्–ईश्वर, पिता, माता, गुरु, नेता तथा सर्वशक्तिमान के नाम यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि (1) मैं इस समिति से तब तक अलग न हूँगा जब तक कि इसका उद्देश्य पूर्ण न हो जाए. मैं पिता, माता, भाई, बहिन, घर गृहस्थी किसी के बन्धन में नहीं बधूँगा और मैं कोई भी बहाना न बनाकर दल का काम परिचालक की आज्ञा के अनुसार करुँगा. मैं वाचालता तथा जल्दबाजी छोड़ दल के हर एक काम को घ्यान से करुँगा. (ख) यदि मैं किसी प्रकार इस प्रतिज्ञा को तोडूँ तो ब्राह्मण, पिता, माता तथा प्रत्येक देश के देशभक्तों का अभिशाप मुझे भस्म में परिणत कर दे.

द्वितीय विशेष प्रतिज्ञा यों थी–

ओइम् बन्देमातरम्–(1) ईश्वर, अग्नि, माता, गुरु नेता को गवाह मानकर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं दल की उन्नति के हरेक काम को करुँगा, इसके लिए यदि जरुरत हुई तो प्राण तथा जो कुछ मेरे पास है सब को बलिदान कर दूँगा. मैं सभी आज्ञाओं को मानूँगा तथा उन सभी के विरुद्ध काम करुँगा जो हमारे दल के विरुद्ध हैं और उनको जहाँ तक हो नुकसान पहुँचाऊँगा. (2) मैं प्रतिज्ञा

करता हूँ कि दल की भीतरी बातों को लेकर किसी से तर्क नहीं करुँगा और जो दल के सदस्य हैं उनसे भी बिना जरुरत नाम या परिचय भी न पूछूँगा.''[71]

गुलामी से मुक्ति के लिए देशभक्त कोई भी कीमत चुकाने को तैयार थे. इनके तीव्र विद्रोह से ब्रिटिश सरकार बौखलाई हुई थी. चंद वीरों का दल इन्हें भयंकर चुनौती दे रहा था.

[1] दत्त, रजनी पाम : आज का भारत ; अनु. रामविलास शर्मा, ग्रंथ शिल्पी, संस्करण 2004, पृ. 35
[2] सक्सेना, प्रदीप : 1857 और नवजागरण के प्रश्न ; शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2011 पृ. 63
[3] सक्सेना, प्रदीप : 1857 और नवजागरण के प्रश्न ; शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2011 पृ. 82
[4] वर्मा, मदनलाल 'क्रान्त' : स्वाधीनता संग्राम के क्रांतिकारी साहित्य का इतिहास; भाग 1, प्रवीण प्रकाशन, सं 2006 पृ. 7
[5] सक्सेना, प्रदीप : 1857 और नवजागरण के प्रश्न ; शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2011 पृ. 83
[6] सक्सेना, प्रदीप : 1857 और नवजागरण के प्रश्न ; शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2011 पृ. 95
[7] सान्याल, शचीन्द्रनाथ : बन्दी जीवन ; आत्माराम एंड संस, दिल्ली, सं 2012, पृ. 27
[8] स्रकार, सुशोभन : बंगला नवजागरण, अनु. एस. एन. कानूनगो, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, सं. 1997, पृ. 8
[9] गुप्ता, रुपा : राधामोहन गोकुल की अप्राप्य रचनाएं , भाग 1 , स्वराज प्रकाशन , नई दिल्ली, सं. 2013 पृ. 14–15
[10] गुप्ता, रुपा : राधामोहन गोकुल की अप्राप्य रचनाएं , भाग 1 , स्वराज प्रकाशन , नई दिल्ली, सं. 2013 पृ. 15
[11] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य, भाग 1, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 1999 पृ. 47
[12] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य, भाग 1, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 1999 पृ. 48
[13] स्रकार, सुशोभन : बंगला नवजागरण, अनु. एस. एन. कानूनगो, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, सं. 1997, पृ. 26
[14] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य, भाग 1, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 1999 पृ. 144
[15] स्रकार, सुशोभन : बंगला नवजागरण, अनु. एस. एन. कानूनगो, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, सं. 1997, पृ. 5
[16] स्रकार, सुशोभन : बंगला नवजागरण, अनु. एस. एन. कानूनगो, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, सं. 1997, पृ. 6
[17] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य, भाग 1, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 1999 पृ. 146
[18] सान्याल, शचीन्द्रनाथ : बन्दी जीवन ; आत्माराम एंड संस, दिल्ली, सं 2012, पृ. 243
[19] सान्याल, शचीन्द्रनाथ : बन्दी जीवन ; आत्माराम एंड संस, दिल्ली, सं 2012, पृ. 336
[20] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य, भाग 1, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 1999 पृ. 23–24
[21] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य, भाग 1, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 1999 पृ. 72
[22] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य, भाग 1, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 1999 पृ. 81
[23] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य, भाग 1, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 1999 पृ. 82–83
[24] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य, भाग 1, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 1999 पृ. 96
[25] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य, भाग 1, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 1999 पृ. 148
[26] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य, भाग 1, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 1999 पृ. 172
[27] सान्याल, शचीन्द्रनाथ : बन्दी जीवन ; आत्माराम एंड संस, दिल्ली, सं 2012, पृ. 11
[28] सान्याल, शचीन्द्रनाथ : बन्दी जीवन ; आत्माराम एंड संस, दिल्ली, सं 2012, पृ. 13
[29] सान्याल, शचीन्द्रनाथ : बन्दी जीवन ; आत्माराम एंड संस, दिल्ली, सं 2012, पृ. 13
[30] सान्याल, शचीन्द्रनाथ : बन्दी जीवन ; आत्माराम एंड संस, दिल्ली, सं 2012, पृ. 130
[31] सान्याल, शचीन्द्रनाथ : बन्दी जीवन ; आत्माराम एंड संस, दिल्ली, सं 2012, पृ. 134
[32] सान्याल, शचीन्द्रनाथ : बन्दी जीवन ; आत्माराम एंड संस, दिल्ली, सं 2012, पृ. 33–34
[33] सान्याल, शचीन्द्रनाथ : बन्दी जीवन ; आत्माराम एंड संस, दिल्ली, सं 2012, पृ. 313
[34] सान्याल, शचीन्द्रनाथ : बन्दी जीवन ; आत्माराम एंड संस, दिल्ली, सं 2012, पृ. 313
[35] सान्याल, शचीन्द्रनाथ : बन्दी जीवन ; आत्माराम एंड संस, दिल्ली, सं 2012, पृ. 353
[36] राय, रुस्तम–प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–1, राधाकृष्ण, संस्करण–1999 पृ. 15
[37] वही, पृ. 28
[38] आगरा सत्याग्रह संग्राम 23 राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
[39] तनेजा, सत्येंद्र कुमार – सितम की इंतिहा क्या है ?, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, संस्करण 2010 पृ. 450
[40] राय, रुस्तम–प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–1, राधाकृष्ण, संस्करण–1999 पृ 269
[41] देउस्कर, सखाराम गणेश, अनु. : बाबूराव विष्णु पराड़कर– देश की बात , नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, सं –2010 , पृ. 253
[42] राय, रुस्तम–प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–1, राधाकृष्ण, संस्करण–1999 पृ. 221
[43] वही, पृ. 166
[44] वही, पृ. 146
[45] तनेजा, सत्येंद्र कुमार – सितम की इंतिहा क्या है ?, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, संस्करण 2010 पृ. 409

[46] राय, रुस्तम–प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–2, राधाकृष्ण, संस्करण–1999 पृ. 112
[47] वही, पृ. 47
[48] वही, पृ. 47
[49] तनेजा, सत्येंद्र कुमार – सितम की इंतिहा क्या है ?, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, संस्करण 2010 पृ. 464
[50] आगारा सत्याग्रह संग्राम, पृ. 8 राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
[51] वही, पृ 8
[52] वही, पृ. 9
[53] राय, रुस्तम–प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–1, राधाकृष्ण, संस्करण–1999 पृ. 15
[54] वही, पृ. 16
[55] वही, पृ. 55
[56] वही पृ. 61
[57] वही , पृ. 64
[58] वही, पृ. 74
[59] वही, पृ. 122
[60] अंग्रेजों ....पृ. 127
[61] तनेजा, सत्येंद्र कुमार – सितम की इंतिहा क्या है ?, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, संस्करण 2010 पृ. 293
[62] राय, रुस्तम–प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–1, राधाकृष्ण, संस्करण–1999 पृ. 238
[63] वही,, पृ. 239
[64] आजादी का बिगुल –4 गज़ल, राष्ट्रीय अभिलेखागार , नई दिल्ली
[65] वही,
[66] वही, पृ. 8 वीं ग़ज़ल
[67] तनेजा, सत्येंद्र कुमार – सितम की इंतिहा क्या है ?, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, संस्करण 2010 पृ. 462
[68] वही, पृ. 439
[69] राय, रुस्तम–प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–1, राधाकृष्ण, संस्करण–1999 पृ. 179
[70] तनेजा, सत्येंद्र कुमार – सितम की इंतिहा क्या है ?, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, संस्करण 2010 पृ. 470
[71] गुप्त, मन्मथनाथ : भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ. 208

पाँचवा अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य और आर्थिक मुक्ति का सवाल

5.1 ब्रिटिश राज की आर्थिक नीति, देशी उद्योग–धंधे और साहित्य

5.2 औपनिवेशिक भारत में किसानों–मजदूरों की ऋणग्रस्तता और मुक्ति का सवाल

5.3 स्वराज, गांधी और आर्थिक मुक्ति का सवाल

पाँचवा अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दी–साहित्य और आर्थिक–मुक्ति का सवाल

5.1 : ब्रिटिश राज की आर्थिक नीति, देशी उद्योग–धन्धे और साहित्य

ब्रिटिश राज के आगमन से पूर्व हिंदुस्तान की अर्थ व्यवस्था आत्मनिर्भर थी. कृषि व्यवस्था उन्नत दशा में थी और तमाम देशी उद्योग–धन्धे भी फल–फूल रहे थे. हिन्दुस्तान का व्यापार भी उन्नत दशा में था. यहाँ के उत्तम कोटि के माल का विश्व भर में निर्यात होता था. इसकी वस्तुएं दूसरे देशों में अत्यधिक पसन्द की जाती थी. ''अंग्रेजी शासन से पूर्व भारतीय ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का मूल आधार बैल और हल द्वारा खेती बाड़ी और साधारण औजारों की मदद से दस्तकारी की धुरी पर टिके आत्मनिर्भर ग्राम थे जो कि राजनैतिक हलचल, धार्मिक उथल–पुथल और विनाशकारी युद्धों के पश्चात भी स्वावलम्बी थे.''[1] ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के अंतर्गत कृषि और उद्योग दोनों थे. सभी प्रकार के व्यवसाय होते थे. ''ग्राम में कृषि तथा उद्योगों का सम्मिश्रण था. गाँव में कृषकों के अतिरिक्त बढ़ई, लुहार, कुम्हार, जुलाहे आदि सभी प्रकार के व्यवसायिक प्रकार के लोग रहते थे जो एक दूसरे को सहयोग देते थे.''[2]

अंग्रेजों ने थोड़े बहुत बदलाव के साथ भूमि की कई व्यवस्थाएं कीं. उनकी नीतियाँ नई थीं. इनमें उन्होंने मात्र अपने मुनाफे का ध्यान रखा. मालगुजारी की दरें निरंतर बढ़ती रहीं. कृषक इन दरों को चुकता करने में लगातार असमर्थ होते गए. ''सबसे कम झमेला कर के सबसे ज्यादा भू राजस्व कैसे वसूल किया जाए, इसी इरादे से अंग्रेज शासक वर्ग ने अनेक तरह की भूमि व्यवस्थाओं की परिकल्पना की थी.''[3] 1764 से 1772 तक की भूमि व्यवस्था में राजस्व की वसूली का कोई नियम न था और न ही अधिकारी इस बात की जानकारी करना आवश्यक समझते थे कि कहाँ की जमीन पर कितना राजस्व तय करें. यही नहीं, किसी–किसी स्थान पर नवाब और अंग्रेज दोनों का शासन होने से जनता को दूहरे बोझ का सामना करना पड़ता था. 'आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास' में सव्यसाची भट्टाचार्य लिखते हैं, ''बंगाल में एक तरफ नवाब का शासन था, दूसरी तरफ भू –राजस्व उगाहने का काम अंग्रेज कंपनी के हाथ में था–जैसे दो राजा हों.''[4] ऐसी दशा जन–साधारण के लिए अत्यंत भयावह थी. उस समय की दीन दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता. एक ओर शासकों का अत्याचार ऊपर से अकाल का दुसहः अनुभव. जनता में त्राहि–त्राहि मची हुई थी. ऐसे समय में भी लगान वसूली की दरों में कोई कमी नहीं हुई. ''अंग्रेज पैसे वसूलते थे और 'डिस्पैच'(रपट) लिखते थे. बंगाली रोता था और कंगाल होता जाता था. ऐसे में 1769–70 का अकाल आया. क्वार–कार्तिक में एक बूँद पानी नहीं बरसा. खेतों में खड़े धान के पौधे सूख कर

खरपतवार हो गए. जिन थोड़े से खेतों में फसल लगी थी उसे राजा के कर्मचारियों ने सिपाहियों के लिए खरीद लिया. लोगों को खाना नहीं मिल पा रहा था....पर मुहम्मद रजा खाँ मालगुजारी वसूली का मालिक था.....उसने एकदम से सौ पर दस रुपए मालगुजारी बढ़ा दी. पूरे बंगाल में हाहाकार मच गया. लोगों ने पहले भीख माँगना शुरु किया, बाद में भीख देने वाला भी कोई नहीं रहा. लोगों ने अपने बैल–बछिया सब बेच दिये. हल–फाल , घर–द्वार बेच दिए और बीज के लिए रखा धान खा गए, जमीनें बेच दीं, फिर अपनी लड़कियाँ बेचने लगे, फिर अपने लड़के बेचने लगे. बाद लड़की–लड़कों, स्त्रियों को भी कौन खरीदे ?''[5]

ब्रिटिश राज में जब्त की गई सखाराम गणेश देउस्कर की पुस्तक 'देश की बात' में किसानों के सर्वनाश का चित्रण है. अंग्रेजों की नई नीतियों की बदौलत किसानों की स्थिति दरिद्रता की चरम सीमा तक पहुँच गई थी. सखाराम जी लिखते हैं, ''हिंदू और मुगलों के समय प्रजा से जिस हिसाब से कर लिया जाता था, आज कल ब्रिटिश राज में किसान के अत्यंत बलहीन हो जाने पर भी उससे अधिक लिया जाता है. केवल यही नहीं, आजकल भूमि कर एक बंगाल के सिवाय समस्त भारतवर्ष में बराबर बढ़ाया जा रहा है. अधिक कर देने के कारण ही लोग दरिद्र हो गए हैं. पर कर कब बढ़ाया जाएगा, इसका कुछ भी ठिकाना न रहने के कारण जमीन का बहुत नुकसान हो रहा है. ''[6]

आगे चल कर अंग्रेजों ने नवाब के शासन को समाप्त कर सत्ता तथा वसूली का जिम्मा अपने नियंत्रण में कर लिया. उन्होंने भारतीय अधिकारी को पदच्युत कर उसके स्थान पर यूरोपीय अधिकारी की नियुक्ति की. '' बंगाल के नवनियुक्त गवर्नर वारेन हेस्टिंग्ज़ की यह इच्छा थी कि मालगुजारी प्रशासन को भारतीयों से एकदम मुक्त करा कर अंग्रेजों को प्रांत के संसाधनों का एकमात्र नियंत्रक बना दिया जाए. 1772 में उसने फ़ार्मिंग के नाम से एक नई व्यवस्था का आरंभ किया जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, जिलों के यूरोपीय कलेक्टरों को अब मालगुारी की वसूली का नियंता बना दिया गया, जबकि वसूली का अधिकार सबसे बड़ी बोली लगाने वालों को दिया जाने लगा. बंदोबस्तों (settlements) की अवधि के बारे में अनेक प्रयोग किए गए, पर फ़ार्मिंग व्यवस्था आखिरकार स्थिति को सुधारने में असफल रही, क्योंकि फ़ार्मर(वसूली करने वाले) उत्पादन प्रक्रिया की चिन्ता किए बिना अधिक से अधिक वसूली की कोशिश करने लगे. फलस्वरुप किसानों पर मालगुजारी की माँग का बोझ बढ़ा और अकसर यह बोझ इतना कमर–तोड़ होता था कि उसकी वसूली की ही नहीं जा सकती थी. अंधाधुंध प्रयोगों की इस पूरी अवधि का कुल परिणाम खेतिहर

आबादी की तबाही रहा. इसलिए 1784 में लॉर्ड कार्नवालिस को राजस्व शासन को चुस्त बनाने का विशिष्ट बनाने का आदेश देकर भारत भेजा गया.''[7]

1786 में लॉर्ड कार्नवालिस गवर्नर जनरल बने. उसने भूमि व्यवस्था की नीति लागू की. ''बंगाल 1776 के धक्के से सँभल नहीं पाया था. लोगों को उम्मीद थी कि अगर भू–राजस्व की दर तय हो जाए तो शायद कोई रास्ता निकाला जा सके. इसके अलावा भू–राजस्व का परिमाण अगर तय कर दिया जाए तो भविष्य में उसे बढ़ाने की क्षमता कंपनी के पास नहीं रह जाएगी. पर कुछ समय के लिए वह निश्चित हो सकेगी. इसकी जरुरत भी थी, क्योंकि इसी भू–राजस्व से प्राप्त धन से इस देश में माल खरीद कर कंपनी इंग्लैण्ड में बेचती है. 1789 में इसीलिए कार्नवालिस ने जमींदारों के साथ एक दस साला बंदोबस्त किया और यही बंदोवस्त 1793 में 'इस्तमरारी बंदोबस्त' के नाम से प्रसिद्ध हुआ.''[8]

इस व्यवस्था के तहत जमीन पर अब जमींदारों का अधिकार हो गया. अंग्रेजी हुकूमत व किसानों के बीच जमींदार वर्ग के उदय से राहत की उम्मीदें पुनः डूब गईं. ''1793 का स्थायी बंदोवस्त जमींदरों के साथ किया गया. बंगाल, बिहार, उड़ीसा की एक–एक इंच जमीन अब एक जमींदार का हिस्सा बन गई, और जमींदार को उस पर तय मालगुजारी देनी थी. ''[9] अंग्रेजों द्वारा लगान की दरें निरंतर बढ़ाई गई तथा विपत्तियों के समय भी उसकी वसूली बड़ी कड़ाई के साथ की गई. परिणामस्वरुप ब्रिटिश राज की आय में निरंतर वृद्धि होती रही. ''विजेताओं के लाभांश के स्रोत वाणिज्य में नहीं, बल्कि भू–राजस्व में निहित थे. लाभांश को अधिकतम करने के लिए भू–राजस्व का अधिकतम करना जरुरी था. बंगाल में जमींदारों पर लगातार दबाव डालने का और अधिकतम बोली बोलने वाले को अस्थायी राजस्व फार्मों की नीलामी देने की व्यवस्था का यही कारण था. बंगाल में 'दीवानी भूमि' से वस्तुतः प्राप्त राजस्व 1762–63 में, निजामी शासन के दौरान , 64.5 लाख रु. से बढ़कर कंपनी सरकार की 'दीवान' के पहले वर्ष में ही 147.0 लाख रु. ही गया. दूसरे आँकड़ों के अनुसार बंगाल का राजस्व 1765–66 में 2.26 करोड़ रु. से बढ़ कर 1778–79 में 3.7 करोड़ रु. हो गया. यह दबाव इतना भयानक था कि 1769–70 के अकाल के दौरान भी, जिसमें बंगाल के खेतिहरों की कुल जनसंख्या का एक –तिहाई भाग साफ हो गया, राजस्व के निर्धारण में कोई कटौती नहीं की गई. ''[10]

अंग्रेजो की आय में वृद्धि और सामान्य जनों की दुर्दशा का चित्रण तत्कालीन लेखकों ने अपनी रचनाओं में किया. राजाओं के शासन में लगान वसूली में कठोरता नहीं बरती जाती थी. अन्न का उत्पादन न होने पर लगान माफ कर दी जाती. पर अंग्रेजी शासन में यह संभव न था. इस समय

बर्बरता चरम सीमा पार कर गई. सखाराम गणेश देउस्कर लिखते हैं, '' अंग्रेज जो कर बैठाते हैं, कौड़ी–कौड़ी वसूल कर लेते हैं. बंगाल के अंतिम नवाब ने सन् 1764 में अर्थात् अपने राज्य के अंतिम वर्ष में प्रजा से 81 लाख 75 हजार 5 सौ 30 रुपये वसूल किए थे. बंगाल, बिहार, उड़ीसा का राज्य पा कर अंग्रेजों ने जिस कठोर नीति का अवलंबन किया था, उससे सन् 1794 में राजस्व का परिणाम वार्षिक दो करोड़ 68 लाख रुपये हो गया! सन् 1802 में अवध के नवाब से अंग्रेजों को इलाहाबाद तथा और कई जिले मिले. मुसलमान नवाब के समय इन जिलों का भूमि कर 1 करोड़ 35 लाख 23 हजार 4 सौ 70 रुपपये स्थिर किया गया था. नवाबगण इसमें से कितना वसूल करते थे और कितना छोड़ देते थे उसका ठीक पता नहीं लगता. पर अंग्रेजों ने तीन ही वर्षों से 1 करोड़ 68 लाख 23 हजार 90 रुपये की वार्षिक आय कर ली. अंग्रेजों ने मद्रास में जब पहले–पहल भूमि कर ठीक किया था उस समय वहाँ के लोगों को कुल उत्पन्न का आधा सरकार को देना पड़ता था. सन् 1817 में महाराष्ट्र राज्य अंग्रेजों के हाथ लगा. उस समय इसके राजस्व का परिमाण 80 लाख रुपये था. कुछ ही वर्षों के बाद अंग्रेज इसी जमीन से 1 करोड़ 50 लाख वसूल करने लगे. तब से महाराष्ट्र में बराबर जमीन की लगान बढ़ रही है.''[11]

अंग्रेजों की आय में निरंतर हो रही वृद्धि का कारण कृषि–व्यवस्था की उन्नत दशा न थी, अपितु शोषण व अत्याचार बढ़ गये थे. अकाल बढ़ने पर भी कोई व्यवस्था न की जाती, बल्कि वसूली में और भी अधिक कठोरता बरती जाती. ''सन् 1769 में बंगाल में अकाल पड़ने की संभावना हुई थी. शस्य और अन्न बराबर मंहगा होने लगा. इतने पर भी कर वसूल करने में राजपुरुषों ने उस समय खूब दक्षता दिखाई.''[12] अपनी शोषणकारी नीतियों की बदौलत अंग्रेजों को बहुत अधिक फायदा हुआ. ''मि. ब्रूक्स आदमूस 'ला ऑफ सिविलिजेशन एंड डीके (Law of civilization and Decay) नामक अपने ग्रंथ में लिखते हैं, '' Possibly, since the world began] no investment has ever yieled the profit repated from the Indian plunder- pp263 अर्थात्'पृथ्वी जब से प्रारम्भ हुई है तब से आज तक के किसी व्यवसाय से इतना नफा नहीं हुआ है जितना भारत की लूट से हुआ है. ''[13]

अंग्रेजों ने जो भी नियम बनाए सब उनके हितों की रक्षा करने वाले थे, जो शोषण को बढ़ावा देते थे. शोषित जनता दिन–ब–दिन बदहाल होती चली गई. ''मालगुजारी की माँग का बोझ किसानों के सिर पर डाल दिया गया जिनसे अकसर ग़ैर–कानूनी करों की भी माँग की जाती थी. बाद में, 1799 और 1812 के कानूनों (रेग्युलेशंस) ने जमींदारों को अधिकार दिया कि लगान न देने की स्थिति में किसी अदालत की अनुमति के बिना भी काश्तकारों की संपत्ति जब्त कर सकते थे. इसलिए आश्चर्य

नहीं कि जमींदारों की इस असीमित शक्ति के समर्थन के संचयी परिणाम (cumulative effect) के रुप में स्थायी बंदोवस्त से वास्तविक काश्तकारों(खेतिहरों) की हालत बिगड़ी.''[14]

लॉर्ड कॉर्नवालिस के स्थायी बंदोवस्त से किसानों को कोई राहत न पहुँच सका. शोषण बेलगाम बढ़ता रहा. आगे चल कर रैयतवारी प्रथा का जन्म हुआ. ''रैयतवारी का प्रयोग 1792 में अलेक्जेंडर रीड ने बड़ा महल में आरंभ किया, और मुनरो को जब 1801 में समर्पित जिलों (ceded districts) का राजस्व प्रशासन संभालने को कहा गया, तो उसने इसे जारी रखा. जमींदारों की जगह अब ये लोग गांव से सीधे मालगुजारी जमा करने लगे और हर गांव की मालगुजारी अलग–अलग तय की गई, और इस तरह रैयतवारी व्यवस्था का जन्म हुआ.''[15]

व्यवस्था बदल जाने से देश की आर्थिक स्थिति पर कोई फर्क न पड़ा, सिवाय इसके कि शोषण अधिक गहरा हो गया. रैयतों से वसूल करने वाली राशि बहुत अधिक होती थी. ''मालगुजारी की माँग अकसर इतनी अेधक होती थी कि उसे बड़ी कठिनाई से वसूल किया जाता था, या वह वसूल भी नहीं होनी थी. इसलिए किसानों को ऐसे अनुचित बंदोवस्तों पर सहमति के लिए बाध्य किया जाता था.''[16] ब्रिटिश सरकार का प्रमुख उद्देश्य यहाँ के धन की लूट करना था. इसके लिए जितने भी नियम बने वे सभी उनके ही हित में थे. यहाँ की भूमि और उसके उत्पादों पर एकाधिकार स्थापित करने के लिए वे किसी भी हद तक जा सकते थे. ''उन्नीसवीं सदी के मध्य तक कंपनी के प्रशासन ने भूमि में निजी संपत्ति का सृजन करते हुए और तीन अलग–अलग समूहों को मालिकाना अधिकार देते हुए मालगुजारी प्रशासन की तीन व्यवस्थाएं पैदा कीं– जमींदारों के साथ स्थायी बंदोवस्त किया गया और ग्राम समुदायों के साथ महलवारी बंदोवस्त किया गया. जब पंजाब और मध्य भारत को जीता गया तो इस तीसरी बंदोवस्त को इस सिंध, असम तथा कुर्ग में लागू किया गया. जमींदारी व्यवस्था को मद्रास प्रेसिडेंसी के उत्तरी जिलों को लागू किया गया जहाँ जमींदार मिल गए. एक अनुमान के अनुसार 1928–29 में भारत में खेती योग्य भूमि का लगभग 19 प्रतिशत भाग जमींदारी बंदोवस्त, 29 प्रतिशत महलवारी और 52 प्रतिशत रैयतवारी बंदोवस्त के अंतर्गत था. जैसा कि हमने देखा, इन सभी बंदोवस्तों की एक साझी विशेषता थी अति आकलन, क्योंकि मालगुजारी की आय को यथासंभव बढ़ाना कंपनी की सरकार का प्रमुख उद्देश्य था.''[17]

देश की आर्थिक दुर्दशा को सरकार द्वारा जब्त की गई रचनाओं में भरपूर उकेरा गया. जनता की बदहाल स्थिति को लेखकों ने सामने रखा. 'देश की बात' पुस्तक में सखाराम गणेश देउस्कर बताते हैं, ''मद्रास के किसानों के बारे में कलकत्ते के 'इंग्लिश मैन' के संपादक ने 17 फरवरी , 1880 को

लिखा था–कंपनी के समय मद्रास के किसानों से जितना कर वसूल किया जाता था, आजकल उससे दस लाख से भी अधिक रुपया अर्थात् एक तिहाई अधिक वसूल किया जाता है. कर के साथ–साथ मद्रास में दुर्भिक्ष का प्रकोप भी बढ़ गया है.''[18]

कर अदायगी में किसानों की सारी जमीनें, यहाँ तक कि घर की साधारण से साधारण वस्तुएं बेचनी पड़ जाती. ऐसी स्थिति को देख कर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका जीवन कितनी विवशताओं से भरा था. ''बंबई की व्यवस्थापक सभा के सिविलियन सदस्य मि. रोजर्स ने भारत के अंडर सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को मद्रास के किसानों की अवस्था के बारे में एक पत्र लिखा था. इसमें वे कहते हैं कि सन 1879/80 से सन 1889/90 तक के ग्यारह वर्षों में सरकार ने जमीन का लगान वसूल करने के लिए 8,40,713 आदमियों की 19,63,364 बीघा जमीन नीलाम कर ली. केवल जमीन देकर भी प्रजा को छुट्टी नहीं मिली. उन्हें थरिया, लोटा तक बिक्री कर 29 लाख 65 हजार 81 रुपये और भी सरकार को देना पड़ा. उक्त 19,63,364 बीघा जमीन में खरीदार न मिलने के कारण 11.75 लाख बीघा जमीन सरकार को खुद खरीदनी पड़ी. यदि लगान अधिक न होता तो इस जमीन के लिए खरीदार जरुर ही मिल जाते. अत्यधिक कर का इससे बढ़कर क्या प्रमाण दिया जा सकता है ?''[19]

अंग्रेजों ने देश की समूची आर्थिक व्यवस्था को हस्तगत कर लिया था. उन्होंने कृषि के वाणिज्यिकरण की प्रक्रिया शुरु की. अब तक जिन जमीनों पर किसान अपनी व्यवस्थानुसार फसलों का उत्पादन करते थे. नई नीतियों के फलस्वरुप उन्हें अंग्रेजों द्वारा तय की गई फसलों का उत्पादन करना पड़ रहा था. अंग्रेजों ने खाद्यान्न फसलों के बजाय व्यापारिक महत्व की फसलों की जबरन खेती करवाई. इसके लिए वे जबरन नगद पैसा भी देते थे. पैसा लेने वाले किसान एक तरह से उनके दास बन जाते थे. '' 19 वीं शताब्दी के मध्य तक अंग्रेजों ने भारतीय कृषि व्यवस्था को परिवर्तित कर दिया जिससे ग्राम की आत्मनिर्भता तथा स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया. उद्योग तथा कृषि का संतुलन नष्ट हो गया. अभी तक कृषि एक जीवन–यापन का तरीका था न कि व्यापारिक हितों की पूर्ति का साधन. ग्राम की पैदा हुई अनेक वस्तुओं को केवल स्थानीय या देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं, बल्कि अंतर्राष्ट्र व्यापार का विषय बना दिया था. अब केवल अतिरिक्त पैदावार का ही व्यापार न होता था बल्कि यह व्यापार का आवश्यक अंग बना दिया गया. अब भारत का निर्यात मुख्य रुप से कृषि द्वारा पैदा की हुई वस्तुओं का होने लगा. इसमें कपास, पटसन, तिलहन, गन्ना, तम्बाकू, चाय, रबड़ मूंगफली, मसाले, फल आदि थे. अब विशेष फसलों का उत्पादन ग्रामीण उपयोग के लिए नहीं, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय मंडियों के लिए होने लगा.''[20]

कृषि का वाणिज्यिकरण कृषकों के लिए अभिशाप था. ''सरकार की भूमि प्रबन्ध की विभिन्न प्रथाओं जैसे जमींदारी रैयतवाड़ी , महालबाड़ी आदि ने कृषक की हालत खराब कर दी थी. उदाहरणतः जमींदारी प्रथा में अनुपस्थित जमींदार वर्ग कृषकों के लिए अभिशाप ही था जिसने सामान्य किसान को कर्जदार बना दिया था. बढ़ते हुए अकालों ने भी किसानों की हालत बदतर कर दी थी. अंग्रेजों ने भूमि लगान अत्यधिक लगा दिया था जिसे देने के लिए ऋण तथा उस पर ब्याज देना पड़ता था. अतः कृषि का वाणिज्य अंग्रेजों की नीति का एक भाग था तथा भारतीयों की मजबूरी थी. कुछ अर्थों में यह अंग्रेजों द्वारा भारतीय कृषि का बलात् व्यावसायिकरण था.''[21]

कृषि के अतिरिक्त ब्रिटिश सत्ता ने भारतीय उद्योग–धन्धों को भी पूरी तरह नष्ट कर दिया. अंग्रेज ''भारत को आर्थिक दृष्टि से शोषित करते हुए केवल कच्चे माल का निर्यात करने वाला देश बनाना चाहते थे. 1700 से 1850 तक अनेक कानून बनाये गये जिनके द्वारा भारतीय उद्योगों की उन्नति रुक गई. उदाहरण के लिए 1769 में कम्पनी ने कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने इस तरह के सुझाव दिए जिसे बंगाल के कच्चे रेशम के निर्यात को प्रोत्साहन मिले, साथ ही रेशम के तैयार माल पर प्रतिबन्ध भी लगाये, कुछ वर्षों पूर्व उन्होंने रिचर्ड विल्डर नामक व्यक्ति को कासिम बाजार भी भेजा जो बंगाल सिल्क की कमियों को दूर करे जिसने अपनी मृत्यु पर्यन्त (1761) तक अनेक सुधार कार्य किये, 1770–75 के बीच कम्पनी ने बंगाल सिल्क की कमियों को दूर करने के लिए इटेलियन तरीके भी अपनाये. साथ ही सिल्क का काम करने वाले जुलाहों को मजबूर किया गया कि वे कम्पनी की फैक्ट्रियों में ही काम करें.''[22] देश की ऐसी दशा कवियों व लेखकों को कचोट रही थी. ''भारतेन्दु ने 8 मार्च 1864 की 'कविवचन सुधा' में 'हिंदुस्तान में दरिद्र होने के कारण' नाम के लेख में लिखा था : कपड़ा बनाने वाले, सूत निकालने वाले, खेती करने वाले आदि सब भीख माँगते हैं–खेती करने वालों की यह दुर्दशा है कि लंगोटी लगाकर, हाथ में तुंबा ले भीख माँगते हैं और जो निरुद्यम हैं उन को तो अन्न की भ्रान्ति है.''[23]

भारतीय जुलाहों व कारीगरों पर अंग्रेज अनेक अत्याचार करते थे. उन्होंने यहाँ के उद्योग–धन्धों को पूरी तरह नष्ट करने के लिए हर नीति का सहारा लिया. 'कारीगरों का सर्वनाश' शीर्षक में सखाराम गणेश देउस्कर लिखते हैं,''हिंदूस्तानी कारीगरी नष्ट होने का सबसे प्रधान कारण अंग्रेजों का अत्याचार और बेहद स्वार्थपरता है. अंग्रेज इस देश में व्यापारी बनिए बन कर घुसे थे. इसलिए इस देश के व्यापार में अपनी ही प्रधानता बनाने के लिए स्वभाव से ही उनके हृदय में बलवान इच्छा उत्पन्न हुई थी. इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए उन्होंने जैसे बेआइनी और रोंएं थर्राने वाले उपायों से काम लिया था उन्हें सुनने से सबकी छाती दहल उठेगी.''[24]

अंग्रेजों ने भारत को बाजार बनाया, जहाँ उनके तैयार माल की खपत हो सके. ''ब्रिटेन और भारत के बीच 'शास्त्रीय उपनिवेशी आर्थिक संबंध' 1857 के विद्रोह के कुचले जाने के बाद ही उभरे. माना जाता था कि भारतीय साम्राज्य अपना खर्च आप उठाएगा और साथ ही देश के संसाधन साम्राज्य के उद्देश्यों के लिए उपलब्ध रहेंगे. भारत के ब्रिटेन के तैयार मालों के लिए बाजार का और खेतिहर कच्चे मालों के स्रोत का काम करन था. उन्नीसवीं सदी के अंतिम और बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों तक भारत ने साम्राज्य के प्रति अपने अनेक दायित्व सफलतापूर्वक पूरे किए. वह ब्रिटेन के कपास, लोहा और इस्पात मशीनरी आदि उद्योगों के एक बड़े बाजार का काम करता रहा.''[25]

हिंदुस्तान में अपना बाजार बनाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने एक ओर आयात कर में भारी कमी की, दूसरी ओर ब्रिटेन में भारत के तैयार मालों पर इतना अधिक कर लगा दिया कि यहाँ के माल ब्रिटेन के बाजार में पहुँच ही न सके. इससे भारतीय व्यापारियों को बड़ी हानि हुई दूसरी ओर ब्रिटेन के तैयार माल की भारतीय बाजारों में बाढ़ आ गई. ''सीमा शुल्क कार्यालय के आँकड़ों से पता चलता है कि 1789–90 और 1797–98 के बीच पूर्वी भारत में आयात की तुलना में निर्यात की मात्रा बढ़ गई. पहले के वर्षों में निर्यात की मात्रा आयात से 11.6 लाख पौंड अधिक थी., जबकि बाद के वर्षों में यह मात्रा 41.5 लाख पौंड अधिक हो गई.''[26]

जब्त घोषित की गई रचनाओं में भारतीय उद्योगों की इस बदहाली को बखूबी उकेरा गया. भारत की वास्तविक स्थिति और अंग्रेजों के अत्याचार को सामने रखने के अपराध में उन पर पाबंदी लगा दी गई थी. ''मिस्टर टामस सिडेन हाम ने ठीक ही कहा है कि Englisg man are most apt than those of any other nation to commit violence in foreign counties. This Ibelieve to be the case in India. अर्थात्, 'अन्यान्न जातियों की अपेक्षा परदेशियों पर जुल्म करने में अंग्रेज सबसे आगे हैं. मैं समझता हूँ, भारत की यही हालत है.''[27]

हिंदुस्तान की हालत दिन– ब –दिन खराब होती जा रही थी. विश्व की हलचलों का प्रभाव भी इस पर पड़ रहा था. ''भारत की औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था पर विश्व आर्थिक मन्दी की प्राणघातक प्रतिक्रिया हुई. कृषि उत्पादों के मूल्यों में तेजी से गिरावट होने से भारतीय अर्थव्यवस्था बिलकुल टूटने के कागार पर आ पहुँची. यहाँ अस्सी प्रतिशत आबादी कृषि पर ही निभर थी. भारतीय किसानों की दुर्दशा कल्पना से परे थी. उनकी क्रय क्षमता न्यूनतम सीमा पर पहुँच गई थी.

इस आर्थिक संकट का बोझ जनता के कंधों पर डालने के लिए ब्रिटिश सरकार ने अनेक पक्षपातपूर्ण आर्थिक उपाय लागू किए. सम्राज्यवाद को वरीयता देने वाली जो भेदभावपूर्ण नीति

उन्होंने लागू की थी उसका प्रभाव भारत के स्टील और कपड़ा उद्योग पर भी पड़ा और सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेंबली में जोरदार प्रतिरोध को नकारते हुए ब्रिटिश सरकार ने ओटावा व्यापार समझौते(ओटावा ट्रेड एग्रीमेंट) पर हस्ताक्षर कर भारतीय अर्थ व्यवस्था को सर्वाधिक बुरी हालत में पहुँचा दिया.''[28]

भारतीय मजदूरों पर बढ़ते भयंकर दबाव अवर्णनीय हैं. उन पर भांति–भांति के अत्याचार किए जाते थे. कंपनी को माल बेचने के लिए विवश किया जाता था. खास बात यह थी कि उन्हें खरीदारों द्वारा तय किए गए मूल्य के हिसाब से अपने माल का मूल्य रखना पड़ता था. तत्कालीन साहित्य में इन सब की चर्चा मिलती है, ''कंपनी के नौकर ढाका और लक्ष्मीपुर विभाग के निवासियों को तमाकू, रुई, लोहा आदि चीजें बाजार भाव से अधिक मूल्य में बेचने पर लाचार करते हैं! मूल्य वसूल करने में जबर्दस्ती की जाती है. इसके सिवाय चपरासी की खुराक के नाम से कुछ रकम वसूल की जाती है. इसलिए यहाँ की आढत नष्ट सी हो गई है. लक्ष्मीपुर में कंपनी के कर्मचारी अपने घर के लिए लोगों से जबरदस्ती जमीनें छीन लेते हैं उसका मूल्य भी नहीं देते. बदमाशों की सलाह से सिपाही साथ लेकर गोरे लोग अनेक गाँवों में जा कर बिना कारण झगड़ा फसाद मचाते हैं. जगह–जगह महसूल वसूल करने के लिए चौकी बनाई गई है. कंपनी के नौकर गरीब लोगों के घर में जो पाते हैं, उसे बेच कर प्राप्त की हुई पूंजी अपने पल्ले करते हैं. इस तरह के जुल्मों से देश का सत्यानाश हो रहा है.''[29]

कंपनी ने अपने शुरुआती दिनों से ही ऐसी नीतियाँ बनाईं जिससे यहाँ के उद्योग–धन्धों का विनाश किया जा सके. ''ईस्ट इंडिया कम्पनी के भारत में आगमन पर इस प्रकार के नियम बनाये जो भारतीय हस्तकला उद्योग के लिए हानिकारक सिद्ध हुए. उदाहरणतः अंग्रेजों ने इस तरह के नियम बनाए जिनसे भारतीय उद्योगों का ह्रास किया जा सके, तथा ब्रिटेन में तैयार माल की खपत हो सके. 1769 में कम्पनी ने बंगाल में कच्चे रेशम की पैदावार को बढ़ावा दिया परंतु सिल्क से तैयार माल पर प्रतिबंध लगाये, इसी प्रकार तट कर नीति तथा आंतरिक चुंगी व्यवस्था को तैयार करते समय ब्रिटिश हितों को प्रमुखता दी. अतः कम्पनी ने विभेदकारी कानूनों से भारतीय हस्तकला नष्ट हो गई और इनका स्थान ब्रिटिश सामग्री ने ले लिया.''[30]

इसका परिणाम यह हुआ कि देश के समस्त उद्योग व्यवस्था चरमरा गई. ''भारत जो पहले मुख्यतः एक निर्यातक देश था, अब मुख्यतः आयातित देश बन गया. पहले भारत के तैयार माल से विदेशी मंडी भरी हुई थी इसके विपरीत अब भारत की मंडियां विदेशी मालों से भरपूर हो गईं. भारत के उद्योग–धन्धे ठप हो गए. लाखों भारतीय नागरिक तथा हस्तकलाएं नष्ट हो गईं.''[31]

कारीगरों, बुनकरों के ऊपर किए जाने वाले अत्याचारों का वर्णन मुनीश्वरदत्त अवस्थी की कहान 'चमेली का चौरा' में भी मिलता है. यह कहानी इस भयावहता का चित्र लेकर सामने आती हे. अंग्रेजी सरकार द्वारा इस कहानी को जब्त करार दिया गया था. ''उस जमाने में कपड़ा बुनने वाले व्यक्तियों को कुछ धन पेशगी दिया जाता था और वे इस बात के लिए लाचार किए जाते थे कि अपना सारा कपड़ा विदेशी व्यापारियों के ही कोठी में आ कर बेचें. वे अपनी इच्छा से अपने माल का मूल्य नहीं लगा सकते थे. मूल्य का निर्णय करना भी उन्हीं कोठी वालों के हाथ में था, जो कि उनका माल खरीदते थे.''[32]

इस प्रकार भारतीय कृषि उद्योग–धंधे अंग्रेजों ने हस्तगत कर लिया था. उस समय के साहित्य में इस बात की भरपूर चर्चा मिलती है. सरकार द्वारा लगाई गई पाबन्दियों के बावजूद लेखक देश की दुरवस्था का चित्रण अपनी लेखनी से करते रहे.

5.2 औपनिवेशिक भारत में किसान–मजदूरों की ऋणग्रस्तता और मुक्ति का सवाल

हिंदुस्तान में अपना आधिपत्य स्थापित करने के पश्चात अंग्रेजों ने यहाँ की हर व्यवस्था में ऊथल–पुथल मचा दी. उन्होंने यहाँ की परिस्थिति समझे बग़ैर नई व्यवस्थाएं लागू की. चूँकि यहाँ आने का उनका प्रमुख उद्देश्य धन की लूट करना था, इसलिए जन–सामान्य की चिन्ता न करते हुए उन्होंने मनमानी लूट–खसोट मचाई. देश की गरीब जनता को दुहरे शोषण का सामना करना पड़ता था. एक ओर अंग्रेज अधिकारी तो दूसरी ओर उनके द्वारा नियुक्त जमींदार. भारतीय अर्थ–व्यवस्था को चौपट करने में विदेशी शक्तियों ने प्रमुख भूमिका निभाई. इससे देश की आत्मनिर्भरता पर बड़ा आघात लगा. उद्योग–धन्धे नष्ट हो गए. मालगुजारी में लगातार वृद्धि होने से, पहले से अकालों की मार से त्रस्त किसान अपनी जमीन छोड़ने पर बाध्य हो जाते थे. लगान अदायगी के लिए उन्हें कर्ज लेना अनिवार्य हो जाता. एक बार कर्ज लेने के उपरांत वे कभी मुक्त न हो पाते थे. कर्ज के ऊपर मनमाना ब्याज होने से किसानों का सर्वस्व दाँव पर लग जाता. अन्त में वे मजदूर होकर आजीवन मालिक के गुलाम बन जाते थे. यहाँ तक कि उनकी आने वाली पीढ़ियाँ भी इस दलदल में फँस जाती थी. उन्हें अंग्रेजों , सूदखोर, जमींदार व उनके लठैत सबका अत्याचार सहन करना पड़ता था. पुरानी परंपरा के जमींदार किसानों को थोड़ी –बहुत छूट भी दे देते थे. विदेशी सत्ता को यह नागवार गुजरता था. वे उनकी जमीनें छीन लेती थी. नई व्यवस्था में लूट का कोई हिसाब न था. इस पर कोई रोक–टोक न थी. ''बंगाल में जमींदारों को कुल मिलाकर 30 लाख पौंड (लगभग 3 करोड़ रुपये) मालगुजारी देनी पड़ती थी. वहाँ पहले जो वसूली होती थी, उससे यह रकम बहुत ज्यादा थी. कुछ पुराने ढंग के जमींदार अपनी परंपरा निभाते रहे. कठिनाई के समय वे किसानों से

मुरव्वत करते थे और उन्हें कुछ छूट दे देते थे. ऐसा करने पर इन जमींदारों की रियासत तुरंत ही नीलाम पर चढ़ा दी जाती थी. इन पुराने ढंग के जमींदारों की बहुत सी करुण कथाएं हैं. वे समझते थे कि किसानों की देखभाल करना उनका कर्तव्य है; लेकिन मालगुजारी न भर पाने पर अंग्रेजों ने निर्दयतापूर्वक उन्हें जमीन से अलग कर दिया. उनकी रियासतें खरीदने के लिए एक नए ढंग के लालची साहूकार आ गए. सरकारी मालगुजारी चुका देने पर अपनी जेबें भरने में इन्हें किसी तरह का आगा–पीछा नहीं था.''[33]

विदेशी सत्ता ने भूमि व्यवस्था की चाहे जो नीति अपनाई हो, सबका मूल उद्देश्य धन की उगाही करना था. किसानों को कहीं छूट न थी. वह अपनी मर्जी से खेत छोड़ भी नहीं सकता था. उसके ऊपर होने वाले अत्याचारों में कोई कमी न थी. ''पहले की मुसलमान सरकार की तरह रैयत की मर्जी के खिलाफ भी उसे खेत जोतने पर मजबूर किया जायेगा. खेत से मनमानी मालगुजारी वसूल की जाएगी और अगर रैयत खेत छोड़ कर भागे, तो उसे पकड़ मँगाया जाएगा. फसल तैयार होने तक मालगुजारी इरुकी रहेगी, लेकिन फसल कटते ही किसान से जो कुछ मिलेगा, छीन लिया जाएगा. उसके पास सिर्फ बैल–बधिया और बिया–बेसार बच रहेगा. वह भी नहीं रहा, तो आगे उसे उधार बीज दिया जाएगा, जिससे कि अपने लिए नहीं, बल्कि उनके लिए हल जोते. (मद्रास मालगुजारी का विवरण, 5 जनवरी 1818)''[34]

लगान की वसूली इतनी कठोरता से की जाती कि किसानों के पास कुछ न बचता. इस दौरान उनके साथ भयंकर जुल्म भी होते थे. ब्रिटिश राज में जब्त की गई कविता 'विद्रोही किसान' में कवि कहते हैं कि पैसे के समक्ष मनुष्यता का कोई मूल्य नहीं रह गया है–

''होती है पैसे की पूजा,
नहीं मनुज का मोल यहाँ पर।
लाखों नर का मैंने जीवन,
देखा महा नर्क से बदतर।''[35]

धन के अभाव में किसान ऋण लेने के लिए बाध्य हो जाते थे. इस प्रक्रिया में ''मालिक किसान धीरे–धीरे अपनी धरती ऋणदाता, व्यापारी तथा व्यवसायी वर्ग के हाथों बेचते जा रहे थे. व्यापारी लोग भूमि के मालिक तो बन जाते थे, पर धरती जोतते नहीं थे. वे उन पुराने किसान मालिकों को धरती पर बने तो रहने देते थे परंतु अब उनकी स्थिति दरिद्र और असहाय किराएदार किसान की हो जाती थी.''[36] किसानों की इस बदहाल स्थिति का कारण कर्ज था और कर्ज का कारण लगान

में निरंतर बढ़ोत्तरी थी. किसानों के खेतों पर दूसरे का अधिकार हो जाता था और वे मात्र श्रम करने वाले गुलाम. 'आज का भारत' में रजनी पाम दत्त भी किसानों की तबाही का दृश्य प्रस्तुत करते हैं. उन्होंने लिखा है, ''जमीन के मालिक अपने खेत उठा देते हैं ; महाजनों के कर्ज़ से किसानों के खेत छिन गये हैं, या दूसरों ने उन पर कब्जा कर लिया है. किसी ज़माने में यह मंशा रही होगी कि सीधे किसानों से मालगुजारी वसूल की जाएगी, लेकिन अब हालत बदल गई है.''[37]

जमींदारों की संख्या दिन–ब–दिन बढ़ती गई. इसका सीधा अर्थ यह है कि किसानों के ऊपर अत्याचार व लगान लगातार बढ़ते रहे. इसी क्रम में सूदखोरों व महाजनों का कारोबार बढ रहा था. ये किसानों व मजदूरों को सूद (ब्याज) पर पैसे उधार देते तथा उनसे मनमाना धन वसूलते. रजनी पाम दत्त लिखते हैं, '' इस तरह हिंदुस्तान में जमींदारी प्रथा की कड़ियाँ बढ़ती चली गई हैं. सबसे ज्यादा तेजी से वे नए जमाने में बढ़ी हैं. इससे मालूम होता है कि किस तरह किसानों की जमीनें उनसे छिनती जा रही हैं और छोटे–बड़े महाजन उद्योग–धन्धों में पैसा लगाने की गुंजाइश न पा कर खेती के ही आस पास मंडराते रहते हैं.''[38]

विदेशी सत्ता व किसानों के बीच बिचौलियों का जो एक नया वर्ग पैदा हो गया था, उससे शोषण में वृद्धि हुई. ''पूर्ववर्ती भारतीय कृषि व्यवस्था में सूदखोरी की जड़ें काफी मजबूत थीं. इसने अब छोटी किसान जोत के उच्छेद और भूमिपति तथा धनी किसान जोत के विकास को बहुत सुविधा दी. साथ ही सूदखोरी खुद एक पराश्रयी विकास था, जो इस प्रक्रिया पर अवलंबित था. सूदखोर ग्रामीण अधिशेष के हकदार के रुप में कभी–कभी भूमिपति के मुकाबले में उठ खड़ा होता था. ब्रिटिश प्रशासन के लिए किसान की सभी विपदाओं के स्रोत के रुप में 'ग्रामीण कर्ज़दारी' को जिम्मेदार मानना अकसर सुविधाप्रद होता था. मगर सूदखोर का इतना विशाल उभार खुद उपनिवेशवाद द्वारा भारतीय कृषि व्यवस्था में लाए जाने वाले रुपांतरण का ही एक अभिन्न अंग था. संक्षेप में, उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आधुनिक भारतीय भूमिपति का निर्माण हुआ और इसके साथ ही उसके और साम्राज्यवाद के बीच गठबंधन हुआ.''[39] प्रतिबंधित कविता 'किसानों की दशा' में उनकी दारुण स्थिति का अंकन है. बारिश में हर ओर पानी ही पानी है. घर में पानी का साम्राज्य है. गर्मियों में धूप उनके घर में सीधी आती है. उसका पुत्र जमीन पर पड़ा है. फटी सी दरी ओढ़ने के लिए है. इस घर में मात्र दरिद्रता का वास है. जमीन पर बिछाने के लिए बिछौना तक नहीं है. बीमार बच्चा तड़पता है. उसके इलाज का प्रबन्ध ऐसे में भला कैसे संभव है ?

''बरसात भये टपको करे पानी
गरमिन में भीतर घाम घुसै
दुखियारे किसान की है रजधानी।।
परी भीतर भूतल पै लरिका
ढकी तापै पुरानी फटी–सी दरी है।
बिछो नीचे बिछौना न जाके कछु
नहिं पास में कोई दवाई धरी है।।''[40]

किसान–मजदूरों को उनका हिस्सा कभी नहीं मिलता था. मालिक उनके श्रम का अनवरत दोहन करते थे. उनकी मृत्यु के पश्चात्, उनके एवज में उनकी पीढ़ियाँ पकड़ी जाती और उनका शोषण शुरु हो जाता. ''आर्थिक जीवन में सबसे नीचे की सीढ़ी पर खेतिहर मजदूर हैं. इन्हें पैसे के रुप में शायद ही कभी मजदूरी मिलती हो. उनकी दशा बिलकुल गुलामों जैसी है, या कहीं–कहीं उससे जरी कम समझ लीजिए. हिंदुस्तान के बहुत से इलाकों में ऐसा रिवाज है कि जमींदार, मालगुज़ार या मामूली किसान भी अपने जन को कर्ज़ के जाल में फँसा लेता है. इस तरह उस पर ही नहीं उसके नाती–पोतों तक की जिंदगी पर हावी हो जाता है.''[41] इनके कर्ज़ का भुगतान कभी हो ही नहीं पाता था. कर्ज़ अदायगी के लिए ये गरीब किसान–मजदूर खुद को बेच देते थे. मालिक के यहाँ ब्याज चुकता करने के लिए श्रम करते थे. धूर्त मालिक थोड़े से पैसों के बदले उनके जीवन भर का श्रम हड़प जाते थे. उस समय लेखकों ने इस अमानवीय दशा का खूब वर्णन किया. जब्तशुदा रचनाओं में इसका पर्दाफ़ाश किया गया है. अति गरीबी में उन पर भयंकर जुल्म का सामना करना पड़ता था–

''इतने में सिपाही दिखाई परो
खरो द्वार पै हो के आवाज लगाई।
निकरो घर मैं से जबै दुखिया
तब भौंहे चढ़ाय के डाट बताई।।
नहिं काहू दिना ते बेगार करी
नहिं दीनी लगान एकौ पाई।
सरकार ने तोहि बुलाओ अभै
इतनी कहि ठोकर एक जमाई।।''[42]

उसकी दीन दशा देख कर, विनती सुन कर भी इस क्रूर अमले को रंचमात्र दया न आई. वे उसे घसीटते हुए ले जाते हैं–

'' सुनि दीन भरी बतियाँ तिहि की
अधरा फरकाय के भौंहे चढ़ाई।
पथरा सो करेजो पसीजो नहीं,
रिसिआय के पीठ पै बेंत जमाई।।
चुटिया गहि ऐंचि लियो भुइ पै
हनि लात औ घूसा करी मनभाई।
धरती पै घसीटत पीटत ताहि
गयो सरकार के द्वारे सिधाई।।''[43]

इनकी दीन दशा का वर्णन 'आज का भारत' पुस्तक में रजनी पाम दत्त करते हुए लिखते हैं, ''दक्खिन–पश्चिम मद्रास में इज़वा, चेरुमा, पुलैया और होलिया लोग हैं, जो असल में गुलाम हैं. पूर्वी तट पर जमीन के मालिक ब्राह्मण हैं. इनके खेतिहर मजदूर ज्यादातर अछूत हैं. इनमें बहुत से पड़ियाल भी होते हैं. पड़ियाल लोग एक तरह से गुलाम होते हैं, जो कर्ज़ की वजह से पीढ़ी–दर–पीढ़ी जमींदारों की गुलामी करते आते हैं. इनका ऋण कभी चुकता नहीं होता. एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक कर्ज़ चला आता है और जमींदार अपनी जमीन बेचता है या मर जाता है, तो जमीन के साथ पड़ियाल भी नए मालिक के हवाले कर दिए जाते हैं. बिहार के कम्मी सबसे नीचे दर्जे के गुलाम होते हैं. कर्ज़ लेने पर वे अपने मालिकों के बंधुए हो जाते हैं.''[44] स्वामी सहजानंद सरस्वती जमींदारी प्रथा के शुरुआत के संबंध में बताते हैं कि 22 मार्च 1793 को लॉर्ड कार्नवालिस के द्वारा इसका जन्म हुआ था. वे कहते हैं, ''जब तक किसान – मजदूर राज्य या कमाने वालों का राज्य सारे देश में कायम नहीं हो जाता और शासन की बागडोर कमाने वालों के हाथ में नहीं आ जाती, तब तक हमारे कष्टों का अन्त नहीं हो सकता, अतएव वही राज्य हमारा परम लक्ष्य है और वही असली स्वराज्य है. तथापि उसकी प्राप्ति में साम्राज्य शाही की ही तरह या उससे भी शायद बढ़ कर जमींदारी और साहूकारी बाधक है.''[45]

जमींदार, महाजन, साहूकार अपने अमलों को भूखे जानवर की तरह गरीबों पर छोड़ देते थे. उनके जुल्म अवर्णनीय हैं. कोई इन्हें रोकने वाला न था. इस संबंध में स्वामी सहजानंद सरस्वती लिखते हैं, ''जमींदार का मामूली नौकर किसानों के जनानखाने तक में बेधड़क तलाशी ले सकता था और बकाया लगान में चीज वस्तु जब्त कर सकता था. यहाँ तक कि पड़ोसी के द्वार पर पड़े हुए गल्ले,

जानवर आदि को भी इस शक में जब्त कर सकता था कि यह चीजें उसी किसान की हैं जिसके जिम्मे लगान बाकी है.''[46]

कर्ज़ एक ऐसा रक्तचूषक दलदल था जिसमें एक बार किसानों व मजदूरों के पैर पड़ने पर आजीवन बाहर निकलने की कोई गुंजाइश न थी. उनका समूचा धन, श्रम सब कुछ इसकी अदायगी करता लेकिन मुक्ति न मिलती. विपन चंद्र का मानना है, ''ग्रामीण भारत की तीसरी मुसीबत थे गांव के साहूकार अथवा कर्ज़ देने वाले बनिए. उन्नीसवीं सदी के अंतिम चरण में ग्रामीण कर्ज़दारी इतनी तेजी से बढ़ गई कि वह ग्रामीण क्षेत्र की विषमतम समस्या बन गई. ग्रामीण ऋणदाता साहूकार द्वारा वसूली जाने वाली, आसमान को छूने वाली ब्याज की दर ने दो प्रमुख रोगों को जन्म दिया : ब्याज के भुगतान के लिए किसान की आय का बहुत बड़ा भाग हड़प जाते थे और किसान की प्रायः ही ऋण की वापसी में असमर्थतता के फलस्वरुप बड़े पैमानों पर किसानों की भूमि हल न चलाने वाले ऋणदाता साहूकारों के हाथ में चली जाती थी. इस प्रकार पुराना किसान साहूकार की मर्जी पर पट्टेदार बन गया था और इसका अवश्यंभावी परिणाम यह निकला कि कृषि और कृषक दोनों की हालत पहले से अधिक बिगड़ गई.''[47]

अत्यधिक लगान होने से किसानों की सारी सम्पत्ति चली जाती थी. नई खेती आरंभ करने के लिए उसे धन की आवश्यकता पड़ती थी. इसके अलावा घर परिवार के पालन–पोषण का प्रश्न भी उसके समक्ष था. ऐसी स्थिति में वह कर्ज़ लेने के लिए बाध्य होता था. ''भारतीय किसान को अपनी धरती से पर्याप्त आजीविका नहीं मिल पाती थी फलतः वह अपने और अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए विशेषतः तंगी के दिनों में, ब्याज की बहुत ऊँची दरों पर ऋण लेने के लिए बाध्य था. इस प्रकार किसान के पास दो ही विकल्प थे, या तो वह भूखों मरे या साहूकार की शरण में जाए. उनके विचार में ऋणग्रस्तता का दूसरा कारण था, लगान की ऊँची दर के साथ–साथ निश्चित तथा कठोर भू राजस्व पद्धति. उन्होंने घोषित किया कि अधिकांशतया किसान सरकार के लगान का भुगतान करने के लिए ही ऋण लेते थे. अमृतबाजार पत्रिका ने 12 जून 1884 के अंक में लिखा : 'खून चूसने वाला ऋणदाता साहूकार सरकारी भू राजस्व पद्धति की ही उपज है. साहूकार का जन्म ही इसलिए हुआ है क्योंकि सरकार लगान से दबे किसान को संकट के समय में भी लगानों में किसी प्रकार की राहत नहीं देती थी.''[48] साहूकारों की प्रथा अत्यंत क्रूर थी. उसमें रहम की कोई गुंजाइश न थी. उनकी दृष्टि में उनके स्वार्थ सर्वोपरि थे. वे कर्ज़ के रुप में दिये गए थोड़े से पैसों की बदौलत किसानों की पीढ़ी–दर–पीढ़ी चूस लेते थे. ''भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1899 के

अधिवेशन में पंजाब के प्रतिनिधि लाला मुरलीधरन ने कर्ज़ देने वाले साहूकार का रेखाचित्र निम्नलिखित रुप में प्रस्तुत किया :

साहूकार मनुष्य और पशु का विचित्र समन्वित रुप है. जो लोग आत्मा के पुनर्जन्म तथा पुन : शरीर धारण करने के सिद्धांत में विश्वास करते हैं, वे मेरी इस धारणा से एकदम सहमत होंगे कि साहूकार के के पास शेर के पंजे है, लोमड़ी का दिमाग है और बहरे का दिल.... वह पैसे को हड़पने वाला, घृणित जोंक है, मैं तो कहूँगा कि यह वह व्यक्ति है जो गरीब खेतिहर का खून चूसता है.''[49]

किसान को बीजों के लिए ऋण लेना अनिवार्य सा हो गया था एक बार पैसे लेने पर उन्हें जीवन भर छुट्टी न मिलती थी. ''उन्न्त बीज प्राप्त करके रुई की खेती करने के लिए किसान को पेशगी पैसे मिल जाते थे. अगर ऋण की रकम बड़ी होती तो लिखा–पढ़ी कर ली जाती थी, जिससे आगामी फसल पर बनिया अपने पैसे वसूल कर सके. (2) इस तरह की खेती के लिए ऋण अर्थात् उत्पादन ऋण के अलावा घर में फसल आने तक किसान अपना पेट भरने के लिए जिस उपभोग ऋण की जरुरत महसूस करता था उसके लिए भी वह उसी महाजन के पास जाता था. बाजार में मंदी होने, फसलों का दाम आशातीत रुप से से कम होने, ठीक समय में ठीक परिमाण में बारिश न होने इत्यादि कारणों से अगर किसान की आय किसी साल कम हो तो वह क्या खाएगा ? बाजरे की खेती जब वो करता था तो वह बाजरा खा सकता था, पर अब रुई की खेती करने पर वह रुई तो खाएगा नहीं. इस प्रकार के ऋणों का सूद आमतौर पर खूब ऊँचा होता था. एक शोध द्वारा पता चला है कि 1876 में दक्षिणी प्रांतों के कृषक विद्रोह के बाद 'दूनी' (200 प्रतिशत), 'तिरपत' (300 प्रतिशत) जैसे अचिंतनीय दरों पर सूद लिया जाता था. अगर किसान सम्पत्तिहीन होता था तो यह दर और भी बढ़ जाती थी.''[50]

भारत एक कृषि प्रधान देश था, यहाँ की अधिकांश जनता कृषि पर ही आश्रित थी. नई व्यवस्था और लगान की बढ़ती दरों ने उन्हें कर्ज़दार बनने पर विवश कर दिया था. इस प्रकार देश की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग निरंतर श्रम करने के बाद भी कर्ज़ में डूबा हुआ था. ''यह बहुसंख्यक जनता जिसके पास कम से कम जरुरी साधन भी नहीं थे, अपना पेट कैसे पालती थी ? सच्ची बात यह है कि इस तरह के लोग अपना पेट नहीं भर पाते. दिन–पर–दिन वे कर्ज़ के बोझ से दबते जाते हैं. उनकी जमीन छिन जाती है और वे खेतिहर मजदूर बन जाते हैं. डॉ. मैन की जाँच से इस बात का पता लगता था कि गाँवों पर कर्ज़ किस तरह अपना जाल बिछा रखा है. पहले गाँव की कुल आमदनी 8,338 रुपये थी, इसमें से 2515 रुपये कर्ज़ अदा करने में चले जाते थे. डॉ. मैन ने लिखा है– कर्ज के बोझ से किसान दबे जा रहे हैं. गांव की कुल पूंजी का 12

फीसदी हिस्सा कर्ज़ में चला जाता है. जमीन से जो कुछ मिलता है उसका 24.5 फीसदी हिस्सा कर्ज़ चुकाने में लग जाता है. दूसरे गांव की जांच से पता चला कि कर्ज़ के नाम पर 6,755 रु. देना होता था, जबकि जमीन से कुल आमदनी 15807 रुपये ही थी, यानी आमदनी का 40 फीसदी हिस्सा महाजन की जेब में चला जाता था.''[51]

ऐसी दशा में कानून से भी किसानों को कोई रियायत न मिलती थी. कानून उन्हीं का था, जो शोषण के पैरोकार थे. महाजन को पुलिस का समर्थन प्राप्त था. एक सीमा के बाद जब किसानों के पास कुछ खोने के लिए न बचा तो वे इससे मुक्ति की राह ढूँढ़ने लगे. रजनी पाम दत्त लिखते हैं, ''अकसर बिया–बेसार और हल–माची के लिए भी वही कर्ज़ देता है. ज्यादातर किसान इस योग्य नहीं होते कि वे जमा–खर्च का हिसाब देख सकें, इसलिए दिन–पर–दिन महाजन के चंगुल में फंसते जाते हैं. वह गांव का नादिरशाह बन जाता है और एक के बाद एक खेत हथियाता जाता है. महाजन खेतिहर मज़दूर या फसल काटने वाले उसके गुलाम बन जाते हैं. महाजन के लिए वे मशक्कत करते हैं और लगान और ब्याज के नाम पर अधिकांश कमाई उसी को सौंप देते हैं. हिंदुस्तान के आर्थिक जीवन में महाजन का दर्ज़ा उस छोटे पूंजीवादी का सा बनता जाता है, जो किसानों से मजदूरी कराता है. किसानों को भी महाजन ही उनका सबसे बड़ा शत्रु मालूम पड़ता है, उनकी सारी विपदा की जड़ यही एक आदमी है. इसीलिए हिंदुस्तान के सीधे–सादे, सदा धीरज रखने वाले किसान भी कभी–कभी महाजनों की हत्या कर डालते हैं, जिससे मालूम पड़ता है, किस तरह उनका शोषण किया जाता है.''[52]

इस विपदा से मुक्ति पाने का एकमात्र उपाय क्रांति थी. निराश मजदूर व किसान उसी राह की ओर झुके. उनका धैर्य समाप्त हो गया था. शोषण की चरम सीमा पार करने के बाद अब कुछ भी शेष न था. 1852 में बंबई सरकार की रिर्पोट के अनुसार ज्ञात होता है कि अब महाजनों की उल्टी घड़ी शुरु हो गई थी –

''हमारे सूबे के दो अलग–अलग छोरों पर दो देहाती महाजन जान से मार डाले गए हैं. इससे यह न समझना चाहिए कि सिर्फ इक्का–दुक्का कर्ज़दार किसी खास गाँव में परेशान हैं. वास्तव में वे पूरे प्रांत की खेतिहर जनता ओर महाजनों के बीच में जो तनाव पैदा हो गया है, उसी ने इन हत्याओं में भयंकर रुप धारण किया था. और अगर ऐसा है, तो किस अत्याचार और उत्पीड़न की तसवीर हमारे सामने आती है. हिंदुस्तान के किसान अपने धीरज और सहनशीलता के लिए प्रसिद्ध हैं. वे हमेशा ही अन्याय और दुर्व्यवहार सहने के आदी हो गए हैं. ऐसे किसान भी आज बदला लेने के लिए हत्या पर उतर आए हैं. इसी से समझा जा सकता है कि उनकी कैसी दशा हो गई है. अब

उन्हें इस बात का भी खौफ़ नहीं रहा कि यों हत्या करने से वे खुद भी कुत्तों की मौत मारे जाएंगे. कितना जबर्दस्त अन्याय उनके साथ किया गया होगा. सरकार और कानून से इंसाफ की सब आशा टूटने पर ही इस तरह उनका धीरत छूटा होगा और उनके सहनशील स्वभाव में हत्या करने का भयंकर विचार पैदा हुआ होगा.''[53] प्रतिबंधित कविता 'लो रोको तूफान चला मैं' किसानों व मजदूरों की विद्रोह भावना को अभिव्यक्त करती है–

''मुझे चाहिए रोटी' जबब मैं
बोल उठा निज कातर बोली।
तब तुमने बेदर्द खिलाई,
मुझको बंदूकों की गोली।
... .
मैं विद्रोही हूँ 'जुल्मों' से,
सदा द्रोह करता आया हूँ।
युग की उखड़ी साँसों में,
तूफान सदा भरता आया हूँ।।''[54]

'अपने पथ पर तू बढ़ता चल' कविता भी भूखी नंगी जनता को जागरुक करती है–
''भूखे नंगे ओ युग – सृष्टा !
तुझमें महाक्रांति–आवाहन।
साँस साँस में युग परिवर्तन,
प्राणों में नूतन आवर्तन ।''[55]

गरीब किसानों ने अंततः लड़ाई छेड़ दी थी. उन्हें जेल जाना पड़ा. उन पर पुलिस के भयंकर अत्याचार भी हुए; लेकिन जो लड़ाई शुरु हुई थी, वह थमने का नाम न ले रही थी. लगार (गोगरी, मुंगेर) के किसानों के संबंध में स्वामी सहजानंद सरस्वती कहते हैं, ''प्रायः 6 महीने से मुंगेर के गोगरी थाने के लगार गाँव में यादव या गोप किसानों का संघर्ष पास ही के जमींदार श्री काशी प्रसाद तिवारी के साथ चल रहा है. इस सिलसिले में सैकड़ों किसान और किसान सेवक या तो जेलों में बंद हैं या उन पर मुकदमें चल रहे हैं. ज्यादातर केस 379, 341 और 107 के हैं. 447 भी लागू किया गया है.''[56]

किसानों के अलावा मजदूरों ने भी आंदोलन छेड़ रखा था. ''मार्क्स ने कहा है कि पूंजीवाद और उसकी कब्र खोदने वाले का जन्म साथ – साथ ही होता है और यह मजदूर वर्ग ही है जो पूंजीवाद की कब्र खोदता है.....कंगाल बनाई गई ग्रामीण जनता की तमाम कमियों, कमजोरियों के साथ इस मजदूर वर्ग का जन्म, औपनिवेशिक भारत की अपरिहार्यता थी. प्रारंभिक दौर में संख्या में कम और अमानवीय रहन–सहन की स्थितियों के बोझ से दबे होने के कारण, भारतीय मजदूर वर्ग को वर्ग सचेत होने और संगठित होने में काफी समय लगा, परिणामस्वरुप राष्ट्रीय रहा. बाद के दिनों में इसका षणयंत्रकारी और दूरगामी प्रभाव पड़ा.''[57] इस प्रकार ऋण के बोझ तले दबा किसान–मजदूर एक जुट होकर अब मुक्ति की राह पर चल निकले थे. उन्होंने अंग्रेजो व उनके द्वारा संरक्षित जमींदारी, साहूकारी व महाजनी प्रथा का पुरजोर विरोध किया. आगे चल कर बड़ी तेजी से उनका विरोध विद्रोह की आग बन कर फैल गया.

5.3 स्वराज, गांधी और आर्थिक–मुक्ति का सवाल

स्वराज प्राप्ति के लिए हिंदुस्तान की जनता एकमत थी. इस लड़ाई में गरीब किसान, मजदूर, स्त्री–पुरुष, बालक–वृद्ध सभी जी–जान से जुटे हुए थे. दक्षिण अफ्रीका से वापस लौटने पर भारतीय आंदोलन में गांधी का पदार्पण हुआ. उस समय देश आग की लपटों में जल रहा था. शोषण अपने चरम पर था. दक्षिण अफ्रीका से वापस आ कर गांधी जी हिंदुस्तान की जनता पर अपना व्यापक प्रभाव स्थापित करने में सफल रहे. इस सम्बंध में डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है, ''उनका प्रभाव करोड़ों पर था, भारतीय इतिहास में कोई भी एक व्यक्ति, किसी भी युग में, इतने विशाल जन समुदायों को प्रभावित नहीं कर सका और विश्व इतिहास में भी किसी व्यक्ति का ऐसा व्यापक प्रभाव नहीं देखा गया. वह भारतीय जन मानस की आकांक्षाएँ समझते थे, उन्हें अपनी भाषा में व्यक्त करते थे, यह उनकी लोकप्रियता का मुख्य कारण था.''[58] ब्रिटिश राज में जब्त की गई पुस्तक 'अंग्रेजों की अकड़ फूँ निकल गई' की 'महात्मा गांधी ने' शीर्षक कविता से उनकी लोकप्रियता ज्ञात होती है :

''महात्मा गांधी ने हिला दिया संसार
व्ह भोली भाली शकल वाला
छुनियां में बड़ी अकल वाला
अन्याय में है वह दखल वाला
जिससे काँपे है सरकार. महात्मा.
वह दुबला पतला एक नर है
जिसके अति प्यार है खद्दर है

न जग में इसको कुछ डर है
रहता है बिन हथियार. महात्मा.''[59]

जनता पर गांधी जी का व्यापक प्रभाव था. प्रतिबंधित नाटक 'लवण–लीला' से ज्ञात होता है कि गांधी जी के गिरफ्तार होने पर आंदोलन पर उतर आई थी. नाटक के 5 दृश्य में दुकानदार व स्वयंसेवक की बातचीत में आन्दोलन जारी रखने की अपील हैः

''तीसरा दुकानदार : महात्मा जी गिरफ्तार हो गए तो फिर काम कैसे चलेगा ?

स्वयंसेवक : महात्मा जी की गिरफ्तारी से आंदोलन रुक नहीं सकता है. जनता में काफी जागृति है. अब अपने हानि–लाभ को समझने लगे हैं. एक सेनापति के स्थान पर दूसरा सेनापति आएगा. महात्मा जी के जेल चले जाने पर हम लोग आंदोलन नहीं चला सके, तो यह देश की कमजोरी का द्योतक होगा.''[60]

भारतीय जन मानस गांधी जी को सर–आँखों पर बिठा रखा था. उनके मन में गांधी जी के प्रति अपार श्रद्धा थी. बात जहाँ तक हिन्दुस्तान की आर्थिक समस्या की है, तो यहाँ गांधी जी किसानों के साथ उस तरह नहीं खड़े थे, जिस तरह किसान आंदोलन के अन्य नेता. 'आजादी की लड़ाई : गांधी और भगत सिंह' पुस्तक में अवतार सिंह जसवाल कई जगह इस बात का खुलासा करते हैं कि गांधी जी का रवैया किस तरह किसानों के आंदोलन को कमजोर कर रहा था. गांधी जी के निर्णय से किसानों को कितना दुःख भोगना पड़ा :

''खेड़ा (गुजरात) में भारी वर्षा के कारण फसल लगभग नष्ट हो गई थी. सरकारी कायदे से अगर फसल रुपये में चार आने से कम हुई थी, तो किसानों का लगान माफ कर दिया जाता था. खेड़ा में भी फसल चार आने से कम हुई थी, इसलिए किसानों ने सरकार से लगान माफ करने की प्रार्थना की थी, किन्तु सरकारी अधिकारी मानने को तैयार नहीं हुए कि फसल चार आने से कम हुई है. तब किसानों ने गांधी से इस मामले में सहायता के लिए कहा. उन्होंने किसानों को नेतृत्व देना स्वीकार कर उन्हें 'सत्याग्रह' करने की सलाह दी थी. 'सत्याग्रह' के लिए जब वे राजी हो गए, तब उन्होंने उनसे एक प्रतिज्ञा करवाई – '...हम नीचे सही (हस्ताक्षर) करने वाले प्रतिज्ञा करते हैं कि हम सरकार का लगान, इस साल पूरा या जो बाकी रह गया है, अदा नहीं करेंगे; पर उसे वसूल करने में सरकार जो कानूनी कार्रवाई करना चाहेगी, वह करने देंगे और उससे होने वाली तकलीफ बर्दाश्त करेंगे. हमारी ज़मीन जब्त की जाएगी, तो वह भी हम हो जाने देंगे. पर अपने हाथ से लगान देकर, झूठे बनकर, आत्मसम्मान न खोएंगे. यदि सरकार दूसरी किश्त की वसूली बाकी सब

स्थानों पर मुल्तवी (स्थगित–ले.) कर दे तो हममें जो शक्तिमान होंगे वे पूरा या बाकी लगान अदा करने को तैयार हैं. हममें से जिनमें लगान अदा करने का सामर्थ्य है, उनके लगान अदा न करने का कारण यह है कि अगर सामर्थ्य अदा कर दें, तो असामर्थ्य घबराहट में अपनी चाहे जो चीज को बेचकर या कर्ज़ लेकर लगान अदा करेंगे और दुःख भोगेंगे. हम मानते हैं कि ऐसी दशा में गरीबों का बचाव करना शक्तिमान् का फर्ज़ है.' (मो. क. गांधी, सत्य के प्रयोग, पृ. 527–28)

थ्कसान जनता अपनी प्रतिज्ञा पर डटी रही; 'सत्यागह' चलता रहा. अन्त में परिणाम क्या निकला ? इस लड़ाई का अंत विचित्र रीति से हुआ. यह बात साफ थी कि लोग थक चुके थे. जो दृढ़ थे उन्हें अंत तक बरबाद होने देने में संकोच हो रहा था. मेरा झुकाव इस ओर हो रहा था कि निपटारे का कोई ऐसा रास्ता निकल आए, जो सत्यागही को फबता हो, तो उसे स्वीकार करना चाहिए. ऐसा अकल्पित उपाय सामने आ गया. नाडियाद ताल्लुके के तहसीलदार ने कहला भेजा कि अगर अच्छी स्थिति वाले पाटिदार (ज़मीन पट्टे पर लेने वाले किसान–ले.) लगान अदा कर दें, तो गरीबों का लगान मुल्तवी (स्थगित–ले.) कर दिया जाएगा...फिर भी हम इस अंत से खुश न हो सके. सत्याग्रह की लड़ाई के पीछे जो एक मिठास होती है, वह इसमें नहीं थी. कलेक्टर समझता था कि जैसे उसने कोई नई बात नहीं की है. ग़रीबों को छूट देने की बात थी. पर वह शायद ही बच पाए. कौन ग़रीब है, यह कहने का अधिकार जनता न आजमा सकी. जनता में यह शक्ति नहीं रह गई थी, इसका मुझे दुःख था. अंत का उत्सव मनाया गया, पर वह मुझे इस दृष्टि से फीका लगा. सत्याग्रह का शुद्ध अंत तब माना जाता है, जब आरंभ की अपेक्षा अंत में जनता में अधिक तेज़ और शक्ति दिखाई दे. यह मैंने नहीं पाया.'(वही, पृ. 530–531)

व्ह किसान जनता, जो प्रकृति से संघर्ष कर अपने और समाज के लिए अन्न उपजाती थी; जो स्वभाव से मेहनती और जुझारु प्रकृति की थी, उसे सत्याग्रह के द्वारा विदेशी शासकों के सामने आत्मसमर्पण को विवश कर गांधी ने 'सत्याग्रह का शुद्ध अंत' न होने की जिम्मेदारी भी, स्वयं पर न लेकर, खेड़ा की किसान जनता पर ही यह कह कर डाल दी कि–

'खेड़ा की जनता सत्याग्रह का स्वरुप पूरा नहीं समझ सकी.''[61]

उसके खिलाफ किसानों ने अपनी आवाज बुलंद कर दी थी. जनता में गांधी जी के प्रभाव अवश्य बहुत अधिक थे और इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि उन्होंने स्वराज प्राप्ति की लड़ाई की गति दी. इसके अलावा जनता के एकत्रित होने में भी बड़ी भूमिका निभाई, किन्तु आर्थिक मुक्ति व किसानों के आंदोलन के प्रश्न पर वे मद्धिम दिखाई देते हैं. वे किसानों का शोषण कम

अवश्य करना चाहते थे लेकिन पूरी तरह जमींदार वर्ग का खात्मा नहीं. किसानों ने आंदोलन छेड़ रखा था. किसान नेताओं की माँगें राष्ट्रीय नेताओं से अलग थीं. उनके संघर्ष में शोषण के पूर्ण खात्मे की योजना थी. 'किसान राष्ट्रीय आंदोलन और प्रेमचंद : 1918–22' पुस्तक में वीर भारत तलवार लिखते हैं, ''फैजाबाद, सुल्तानपुर, रायबरेली, लखनऊ और बाराबंकी के जिलों में किसान आंदोलन की मुख्य घटनाएं, जिन्हें सरकार ने 'किसान–उपद्रव' कहा, 1921 की जनवरी में में शुरु हुईं. ताल्लुकेदारों और जमींदार की फसल बर्बाद करना, उनके अनाज के भण्डारों को लूटना, बाजारों पर हमला और किसानों की पुलिस से मुठभेड़े, आंदोलन की ये सभी बड़ी घटनाएं जनवरी 1921 से शुरु हुई और मार्च में आकर कम हो गईं. जुलाई महीने तक आंदोलन को कुचल दिया गया. इस तरह की सिर्फ एक घटना(ठाकुरदीन कांड) 1920 के नवंबर में घटी थी. 1921 के दिसंबर में बहराइच, सीतापुर, हरदोई और बाराबंकी के जिलों में पासी के नेतृत्व में आंदोलन फिर से भड़क उठा. 1922 की जनवरी से अप्रैल तक इन इलाकों में ताल्लुकेदारों–जमींदारों की फसल और संपत्ति की लूट और उन पर हमले, बेगार और लगान बंद करने और पुलिस से मुठभेड़ और घटना घटी. ''[62]

कहना न होगा कि किसानों की इस मुक्ति चेतना के पीछे किसी राष्ट्रीय आंदोलन के नेता की कोई भूमिका न थी. गांधी जी का भी प्रभाव इन पर बिल्कुल न था. ये किसान–नेताओं के अथक परिश्रम का नतीजा था.''पायोनियर के संवाददाता ने 1921 के जनवरी में लंदन प्रेस को रायबरेली के 'किसान–उपद्रव' की रिपोर्ट टेलीग्राम द्वारा भेजी कि बागी किसानों ने अपने नियंत्रण संपूर्ण क्षेत्र पर 'सोवियत कायम कर दी है' आगे उन्होंने लिखा कि लंदन स्थित भारत के राज्य सचिव ने वायसराय से इसकी रिपोर्ट माँगी और पूछा कि इसमें गांधी का कहाँ तक हाथ है ? वायसराय ने जवाब भेजा कि इसमें महात्मा गांधी का हाथ नहीं है लेकिन पूरे अवध में ऐसे उपद्रव फैलने का खतरा है.''[63] राष्ट्रीय कांग्रेसी नेताओं ने कई बार किसान आंदोलन की गति को रोकने का भरसक प्रयास भी किया. इन्हें अंग्रेजों से मुक्ति पाने से कोई विरोध न था लेकिन जमींदरों के खात्मे से इन्हें अवश्य डर था. ये नहीं चाहते थे कि किसान पूर्णतः लगान बंदी करें क्योंकि ये नेता पूंजीपति वर्ग के थे. स्वयं गांधी जी भी कई बार इन्हीं से संचालित थे. बाबा रामचंद्र किसान आंदोलन के बड़े नेता थे. ''28 अगस्त को एक झूठे इल्जाम में फँसा कर बाबा रामचंद्र और उनके साथियों को पहली बार गिरफ्तार किया गया. 10 सितंबर को बाबा रामचंद्र को जेल से छुड़ाने के लिए 10 हजार किसान ने जिला को घेर लिया. यह अवध के किसान आंदोलन की पहली बड़ी घटना थी जिसमें किसानों की जीत हुई और 24 घंटों के अंदर प्रशासन ने बाबा रामचंद्र को छोड़ दिया. नवंबर में किसान का उभार इस कदर तक पहुँच गया था कि गाँधी, रौकत अली और मोहम्मद अली जैसे राष्ट्रीय नेताओं

को अवध में जाना पड़ा. उन्होंने किसान आंदोलन के सामंतवाद विरोधी चरित्र को दबाकर उसे कांग्रेस के राष्ट्रीय आंदोलन की ओर मोड़ने की कोशिश की. इसी महीने ठाकुरदीन कांड हुआ जिसमें प्रतापगढ़ और जौनपुर की सीमा पर ठाकुरदीन सिंह ने ताल्लुकेदारों और ब्रिटिश राज के खात्मे का ऐलान कर किसान सभा का राज कायम किया. सिंबर के अयोध्या के सरयू तट पर बाबा रामचंद्र ने करीब एक लाख किसानों का दो दिन का सम्मेलन किया जो किसान आंदोलन की अभूतपूत घटना थी.''[64] अंग्रेजों के रौलेट एक्ट के विरोध में भी किसानों ने भयंकर बिगुल छेड़ दिया था. आंदोलन अपने उग्र रुप में था. प्रारम्भ में तो इसे गांधी जी ने समर्थन दिया लेकिन इसके उग्र रुप को देख कर इसे दबाने का काम किया और पूरे आंदोलन को भटकाव की दिशा में मोड़ दिया. ''1919 की 6 अप्रैल को देशव्यापी हड़ताल हुई. अंग्रेजी राज के खिलाफ असंतोष से भरे हुए लाखों करोड़ों लोगों ने इस राजनीतिक हड़ताल में हिस्सा लिया. देश में अभूतपूर्व हिंदू–मुस्लिम एकता दिखलाई पड़ी दृदिल्ली में हड़तालियों पर गोली चली. लेकिन मँहगाई के बोझ से दबे और कम वेतन के शिकार मजदूरों और छोटे कारीगरों ने पंजाब में नजारा ही बदल किया. पंजाब में बड़े पैमाने पर हिंसा फूटी और सरकारी प्रशासन तंत्र चरमरा उठा. लाहौर में रेलवे वर्कशाप के 12 हजार मजदूरों तथा दूसरे कारखानों के मजदूरों के हड़ताल से ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई थी कि अंग्रेज शहर छोड़ कर भाग गये और शहर पर जनता ने अपनी कमेटी बना कर नियंत्रण कर लिया. लाहौर और पंजाब में हड़तालियों को कुचलने के लिए सरकार ने मॉर्शल ला लागू कर दिया और फौज ने बर्बरता के साथ लोगों का दमन किया और गोलियों से मार. खुद गांधी के गुजरात में बड़े पैमाने पर हिंसा फैली अहमदाबाद की सूती मिलों के मजदूरों ने 51 सरकारी इमारतों को आग लगा दी और अपनी जवाबी कार्रवाई में सरकार ने 13 आदमियों को गोली से मार दिया. देश भर में सैकड़ों हड़तालियों को जेल, आजीवन कारावास, फाँसी और कालेपानी की सजाएँ हुईं. उच्च मध्यवर्गीय नेतृत्व इस हिंसा को देख कर घबरा गया. गाँधी ने महसूस किया कि उनसे हिमालय जैसी भूल हो गई. जनता को अपने नियंत्रण में रखते हुए खास सीमाओं के अंदर आंदोलन चलाने वाले गाँधी इतने व्यापक और अनियंत्रित जन–उभार के लिए वैचारिक और सांगठनिक तौर पर तैयार न थे. दमन इतना सख्त और जोरों का था कि राष्ट्रीय नेतृत्व को खुल कर उसका विरोध करने की हिम्मत न हुई और वे सिर्फ एक ग़ैर–सरकारी जाँच की माँग करके रह गए. गाँधी ने कुछ दिन बाद ढंग बदलकर आंदोलन फिर से करने की बात कह कर आंदोलन को रोक दिया. कुछ दिन बाद भी आंदोलन नहीं किया गया.''[65]

दरअसल, गांधी जी ने जिन तत्वों को अपना आदर्श माना था, उन पर चल कर क्रांति संभव न थी. उन्होंने जिस धर्म के सहारे आजादी पाने का सपना देखा था, व्यावहारिक रुप में वह निहायत

असफल होने वाला मार्ग था. इस संबंध में किसान आंदोलन के बड़े नेता स्वामी सहजानंद सरस्वती कहते हैं, ''धर्म का काम है जनता की क्रांति को रोक देना, सांसारिक बातों में भाग्य या ईश्वर जैसे पदार्थों को ला देना और परिस्थिति को और भी जटिल बना देना. दृश्य वस्तु को अदृश्य के क्रोड में डालना न केवल रहस्यमय है लेकिन बुद्धि भेद उत्पन्न करके जनता को जानबूझ कर किंकर्तव्यविमूढ़ बना देने में अपराधी बनाना है.''[66] आगे स्वामी सहजानंद व्यावहारिक स्तर पर गांधीवाद की विफलता की चर्चा करते हुए कहते हैं, ''राजनीति में गांधीवाद का आधार वही धर्म है. इसीलिए हम इसके विरोधी हैं. आध्यात्म या पारलौकिक प्रश्नों में यदि उस वाद को स्थान मिले तो हमें कुछ कहना नहीं है लेकिन राजनीति में उससे खतरा है. गांधीवाद के मुख्य स्तम्भ तो यम–नियम ही हैं और यह पहले ही बताया जा चुका है कि यम–नियम संतोष आदि ऐसे पदार्थ हैं जो क्रांति की अग्नि को सुलगने नहीं दे सकते.''[67]

धर्म के चक्र में फँसा हुआ व्यक्ति कभी शोषण के विरुद्ध आवाज नहीं उठा सकता. शोषणकर्ता धर्म का आधार लेकर अपनी क्रूरता और कुचक्रों को बरकरार रखते हैं. धर्म के मानक व्यक्ति को एक ऐसी धारा की ओर मोड़ देते हैं जहाँ विद्रोह की कोई गुंजाइश नहीं होती. ''व्यास जी कहते हैं कि 'न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्म त्यंजेज्जीवितस्यादि हेतोः '– धर्म को किसी पदार्थ के लिए, यहाँ तक कि प्राणों के लिए भी न छोड़ो. ये बातें यदि नीति के लिए होती तो और बात थी, क्योंकि नीति का तो त्याग हो सकता है लेकिन गांधीवाद तो इन्हें सिद्धान्त के रुप में मानता है. फलतः इनका त्याग असंभव है और इस त्याग के बिना ज्वलंत असंतोष होगा कहाँ जिससे शोषण के विरुद्ध जेहाद बोला जा सके ? यही नहीं, गांधी जी तो स्पष्ट कहते हैं कि हिंसा और असत्य द्वारा स्वराज मिलने पर वे उसे त्याग देंगे–ऐसा स्वराज वे नहीं चाहते. इसका तो सीधा अर्थ है कि उनका मुख्य ध्येय अहिंसा और सत्य है, स्वराज तो उसके बाद की चीज है लेकिन जनता के लिए तो स्वराज ही वास्तविक ध्येय है, वह अंहिंसा और सत्य की फिक्र नहीं करते. फलस्वरुप जनता व गांधीजी स्वराज के मामले में भी दो विपरीत मार्गवलंबी हैं. ऐसी हालत में गांधीवाद को राजनीति में प्रश्रय देने का सीधा अर्थ होगा कि जनता भी सत्य और अहिंसा ही अपना चरम लक्ष्य बनाये परंतु यह तो असंभव है.''[68] वस्तुतः गांधी जी का आदर्श जनता को नियंत्रित कर रहा था. अंग्रेजों के शोषण के मुकाबले जनता का आदर्श के मार्ग पर चलना कतई तर्क संगत न था. स्वामी सहजानंद सरस्वती लिखते हैं, ''एक और भी आपत्ति गांधीवाद के राजनीतिक प्रयोग में है. यह वाद तो आदर्शवाद है, आडियालिस्टिक है, इसमें व्यावहारिकता पर मुख्य दृष्टि नहीं. आदर्शवाद का तो मतलब ही है कि व्यावहारिक दृष्टि से दिक्कतों का ख्याल करके हम किसी ध्येय से हट न जाएं प्रत्युत उसके लिये सदा आबद्ध परिकर रहें.''[69]

ऐसी दशा में स्वराज प्राप्ति का उत्साह ठंडा पड़ने का खतरा था. स्वामी सहजानंद लिखते हैं, ''दुःख की बात है कि जब तक हम राजनीतिक मामलों में गांधीवाद के प्रसार की बातें और चेष्टाएं करते हैं तो यह बात भूल जाते हैं कि यह चीज सार्वजनिक रुप से अव्यावहारिक है और और ऐसी बातों के लिए आदर्शवादमूलक धार्मिक संसार में ही स्थान होना चाहिए. नीति और ध्येय में जमीन और आसमान का अंतर होता है. मौके पर नीति को हम छोड़ सकते हैं, परंतु ध्येय को नहीं छोड़ सकते. ऐसी दशा में गांधीवाद की ओट में हमारी राजनीति में सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, संतोष आदि को ध्येय की तरह प्रविष्ट करना न केवल अवांछनीय है, प्रत्युत हानिकर भी है और हमारे इस युद्ध को कुंठित और बंद कर देने वाला है. केवल आवेश में न आकर हमें इस खतरे की ओर ध्यान रखते हुए कोई भी प्रयास इस दिशा में करना चाहिए.''[70]

व्यावहारिक रुप से सही होते हुए भी गांधी के सिद्धान्त क्रांति के योग्य नहीं थे. स्वराज प्राप्ति के लिए उग्र प्रतिरोध की आवश्यकता थी. ब्रिटिश सरकार अगर भयभीत थी तो सशस्त्र क्रांतिकारियों से. वे ही उनकी नींव हिलाने का काम कर रहे थे. क्रांतिकारी वीर अपनी जान की बाजी लगा कर औपनिवेशिक सत्ता को चुनौती दे रहे थे. गांधीवादी आदर्श इस कड़े संघर्ष में अक्षम प्रतीत हो रहा था. ''गंधीवाद की कड़ी आलोचना करते हुए जयप्रकाश जी ने लिखाः गांधीवाद सिद्धांत के पीछे नीयत अच्छी हो सकती है. मैं व्यक्तिगत रुप से समझता हूँ कि नीयत अच्छी है. पर नीयत चाहे जितनी अच्छी हो, मुझे मानना होगा कि यह सिद्धांत खतरनाक है. ऐसा कहने से मुझे कोई खुशी नहीं होती. वह खतरनाक इसलिए है कि वह वास्तविक समस्याओं पर परदा डालता है और समाज की बुराइयों को सिर्फ नेक इरादों के सहारे दूर करने को आगे बढ़ता है. इस तरह वह आम जनता को धोखा देता है और उच्च वर्गों को प्रोत्साहन देता है कि वे अपना प्रभुत्व बनाये रखें.''[71]

गांधी जी ने विश्व युद्ध में अंग्रेजों की सहायता के लिए भारतीय जनता को आदेश दिया. उनका यह निर्णय हिंदुस्तान को उसकी आजादी से बहुत पीछे ले गया. उनके इस निर्णय के संबंध में अवतार सिंह लिखते हैं, ''वाह क्या अवसर चुना था 'अहिंसा का व्रत लेने वाले महात्मा' ने लोगों को शस्त्र चलाना सीखने और धारण करने का उपदेश देने के लिए ! ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के प्रति अत्यधिक क्रोध के कारण गांधी की दलील जनता के गले नहीं उतरी और उन्होंने उनसे पूछ ही लिया : 'आप अहिंसावादी कैसे हमें हथियार बांधने को कहते हैं ? सरकार ने हिंदुस्तान की क्या भलाई की है, जो आप उसकी मदद करने को कहते हैं?' गांधी जी का उत्तर था : 'मैं अहिंसा के सिद्धांत का सख्ती से पालन करुंगा और मैं किसी भी स्थिति में हथियार उठाने को तैयार नहीं होऊंगा, चाहे मुझ पर गोलियों की बौछार ही क्यों न हो रही हो. लेकिन दूसरे लोग अपनी कायरता

और दुर्बलता के कारण अहिंसा का सहारा ढूंढ़ते हैं, ऐसे लोगों को अपने कर्तव्य से जान छुड़ाने के लिए अहिंसा के पवित्र सिद्धांत को बहाना न बनाना चाहिए.'

ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिए जनता हथियार उठाए, तो वह उसका कर्तव्य था. उससे उनका अहिंसा का पवित्र सिद्धांत भंग नहीं होता था, किंतु वही जनता यदि विदेशी शोषण, अत्याचार व दमन के विरुद्ध हथियार उठाए; देश की आजादी के लिए शस्त्र उठाए, तो गांधी की नजर में वह हिंसा थी, जिसके विरोध का उन्होंने व्रत ले रखा था. फासिस्ट जर्मनी के सहयोगी, इटली के फासिस्ट शासक, मुसोलनी से वह मुलाकात करने में कोई हर्ज़ नहीं समझते थे, किंतु उसी के कहर से ब्रिटिश साम्राज्य को बचाने के लिए भारत की जनता से कहते थे.''[72]

गांधी जी जमींदारों का पूरी तरह से खात्मा नहीं करना चाहते थे. वे समाज में स्थित विभिन्न वर्गों के आपसी संबंधों को सुधारना अवश्य चाहते थे. लेकिन शोषण की धुरी रह चुके वर्गों से आपसी संबंध सुधारने मात्र पर शोषण का अंत कतई नहीं हो सकता था. ''क्रांति और सुधार का संघर्ष उतना ही पुराना है जितना मानव–इतिहास. गांधी जी की विचारधारा मूलतः वही है जो समाजवाद के इतिहास में सुधारवाद के नाम से जाना जाता है. उसकी भाषा हिंदुस्तानी है, लेकिन उसका सारतत्व अंतर्राष्ट्रीय है. सुधारवाद का मुख्य हित इस बात में है कि समाज में जो व्यवस्था पहले से कायम है, उसे कायम रखा जाए. जब उसे खतरा दिखाई देता है, भविष्य में केवल विध्वंस दिखाई देता है, तब वह व्यवस्था में मरहम पट्टी करके खतरे को टाल देना चाहता है. गांधी जी जमींदारों और पूंजीपतियों से इतना ही कहते हैं कि उन्हें आदमियों और मजदूरों से अपने संबंध सुधारने चाहिए. ऐसा करने पर सब कुछ ठीक हो जाएगा, वर्ग युद्ध का भय दूर हो जाएगा, विद्रोह, असंतोष, उपद्रव की नौबत न आएगी. सुधारवाद को दिलचस्पी इस बात से नहीं है कि सामाजिक न्याय प्राप्त किया जाए.''[73]

दरअसल क्रांति की बुनियाद में मजदूर व किसान अर्थात् मेहनतकश वर्ग की भूमिका सर्वोपरि होती है. सुधारवादी प्रक्रिया में इनके सभी हितों की माँग लगभग असंभव है. जमींदारों को बचाए रख कर शोषण पूरी तरह खत्म नहीं किया जा सकता. ''गांधीवाद यह नहीं पूछता कि जमींदारों और पूंजीपतियों को अपनी दौलत कहाँ से मिलती है. वह दौलत को उनके पास धरोहर मानता है. इस विचारधारा की कड़ी आलोचना करते हुए जयप्रकाश जी कहते हैं कि एक समाजवादी के लिए इस विचारधारा का मतलब होगा धोखा देना, खुद को धोखा देना और शोषित जनता को धोखा देना. हमारे विचार से जमींदारो और पूंजीपतियों की दौलत किसानों और मजदूरों की मेहनत के बल पर उन्हें मिलती है.''[74] गांधी जी जिन मूल्यों व आदर्शों की वकालत करते थे वे जन साधारण को

नैतिक मूल्य तो सिखा सकते थे किन्तु क्रांति में सहायक न थे. गांधी जी कलिए नैतिक उत्थान करने वाले मूल्य सर्वोपरि थे. वे किसी स्थिति में इसका परित्याग नहीं कर सकते थे. ''1934 में उन्होंने कहा था हमारे समाजवाद या साम्यवाद का आधार अहिंसा और श्रम तथा पूंजी का, जमींदार और काश्तकार का सौहार्द्रपूर्ण सहयोग होना चाहिए.''[75] गांधी जी के ये विचार उनके पत्र 'हरिजन' में भी बिखरे हैं वे लिखते हैं, ''मैं उसी समस्या के समाधान में लगा हूँ जिसका सामना वैज्ञानिक समाजवादियों को करना पड़ रहा है. लेकिन यह सच है कि मैं इसका समाधान हमेशा और सिर्फ अहिंसा के जरिए करना चाहता हूँ.''[76]

गांधी जी के विचार से विभिन्न वर्गों का बने रहना खतरनाक न था, हाँ उनकें संबंध मधुर होने चाहिए ; जबकि समता के लिए वर्गों का विनाश अपरिहार्य है. '' गांधीवादी समाजवाद वैज्ञानिक समाजवाद की भांति सबको सुखी बनाने की बात करता है, लेकिन व्यवहार में वह एकदम उल्टा है. वैज्ञानिक समाजवाद वर्ग–संघर्ष में विश्वास करता है, लेकिन गांधीवादी समाजवाद वर्ग–सहयोग में. वैज्ञानिक समाजवाद मानता है कि जब तक समाज वर्गों में विभाजित रहेगा, तब तक वर्ग–संघर्ष अनिवार्य है. एक या एक से ज्यादा वर्ग सत्ता पर अधिकार कर उसका इस्तेमाल अन्य वर्गों को दबाने में करेंगे. मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए, उसके सब तरह के विकास के लिए वर्गहीन समाज का निर्माण जरुरी है. इसके विपरीत गांधीवादी समाजवाद में वर्गों का बना रहना जरुरी समझता है. जैसे शरीर के लिए सिर और पैर–दोनों जरुरी हैं ; वैसे ही समाज के लिए पूंजीपति और मजदूर, जमींदार और किसान, दोनों जरुरी हैं. स्वभावतः पूंजीपति, जमींदार आदि शोषक वर्ग वैज्ञानिक समाजवाद को अपना दुश्मन और गांधीवाद समाजवाद को अपना दोस्त समझते हैं. पिछले सौ–सवा–सौ साल का इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जब समाजवाद के दुश्मनों ने समाजवाद से लड़ने के लिए समाजवाद की रामनामी ओढ़ी थी. गांधीवादी समाजवाद दरअसल एक वैसी ही रामनामी है.''[77] अवध के उभरे किसान आंदोलन के दौरान गांधी जी ने किसानों को ऐसे निर्देश दिए जिससे उनके आंदोलन का कोई वास्ता न था. वे जमींदारों को अपना समर्थन दे रहे थे. शोषण के खिलाफ उभरे जनांदोलन के लिए उनके निर्देश ये थे, ''1. सरकार या जमींदारों का पोत या लगान बंद नहीं करना. 2. जमींदार यदि कुछ दुःख दे ंतो संयुक्त प्रान्तीय किसान सभा के सभापति पंडित मोतीलाल जी नेहरु को खबर देना, और जो कुछ वे कहें, वैसा करना. 3. याद रखना कि जमींदारों को भी हम मित्र बनाना चाहते हैं. 4. हम इस समय कानून–भंग की लड़त नहीं चाहते हैं. इसलिए सब कानूनी आज्ञाओं को मानना. 5. यदि हमारे किसी नेता को सरकार पकड़ भी ले तो उन्हें न घेरना, न कुछ दंगा या तूफान करना. सरकार के किसी को पकड़ने से हम नहीं हारेंगे. , हम हारेंगे तब, जब पागल बन कर कुछ नुकसान करेंगे या मारपीट करेंगे.''[78] जाहिर है इन

निर्देशों के भरोसे किसान आंदोलन की क्या गति हुई होगी. सरकार व जमींदारों का मुख्य स्रोत लगान था. अगर किसान लगान बंदी करते तो इनकी शक्ति जाहिर तौर पर कम होती. लेकिन गांधी जी ने तो पूर्णरुपेण लगान बंदी के पक्ष में थे ही नहीं. प्रतिपक्षी का सहयोग करते हुए उससे मुक्ति कैसे पाई जा सकती है ? यह बात समझ से परे है. बहरहाल , स्वराज प्राप्ति के साथ–साथ यहाँ का जन–समाज शोषण के तमाम पहलुओं से भी मुक्ति चाहते थे. इसके लिए उन्होंने अपनी जान की बाजी लगा कर संघर्ष को आगे बढ़ा रहे थे. अंग्रेजों ने हर क्षेत्रों में तबाही मचा दी थी , जिससे मुक्ति पाना अत्यंत आवश्यक था. शोषण अपने चरम पर था लिहाजा सब्र के सारे बाँध टूट गये थे.

[1] भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास (1758–1947)– डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला , संस्करण 2005, पृ. 145
[2] वही, पृ. 146
[3] आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास–सव्यसाची भट्टाचार्य, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2009, पृ. 45
[4] वही, पृ 45–46
[5] वही, पृ. 46
[6] देश की बात– सखाराम गणेश देउस्कर, नेशनल बुक ट्रस्ट, संस्करण 2010, पृ. 76
[7] पलासी से विभाजन – शेखर बंद्योपाध्याय, ओरियंट ब्लैकस्वान, सं 2013, पृ. 82
[8] आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास–सव्यसाची भट्टाचार्य, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2009, पृ. 47
[9] पलासी से विभाजन – शेखर बंद्योपाध्याय, ओरियंट ब्लैकस्वान, सं 2013, पृ. 84
[10] आधुनिक भारत–(सं) विपन चंद्र, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., संस्करण–2006, पृ. 4
[11] देश की बात– सखाराम गणेश देउस्कर, नेशनल बुक ट्रस्ट, संस्करण 2010, पृ. 77
[12] वही, पृ. 78
[13] वही, पृ. 85
[14] पलासी से विभाजन – शेखर बंद्योपाध्याय, ओरियंट ब्लैकस्वान, सं 2013, पृ. 84
[15] वही, पृ.. 87
[16] वही, पृ. 88
[17] वही, पृ.. 95
[18] देश की बात– सखाराम गणेश देउस्कर, नेशनल बुक ट्रस्ट, संस्करण 2010, पृ. 87
[19] वही, पृ. 87
[20] भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास (1758–1947)– डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला , संस्करण 2005, पृ. 241
[21] वही, पृ. 241
[22] वही, पृ 253
[23] सक्सेना, प्रपीण : 1857 महाक्रांति या महाविद्रोह ; प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2008 पृ. 662
[24] देश की बात– सखाराम गणेश देउस्कर, नेशनल बुक ट्रस्ट, संस्करण 2010, पृ. 137
[25] पलासी से विभाजन – शेखर बंद्योपाध्याय, ओरियंट ब्लैकस्वान, सं 2013, पृ. 119
[26] आधुनिक भारत–(सं) विपन चंद्र, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., संस्करण–2006, पृ. 6
[27] देश की बात– सखाराम गणेश देउस्कर, नेशनल बुक ट्रस्ट, संस्करण 2010, ृ 142
[28] भारत का मजदूर वर्गः उद्भव और विकास (1830–2010)–सुकोमल सेन, ग्रंथ शिल्पी, 2012 पृ 291
[29] देश की बात– सखाराम गणेश देउस्कर, नेशनल बुक ट्रस्ट, संस्करण 2010, पृ. 143
[30] भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास (1758–1947)– डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला , संस्करण 2005, पृ. 156–157
[31] वही, पृ 158
[32] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–1 (सं) रुस्तम राय, राधाकृष्झा, संस्करण 1999, पृ. 117–118
[33] आज का भारत–रजनी पाम दत्त, अनुवादक–रामविलास शर्मा, ग्रंथ शिल्पी संस्करण–2004, पृ. 223
[34] वही, पृ 227
[35] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–2, संपादक–रुस्तम राय,, राधाकृष्ण, 1999, पृ. 227
[36] भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास–विपन चंद्र, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, संस्करण–2008, पृ. 207
[37] आज का भारत–रजनी पाम दत्त, अनुवादक–रामविलास शर्मा, ग्रंथ शिल्पी संस्करण–2004, पृ. 227
[38] वही, पृ. 228
[39] प्रतिबंधित हि–दी साहित्य–2, संपादक–रुस्तम राय,, राधाकृष्ण, 1999, पृ. 266
[40] आज का भारत–रजनी पाम दत्त, अनुवादक–रामविलास शर्मा, ग्रंथ शिल्पी संस्करण–2004, पृ. 232
[41] आधुनिक भारत–(सं) विपन चंद्र, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., संस्करण–2006, पृ. 27
[42] प्रतिबंधित हि–दी साहित्य–2, संपादक–रुस्तम राय,, राधाकृष्ण, 1999, पृ. 266

[43] वही,, पृ. 267
[44] आज का भारत–रजनी पाम दत्त, अनुवादक–रामविलास शर्मा, ग्रंथ शिल्पी संस्करण–2004, पृ. 232
[45] किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि––स्वामी सहजानंद सरस्वती, संपादक : अवधेश प्रधान, ग्रंथ शिल्पी , संस्करण 2012, पृ 185
[46] वही, पृ. 185
[47] भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्‌भव और विकास–विपन चंद्र, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, संस्करण–2008, पृ. 221
[48] वही, पृ. 222
[49] वही, पृ. 222–223
[50] आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास–सव्यसाची भट्‌टाचार्य, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2009, पृ. 64
[51] आज का भारत–रजनी पाम दत्त, अनुवादक–रामविलास शर्मा, ग्रंथ शिल्पी संस्करण–2004, पृ. 236

[52] वही, पृ. 241
[53] वही, पृ. 261
[54] प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य–2, संपादक–रुस्तम राय,, राधाकृष्ण, 1999, पृ. 214
[55] वही, , पृ 174
[56] किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि––स्वामी सहजानंद सरस्वती, संपादक : अवधेश प्रधान, ग्रंथ शिल्पी , संस्करण 2012, पृ. 220
[57] भारत का मजदूर वर्ग : उद्‌भव और विकास 1830–2010,–सुकोमल सेन, अनुवादक–अवधेश कुमार सिंह, ग्रंथ शिल्पी, संस्करण 2012 पृ. 76
[58] शर्मा, रामविलास : गांधी, आम्बेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2008 भूमिका
[59] पटेल, मधुलिका बेन :प्रतिबंधित हिन्दी कविताएं ; स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2016, पृ. 159
[60] तनेजा, सत्येंद्र कुमार : सितम की इंतिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010, पृ. 505
[61] जसवाल, अवतार सिंह : आजादी की लड़ाई : गांधी और भगत सिंह ; अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ. 84–85
[62] किसान आंदोलन और प्रेमचंद : 1918–22–वीर भारत तलवार, वाणी प्रकाशन. सं 2008, पृ. 101
[63] वही, पृ. 104
[64] वही, पृ. 104–105
[65] वही, पृ. 183
[66] किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि––स्वामी सहजानंद सरस्वती, संपादक : अवधेश प्रधान, ग्रंथ शिल्पी , संस्करण 2012, पृ. 163
[67] वही, पृ. 164
[68] वही, पृ. 164
[69] वही, पृ. 164
[70] वही, , पृ. 166
[71] समाजवाद– अयोध्यासिंह, अनामिका पब्लिशर्स ऐड डिस्ट्रीब्यूटर्स, प्रा. लि., सं–2007, पृ. 163
[72] जसवाल, अवतार सिंह : आजादी की लड़ाई : गांधी और भगत सिंह ; अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ. 87
[73] वही, पृ. 162
[74] वही, पृ. 162
[75] वही, पृ. 268
[76] वही, पृ. 268
[77] वही, पृ. 269
[78] किसान आंदोलन और प्रेमचंद : 1918–22–वीर भारत तलवार, वाणी प्रकाशन. सं 2008, पृ. 302

छठां अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य की भाषा

6.1 काव्य भाषा

6.2 कथा भाषा

6.3 नाट्य भाषा

6.4 पत्रकारिता की भाषा

6.5 पर्चे–पोस्टर की भाषा

छठाँ अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दी–साहित्य की भाषा और अभिव्यक्ति का सवाल

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को चिंगारी देने में हिन्दी रचनाओं ने प्रमुख भूमिका निभाई. ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त की गई पुस्तकों में औपनिवेशिक सत्ता को बगैर किसी लाग लपेट के ललकारा गया था. अंग्रेजों के क्रूर व दमनकारी शासन का पर्दाफाश किया गया. आग के गोले के समान शब्दों की मार से ब्रिटिश सरकार बौखलाई हुई थी. फलतः उसने पुस्तकों पर जब्ती के फरमान जारी किए. फिर भी , संकट के बावजूद रचनाकारों ने अपनी अभिव्यक्ति जारी रखी. परिणामस्वरुप हिन्दी भाषा में रची अनेक पुस्तकों पर पाबंदी लगी. इनकी भाषा के संबंध में कर्मेंदु शिशिर लिखते हैं, ''खड़ी बोली हिन्दी नवजागरण के गर्भ से निकली एक ऐसी भाषा है, जो राष्ट्र के मुक्ति संघर्ष में पली–बढ़ी और उसकी वाहिका बनी. ऐसा सौभाग्य शायद ही किसी भाषा को मिला हो. स्वाधीनता आंदोलन के बहुस्तरीय संघर्षों में इस भाषा की भूमिका को मूर्त करने वाले महान जन नायकों की एक पूरी कतार है. उनसे प्रेरित और प्रभावित ऐसे अनेक गौण रचनाकार भी थे जिन्होंने प्राण–पण से अपना सब कुछ उत्सर्ग कर इस भाषा को असाधारण प्रौढ़ता दी.''[1]

हिन्दी भाषा में जब्त हुई पुस्तकों की लम्बी श्रृंखला है. ये पुस्तकें जनता में अपार लोकप्रिय थी. इनकी भाषा में ओज, ललकार व ब्रिटिश हुकूमत को बेनकाब करने वाले शब्दों का प्रयोग किया गया था. जन–जागृति के लिए अन्य भाषाओं में लिखी गई पुस्तकों का हिन्दी भाषा में अनुवाद भी हुए. हिन्दी भाषा में अनुदित पुस्तकें भी काफी लोकप्रिय रहीं. उदाहरण के लिए बांग्ला भाषा में रचित पुस्तक 'देशेर–कथा' का हिन्दी अनुवाद 'देश की बात' को जनता ने काफी गंभीरता से लिया. इस संबंध में डॉ. मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं कि हिन्दी में देश की बात की लोकप्रियता के स्वरुप का अनुमान इस बात से होता है कि माधव प्रसाद मिश्र के भाई और अपने समय के जाने माने कवि राधाकृष्ण मिश्र ने 'देश की बात' पर एक कविता लिखी थी. उस कविता का एक अंश माधव प्रसाद मिश्र ने 'देश की बात' के मुखबंध के आरंभ में उधृत किया है, जो इस प्रकार है :

पाठकगण ! निज हृदय खोल कर, पढ़ो देश अपने की बात,

निर्दयता से हुआ किस तरह पुण्य भूमि भारत का घात.

शोक सिंधु में डूब न रहना, रखना मन में भारी धीर,

वही वीर जननि का जाया, हरै सदा जो उसकी पीर.

जन जागरण के लिए लेखकों ने हिन्दी भाषा का विशेष प्रयोग किया. उन्होंने नवीन शब्द गढ़े. स्वप्न व यथार्थ की परिपाटी से हट कर कठोर धरातल पर उतर कर भाषा का नवीन प्रयोग किया. देश की दुर्व्यवस्था व ब्रिटिश हुकूमत को बेनकाब करने के लिए कोमलकान्त पदावली कतई उपयुक्त न थी. प्रतिबंधित हिन्दी–साहित्य में बौखलाने वाले, आग लगाने व शोषण युग को ध्वंस करने वाले शब्दों का प्रयोग है.

6.1 काव्य भाषा :

प्रतिबंधित कविताएं, कविता की एक ऐसी धारा है जो किसी स्वप्न लोक में न ले जा कर कठोर धरातल से रु–ब–रु कराती है. इन कविताओं ने मुक्ति संग्राम को आगे बढ़ाया, जन आंदोलनों में आग पैदा की. इनकी भाषा में वो लपट थी , जिसमें ब्रिटिश साम्राज्य झुलस रहा था. कवियों ने औपनिवेशिक सत्ता को खुली चुनौती दी. प्रतिबंधित कविताओं की भाषा कायरों के चित्त में भी जोश जगाने वाली थी. प्रतिबंधित काव्य–संग्रह 'खून के छींटे' में बलभद्र प्रसाद गुप्त 'विशारद' लिखते हैं–

''भावों के प्रवाह में बहा दे मन–मानस को,
क्यरों के चित्त में भी जोश उमगा दे तू.''[2]

कवियों का झुकाव इस ओर था कि कविताओं का रचाव–बुनाव इस प्रकार हो कि जन साधारण पर व्यापक प्रभाव डाला जा सके और वे ब्रिटिश सत्ता की क्रूरता को मिटा सकें. 'लेखनी' शीर्षक कविता के भाव ऐसे ही है–

''ऐसी भाव पूर्ण कविताएँ लिख दे तू आज,
जिन्हें पढ़ कर जनता की आँख खुल जाएं.
विकराल करवाल भी लेखनी री लेखनी तू चल,
तेरी गति में विसाल वज्र तक घुल जाए.''[3]

यह वह भाषा है, जो बगैर किसी लाग–लपेट के अपनी बात रखती है. इन कविताओं की भाषा के संबंध में रुस्तम राय लिखते हैं, ''स्वाधीनता आंदोलन से हिन्दी कविता का रिश्ता बहुआयामी रहा है. द्विवेदी युग के मैथिलीशरण गुप्त और उनके मंडल के कवियों ने सांस्कृतिक पुनर्रुत्थान की घोषणा कर के ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध किया. राष्ट्रीय धारा के माखनलाल चतुर्वेदी औरा दिनकर आदि कवियों ने राष्ट्रीय जागरण के लिए आह्वानपरक कविताएँ लिखीं. प्रसाद, निराला, महादेवी और पंत जैसे छायावादी कवियों ने 'स्वच्छंद' मानसिकता को प्रश्रय देकर प्रकृति और प्रेम

के आधार पर मुक्ति का आह्वान किया. स्वाधीनता आंदोलन के दौरान इन तीनों धाराओं के समानान्तर एक और भी धारा थी. जिसके कवियों ने सीधे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ आवाज बुलंद की.''[4]

कविता की भाषा आह्वानपरक है. चूँकि जागरण और संघर्ष इनका मुख्य लक्ष्य था. देशवासियों को ललकार की आवश्यकता थी, उपदेश की नहीं. वास्तव में ऐसी भाषा की आवश्यकता थी, जो जनता में आग पैदा कर सके. प्रतिबंधित कविताओं की भाषा इस बिन्दु पर बिलकुल खरी उतरती हैं. 1930 ई. में कानपुर से प्रकाशित अभिराम शर्मा की कविता 'आह्वान' की भाषा में गजब का ओज है–

''जवानों उठो उठो तत्काल, न झुकने देना भारत भाल.
देश में इतनी हलचल, पहनते फिर भी तुम मलमल.
कहाँ इतना अमूल्य पल–पल, कहाँ तुम खोद रहे दलदल
पहिनना मत परदेशी माल, न झुकने देना भारत भाल.''[5]
इसी प्रकार प्रह्लाद पाण्डेय 'शशि' की कविता भी मानव की टोली को झकझोरती है–
जाग–जाग ओ भूखी नंगी ,
उत्पीड़ित मानव की टोली.
सेनानी ललकार रहा है,
प्रलयंकर ने आँखें खोलीं.
तेरी उष्ण श्वास से निर्मित,
वह विषाक्त बम फूट पड़ा है
तेरी चिर संचित आहों के
शोलों का तूफान खड़ा है.''[6]

जिस समय विदेशी सत्ता के खिलाफ लिखना, पढ़ना, बोलना अपराध की श्रेणी में आता था. उस समय अभूतपूर्व साहस देखने योग्य है. उनकी कविता की भाषा औपनिवेशिक सत्ता का मुँह तोड़ती नजर आती है–

''परम पाखण्डी, डाकू, धूर्त;
फरेबी छलियों के सरताज
मुझे ज़ाली कहने में क्यों न ;
गिरा तेरी जिह्वा पर गाज ?

फोड़ कर तेरी दोनों आँख;
मिटा दूँ तेरा सब अभिमान
मोद से खा कर तेरे अंग;

तृप्त हो जावें गीदड़ श्वान.''[7]

'अंग्रेजों की इस तौर से करो बोलती बंद' काव्य संग्रह में भी देशवासियों को गुलामी उखाड़ फेंकने के लिए ललकारा गया है. 'पेशावर के शहीदों का सन्देश' शीर्षक कविता में ब्रिटिश सरकार को हिकारत की दृष्टि से देखा गया है और भारतवासियों को उनके कर्तव्य की याद दिलाता है–

''जालिम हमारे ऊपर गोली चला रहे हैं
हम तो शहीद होकर जन्नत को जा रहे हैं
पर याद रखना तुम भी जालिम ये रह न जायें
कुछ दिनों में हम भी वापिस अब फेर आ रहे हैं
देखो हमारा हक है हम हिंद के हैं मालिक.''[8]

'आजादी का बिगुल' संग्रह की ग़ज़ल की पंक्तियों में भी ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति बहिष्कार का भाव है–
''नौकरी हम पर फिदा और हम फिदाये नौकरी
मरते दम तक न होगी ये इन्तहाये नौकरी.''[9]

प्रतिबंधित कविताओं के अतिरिक्त गीतों की भी रचना की गई. ये गीत ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त घोषित किए गए. ये गीत विभिन्न रागों पर आधारित हैं. 1931 ई. में प्रकाशित 'मेरे गान्' शीर्षक गीत राग केदार ध्रुवपद में देशभक्ति के भाव प्रसारित करती हैं–

''गूँज उठें मेरे गान !
भारत के बच्चे बच्चे में
भर दें भाव महान.
अग्निमयी एक तान–
भूमि एक–आसमान;
व्याप्त जैसे पवमान,
कर दे विप्लव–विधान.''[10]

'ताण्डव' शीर्षक कविता राग गूर्जरी में है–

सवधान ! मैं विप्लववादी
मुझसे मत कुछ कहना.
अंगारों में झुलस जाएगा,
भ्रांत दूर ही रहना.''[11]

राग असावरी में अंग्रेजों को ललकारा गया है–

''करले अत्याचार हठीले !
इसका मोल चुकाना होगा.
रुधिर तरंगों में न रुकेगा,
तुझको भी बह जाना होगा.''[12]

लोक कवियों ने आजादी की भावना से पूरित अनेक लोकगीतों की भी रचना की. 'लोकगीतों में क्रांतिकारी चेतना' पुस्तक में विश्वमित्र उपाध्याय लिखते हैं, ''ग्रामीण जनता से जुड़े तथा उसकी रागात्मक भावनाओं को सहज ढंग से महसूस करने वाले देशभक्त लोक गीतकारों ने लोकमानस में उमड़–घुमड़ रही क्रांतिकारी भावनाओं को वाणी दी. अनेक लोकगीतकार जनता के प्रतिनिधि बन कर मुक्ति संघर्ष में कूद पड़े.''[13]

ये लोक गीत जन मानस की उपज थे. देश प्रेम की लहर उनकी अपनी बोली में फूट कर ब्रिटिश सरकार को आईना दिखा रही थी. ''ब्रिटिश सरकार आमजनता पर उसकी अपनी बोली में रचे गए इन हृदयस्पर्शी लोकगीतों का प्रभाव देख कर घबरा गई. उसने कई लोक गीतों को जब्त कर लिया और अनेक लोक गीतकरों को कारागारों में बंद कर दिया.''[14]

1931 ई. में गया से प्रकाशित 'भारत की विपदा' में देश की दुखद अवस्था का चित्रण है–

''गिरलई विपत के गठरिया हो भारत मुलुक में.
साले–साले कांग्रेस भेले पैतालिस तो बीति गैले
तइयो नाहिं भैले संगठनियाँ हो भाई भारत मुलुक में.
... .
भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव फाँसी परे
चारों ओरि मचे हाहाकारिया हो भाई भारत मुलुक में''[15]

इन लोकगीतों में लोक में प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया. यह भाषा देश की जमीन स`उपजी भाषा थी, जिसके भीतर देशप्रेम का सागर लहरा रहा था–

''जाँता गेलई ढेकी गेलई, गरीब के रोजगार गेलई
कलवा में पेराई तेल, घनिया हो भारत मुलुक में
दूध दधि मँहगा भेल, घृ तो सपना भेल
गउअन पर पड़ले अफतिया हो भाई भारत मुलुक में
घर में चूहा डंड पेले , बेटा–बेटी भुखल चले
तइयो नाहि छोड़े दारु तड़िया हो भारत मुलुक में
नेता धर्म त्यागि दिहले, लोभ पाप ग्रहण करल
छाड़ि दिहले आपन सब करमिया हो भाई भारत मुलुक में.''[16]

किसानों की दुर्दशा देख कर लोक कवियों का हृदय फूट पड़ा–

''सबसे किसान हो अभागा हमरे देसवा में
इनही जोताई करे, इनही बोआई करैं
तबहुँ बेचारे रोज मरैले भुखान हो
अभागा हमरे देसवा में.''[17]

प्रतिबंधित हिन्दी कविताओं में कई भाषाओं के शब्द प्राप्त होते हैं. इनमें हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग प्राप्त होता है.

6.2 कथा भाषा :

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान हिन्दी की प्रतिबंधित कहानियों ने चेतना का विकास किया और गुलामी की मुक्ति के लिए देशवासियों को ललकारा. इसके अलावा सामाजिक जीवन में भी सुधार, परिष्कार की लड़ाई लड़ी. बात जहाँ तक इनकी भाषा का है तो इन्हें बेवजह अलंकरणो से लादा नहीं गया है. इनकी भाषा यथार्थ चेतना की उपज है. इनमें बोलचाल के शब्दों का भी प्रयोग है. नवीन शब्दों के निर्माण तथा दिन –प्रतिदिन घटित होने वाली घटनाओं के प्ररिप्रेक्ष्य से निर्मित शब्दावली का भी प्रयोग है. ये कहानियाँ जन जागरण के लिए थी. अतः इनमें जन सामान्य की भाषा का भी प्रयोग है. इनमें सामान्य हिन्दी, सीधे–सादे वाक्य विन्यास हैं. इन कहानियों के संबंध में रुस्तम राय लिखते हैं, ''स्वाधीनता आंदोलन के दौरान प्रतिबंधित इन कहानियों का महत्व इस बात में है कि ये कहानियाँ अंग्रेजी सरकार को ललकारती हैं और इनमें साम्राज्यवादी सरकार का

चुनौतीपूर्ण विरोध है. अपने पाठक को ये कहानियाँ किसी कल्पना लोक में नहीं ले जातीं; बल्कि तत्कालीन स्वाधीनता आंदोलन की यथार्थ चेतना से उन्हें जोड़ती हैं.''[18]

इन कहानियों के माध्यम से रचनाकारों ने क्रांति की आग सुलगाने का काम लिया. ''उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन के दौरान अपनी रचनाओं को हथियार की तरह इस्तेमाल किया. अपनी रचनाओं द्वारा उन्होंने साम्राज्यवादी ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ आम लोगों में विद्रोह और अवज्ञा की मानसिकता तैयार करने की कोशिश की. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की प्रतिबंधित कहानी 'उसकी माँ' की बेबाक भाषा यह है–

''तो तुम क्या करना चाहते हो ?
'जेा भी मुझसे हो सकेगा. करुँगा.'
'षणयंत्र' ?
'जरुरत पड़ी तो जरुर...'
'विद्रोह' ?
'हाँ, अवश्य'
'हत्या' ?
'हाँ, हाँ, हाँ''[19]

प्रतिबंधित कहानियों की भाषा की रचना परिस्थिति के अनुसार की गई है. उदाहरण के लिए 'वह दिन' शीर्षक कहानी में हवलदार और साहब की बातचीत में भाषा का नया रुप दिखाई देता है–

''मुझसे साहब ने पूछा, 'टुम इसको जानटा है?'

मैं; जी हुजूर ! यह मेरे दोस्त का लड़का है.'

साहब : 'टुमारा डोश्ट का लड़का सरकार का खिलाफ! इशका कान पकड़ कर हवा खिलाओ !'

मैं : चुप रहा'

साहब : खड़ा क्या है ? जो कहा है करो!'

साहब ने पुनः क्रोध से कहा : शुनटा नेई? फौरन इस नालायक लड़का का कान पकड़ो–यू–स्टुपिड !''[20]

इसी प्रकार 'नादिरशाही' शीर्षक कहानी की भाषा में भी यही झलक है–

''एक सिख ने अपने पास खड़े एक गोरे से कहा : साहब आपके थैले में शराब है?

साहब : ओ, यस; शराब ? है टो. लेगा सरडार ?''[21]

कहानियों में मुहावरों का भी प्रयोग है. मुनीश्वरदत्त अवस्थी भाषा को धारदार बनाने के लिए इनका प्रयोग करते हैं–''ख़ैर कानून अंग्रेजों ने गढ़ा, ठीक किया ! पर पुलिस के कर्मचारी, खुफिया के महात्मा तो हिन्दुस्तानी हैं– और हिंदुस्तानी ठहरे चीन के पड़ोसी. पीनक न सही असर तो है. कौन लगाए खोज, कौन निकाले बाल की खाल और कौन जान बवाल में डाले.''[22]

लेखकों का प्रमुख उद्देश्य देशवासियों को ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ जागरुक करना था. अलग–अलग धर्म के होते हुए भी इनमें किसी प्रकार का विभेद दिखाई नहीं पड़ता. ये लेखक पूरी तरह से देश को एक सूत्र में बाँधना चाहते थे. हिन्दी कहानियों में उर्दू भाषा के शब्दों का भी भरपूर प्रयोग मिलता है. मुनीश्वरदत्त अवस्थी की 'बलिदान' शीर्षक कहानी की भाषा का यह रुप है–

''बूढ़े ने फैजी की ओर देखा और कहा, ' बादशाह सलामत तो इन दिनों हिर्स की दरिया में गोते लगा रहे हैं. उनकी अक्ल पर मुल्क की रानी का परदा पड़ गया है. फैजी तुम्हारे खयाल से भी अहमदनगर पर हमला क्या दानिशमंदी है? फैजी ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया. बूढ़े ने पुनः प्रश्न किया–'फैजी ! जो शख्स रुपये की खातिर अपने जमीर का खून करता है या ज़र के लालच में अपनी दूरंदेशी और बलिदान से दस्तबरदार हो जाता है या अपने आका को आफते–नागहानी से आगाह नहीं करता वह सिर्फ अपना ही नुकसान करता है.''[23] प्रतिबंधित कहानियों में वर्णनात्मक शैली भी प्राप्त होती है. कहानी 'नेता का स्थान' में देश की अवस्था का चित्रण इसी शैली में होता है–''मजूर और किसान, गरीब और अनपढ़, खून देकर भी पेट भर भोजन नहीं पाते थे. गरीबों की स्त्रियाँ, बेटियाँ, बहनें अमीरों के उन्माद की दासियाँ थीं. शासकों और अमीरों ने गुट बना कर घर–घर में फूट डाल रखा था. अपमानित महिलाओं का, प्रताड़ित पुरुषों का और पेट–पीड़ित गरीब परिवारों का खोज लेना कोई नहीं था–ईश्वर भी नहीं था.''[24] प्रतिबंधित कहानियों में हिन्दी, उर्दू के साथ–साथ अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है. भाषा सुलझी हुई है. वाक्य विन्यास लम्बे नहीं है.

6.3 नाट्य भाषा :

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान प्रतिबंधित नाटकों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. राष्ट्र के प्रति प्रेम प्रकट करने व जन साधारण को जागरुक करने के लिए नाटककारों ने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जो प्रसंगानुकूल हो. नाटककारों का ध्यान इस बात की ओर था कि परिवेश का अंकन भली प्रकार से हो. उदाहरण के लिए लक्ष्मण सिंह द्वारा रचित नाटक 'कुली–प्रथा' में कहीं पात्र क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग करते हैं तो कहीं खड़ी बोली. कहीं पर गीतों में भावों का उद्रेक है तो कहीं उनकी भाषा बम के गोले की तरह फूटती है. यह वह भाषा है जो ब्रिटिश सत्ता को बेनकाब करती है. विदेशियों के आतंक से मुक्त होने के लिए लोगों को बेचैन करती है. 'कुली–प्रथा' नाटक में भाषा का सजीव चित्र प्रस्तुत होता है–

''सेठ : हँ, हँ, जा हँसी में तो म्हने रिजोलूसन की बात भुलाई दी. अब जे हँसना दूर करुँ. कईं कुंसील में गलती हो गई तो लाट साहब नाराज होंगे. तब हँसने की जगह रोना पड़ेगा. अबकी एसा रिजोलूसन पेस करुँ कि हाँ, लोगों कूं बी फायदा होय और सरकार कूँ बी, और मर्ज कूँ बी. मैंने चार रात बैठ कर सोचा है. बापड़े, बाप ! कुंसिल का मेंबर बनणा बड़ाई कठण ! म्हारा तो बाप भी न्हई बण शक्या था. हूँ पेस करुँगा कि सरकार किरपा करके पिरेस एक्ट को अच्छी तन्हाँ से काम में लावें.''[25]

नाटक में अधिकारियों की छलाव भरी बातों का नमूना भी नाटककार सामने रखते हैं–''इंस्पेक्टर : ए लोगों सुनो. ईसके पैले कि हम टुमको पास करें, हम ये बटा डेना ठीक समजटा है के टुम लोग कहाँ जा रहा है, टुमको वहाँ क्या करना होगा और टुम किस आराम के साथ वहाँ रहेगा. टुम फिजी जा रहा है, पाँच बरस के बाड लौट सकेगा. टुमको वहाँ कोठी में काम करना होगा. लेकिन हिंडुस्टान में मजडूरों के माफिक नहीं. टुमको वहाँ बारा आना रोज मिलेगा. नवाब के टरह रहेगा. खूब गन्ना चूसेगा और मोटा हो जाएगा. वहाँ अंग्रेज बहादुर का राज है. डर किसी बाट का नहीं और दुख भी कुछ नहीं. फिजी बहिश्ट है. भगवान का, खुडा का घर है. टुम वहाँ बड़ा अमीर हो जाएगा. बोलो फिजी जाना माँगटा है.''[26]

अत्याचारी सत्ता को बेनकाब करना नाटककारों का अन्तिम लक्ष्य था. हिन्दुस्तान के जो लोग अंग्रेजी सरकार की सहायता में जुटे थे, उनका भी पर्दाफॉश किया गया. नाटकों की भाषा हकीकत को सामने लाती है. 'कुली–प्रथा' नाटक में शंकर का कथन अक्षरशः सत्य है–

''शंकर : गुलामी से कैसे छुटकारा पाऊँ ?
जब ये हमारे अपने ही भाई हैं फँसाते ला कर
ते फिर बचा सकेगा कोई वहाँ से आ कर
ये नाम धर्म का ले हमको पिला रहे हैं
हत दासता का प्याला जो है ज़हर सरासर
जो देश में धनी है अन्धे बने हैं वे तो
श्री रायबहादुरी का चश्मा सभी चढ़ा कर.''[27]

नाटककार द्वारा प्रयुक्त भाषा के संदर्भ में सत्येंद्र कुमार तनेजा लिखते हैं, ''अभिव्यंजना शैली के संबंध में लक्ष्मण सिंह ने व्यावहारिक नीति अपनाई है. अपने भावात्मक आग्रह के कारण लेखक का विश्वास है कि राष्ट्र निष्ठा को व्यक्त करने के लिए परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग उपयुक्त एवं प्रभावोत्पादक रहेगा. प्रथम पाठ से यही आभास होता है कि 'कुली–प्रथा' के देश प्रेमी पात्र संस्कृतनिष्ठ भाषा में बोल रहे हैं और जो पात्र देशद्रोही करतूत में जुटे हैं, उनके साथ विविध प्रयोग हुए हैं; सेठ बनवारी लाल कभी मारवाड़ी है और कभी मिली–जुली बोलचाल की भाषा का सहारा लेते हैं. ब्रिटिश पात्र अंग्रेजी के शब्दों के साथ, सुबोध भाषा–शैली को अपनाते हैं. ऐसा कहा जा सकता है कि भाषा चरित्रानुरुप है. पारसी थिएटर की छाया में लिखे गए गीत या तुकबंदी वाले संवाद उर्दूनिष्ठ हैं. देश प्रेमी पात्रों के गीत तत्सम शब्दावली में हैं. दूसरे दशक तक भाषा–सौष्ठव की दृष्टि से कविता के क्षेत्र में बदलाव के संकेत मिलने लगे थे. 'कुली–प्रथा' के गीतों में अभिव्यक्ति का प्रवाह कम है. नए युग्म शब्दों की कल्पना में लक्ष्मण सिंह पर्याप्त दक्ष पाए गए–अन्न–कष्ट, दास्य–वृक्ष, गौरांग–प्रभु, हृदय–पुरी, मनेच्छा–धर्म, वरदनाथ..! ग्द्य के स्तर पर अभिव्यक्ति का प्रवाह अधिक स्वाभाविक है. संवाद चरित्र की विशेषताओं को सहजता से नाटकीय लोच के साथ व्यक्त करते हैं. संरचना के इस अन्तर्विरोध का मूल कारण स्वयं लेखक की रचनात्मक सीमाएं हैं. इस संदर्भ में शंकर के 2 1/2 पृष्ठ का संवाद आत्मालोचन–आकलन की दृष्टि से आवश्यक है. फीजी की यातनाओं से उद्विग्न शंकर अपने मनोभाव पहले दो पृष्ठ की कविता में और शेष आधा पृष्ठ गद्य में प्रकट करता है. कविता में हुई अभिव्यक्ति का स्तर सामान्य रहा है, कहीं कहीं चमक है परन्तु गद्य में उसका मन्तव्य स्पष्ट एवं असरदार है.''[28]

1922 ई. में जब्त नाटक 'जख्मी पंजाब' (किशनचन्द ज़ेबा) की भाषा भी यथार्थ की अभिव्यक्ति करती है. यहाँ हिन्दी के साथ उर्दू शब्दों का अधिक प्रयोग है. नट का कथन सूक्तिपरक है– ''सन्तरी ही चोर हो, तो कौन रखवाली करे।

चमन का क्या हाल, जब माली ही पामाली करे।।''[29]

ज़ेबा ने संवाद में दोहों का भी प्रयोग किया है–

''तुझको देकर जन्म मैं धन्य हुई हूँ लाल।
एक तेरे पुरुषार्थ से जाति हुई निहाल।।''[30]

'जख्मी पंजाब' नाटक की भूमिका में ज़ेबा स्वयं कहते हैं, ''नाटक लेखक का इस बात पर विशेष ध्यान रहता है कि करैक्टर (पात्र) की कोई बात उसके पहुँच से बाहर न रहे और प्रत्येक बात ऐसी विशेषता से दरसाई जाए कि उसमें कल्पित होते हुए भी वास्तविकता का रंग दिखाई दे. घटनाओं की सच्चाई अपनी झलक दिखा जाए. यह काम को कोई अभ्यास अथवा अध्ययन से नहीं आता, इस के रस को वही चखता है जिसको परमात्मा ने नाटक लिखने की विशेष योग्यता जन्म से ही दी है, जिसकी कुशाग्र बुद्धि सुविचारपूर्ण है, जो सृष्टि और उनकी सुन्दरता ह्रदय की सूक्ष्म दृष्टि से देखने की विशेष प्रतिभा रखता है.''[31] इस नाटक के विषय में सत्येंद्र कुमार तनेजा लिखते हैं, ''प्रस्तुति संरचना के स्तर पर भी ज़ेबा ने पारसी परिपाटियों का अनुसरण किया. उनकी गद्य–पद्य में संवाद रचना, गीत–योजना में उसी विधि को अपनाया गया है. अभिव्यक्ति के स्तर पर ज़ेबा ने हिन्दी के प्रयोग का साहस भर दिखाया है. परन्तु सारे नाटक में उर्दू का गहरा रंग मिल जाएगा.''[32]

1922 ई. में प्रकाशित व ब्रिटिश राज द्वारा जब्त किया गया लघु नाटक 'शासन की पोल' में देवदत्त ने ब्रिटिश सरकार की छल नीतियों तार–तार कर दिया है. मोहन व सोहन के संवादों के जरिए अत्याचारी शासन को उखाड़ फेंकने का आवाहन किया. भाषाई स्तर पर नाटककार ने खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग किया है. चूँकि यह लघु नाटक है इसलिए लेखक के पास विविधताओं के लिए समय भी नहीं है. उनका लक्ष्य मात्र जनता को जगाना व विदेशी दासता से मुक्ति था. इस लघु नाटक के संबंध में सत्येंद्र तनेजा लिखते हैं, ''अभिव्यक्ति का स्वरुप इतिवृत्तात्मक जकड़न और परिनिष्ठित शब्दावली के मोह से कसा हुआ है. दोनों भाइयों के बीच विद्यमान सौहार्द–भाव को इस प्रकार प्रकट किया गया है–'पद–पूज्य–सेवक' या भ्रतृ–प्रेम की अपूर्व चिन्हावली ही दृष्टिगोचर होगी. एक उदाहरण प्रकृति चित्रण का–दोपहर का समय है और सोहन सिंह प्रकृति माता का सौंदर्य निरख रहे हैं'. इसी दिशा में युग्म शब्दावली पर नजर डालें–'स्वात्माभिमान', 'अधर्माचरण', 'हार्दिक–स्वतंत्रता', 'शान्ति–राज्य', 'आत्मिक बल', 'पातक–प्रस्ताव', 'अधर्म–प्रस्ताव''.''[33]

ब्रिटिश राज में जब्त किया गया नाटक 'लाल क्रान्ति पंजे में ' में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' सारगर्भित भाषा में अपनी बात कहते हैं. नाटक में संवाद योजना सुंदर है.

''गुप्तचर 1 : सचमुच सिंहासन त्याग दिया ?

गुप्तचर 2 : हाँ, हाँ, सचमुच. त्याग कैसे न देता, प्रबल लोक मत का सामना था. सम्राट क्या है. लोकमत का पुतला ही न.''[34]

नाटकों के माध्यम से नाटककारों ने जनता की आँखें खोलने का काम किया. उन्होंने परिवेश व पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग को अधिक तरजीह दी. गोबिन्'द राम सेठी के जब्त नाटक 'बरबादिए हिन्द' में भी यही दिखाई देता है. मुगल काल के चित्र प्रस्तुत करते समय लेख कइस बात का ध्यान रखते हैं कि पाठकों को उसकी सजीव अनुभूति हो. भाषा खड़ी बोली हिन्दी के साथ उर्दू शब्दों का भी प्रयोग हुआ है.

''बीमार : पानी ! पानी !!

बेगम : लो प्यारी, मेरे ह्रदय सर्वस्व ! अगर तुम मेरे जिगर के खून से भी आराम पा सको तो वह भी उपस्थित है.

जान तब तक कर दें फिदा हम तुझपे ऐ नूरे नजर

गर शफा पाओ लहू से चीर दें अपना जिगर.''[35]

1931 ई. में अज्ञात रचनाकार द्वारा रचित व ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त घोषित नाटक 'रक्तध्वज में देश की दुर्दशा के साथ किसानों की समस्या पर भी विचार किया गया है. उनकी दारुण अवस्था का चित्रण लेखक ने इन शब्दों में किया है–

''किसान : नाथ रक्षा करो, बचाओ ? ऐसी दारुण स्थिति में डालने के बदले मेरी जीवन लीला ही को समाप्त कर दो, इस पतित जीवन से क्या लाभ ? हा ! कौन ऐसा पिता होगा जो अपनी एक मात्र सन्तान को मरते देखकर इस दारुण, असह्य दुख को सह सकेगा. आह, मेरा एक मात्र पुत्र, मेरा जीवन आधार, मरा प्राण प्यारा श्याम आज भूखों मर रहा है. क्षुधा से पीड़ित होकर वह भोजन–भोजन चिल्ला रहा है. आज दो दिन हुए उसे भोजन नहीं मिला है.''[36]

नाटकों की भाषा में उत्तेजना फैलाने वाले शब्द भी थे. उसका जनता पर व्यापक प्रभाव पड़ रहा था. बुद्धिनाथ झा द्विज 'कैरव' के नाटक 'लवण–लीला व नमक सत्याग्रह' की भाषा में आग दिखाई देता है–

''नायक : आजादी की प्यास अब कोई दबा नहीं सकता. स्वतंत्रता की आग जो हमारे हृदय में जल चुकी है वह गुलामी की झोपड़ियों को जलाये बिना खाक होने वाली नहीं. हाँ, हमारे युद्ध का ढंग निराला होगा.''[37] सत्येंद्र तनेजा लिखते हैं, ''लवण–लीला' लेखक की एकमात्र नाट्य कृति है. परन्तु सधे–मँजे 10 दृश्यों का यह नाट्यालेख अपने आकार–प्रकार से प्रभावित करता है. इस नाटक में नायकों के लम्बे वक्तव्य हैं और चुस्त–दुरुस्त छोटे संवाद भी. रंग–संकेत बहुत विस्तार से दिए गए, ऐसा प्रतीत होता है ि कवे संवाद का विस्तार हैं. नाटक के गीत भी संवाद को नया आयाम देते हैं, इनके माध्यम से स्वयंसेवक अपने भाव प्रकट करते हैं. कैरव की उल्लेखनीय उपलब्धि है अभिव्यक्ति पर अचूक अधिकार. चाहे गद्य हो या पद्य उनकी लय–प्रवाह युक्त साफ–सुथरी खड़ी बोली–जो कहीं परिनिष्ठित हो जाती है और कहीं खिचड़ी, उनका विन्यास उसकी शक्ति है.''[38] कुल मिला कर नाटकों की भाषा को विविध प्रकार से समृद्ध किया गया है. ब्रिटिश सरकार की नींव हिलाने में इन नाटको का अभूतपूर्व योगदान है.

6.4 पत्रकारिता की भाषा :

हिन्दी पत्रकारिता अपने विकास के साथ–साथ भारतीय स्वाधीनता आंदोंलन को गति देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी. ब्रिटिश सरकार के खिलाफ भारतीय जन–मानस को जागरुक करना इनका प्रमुख उद्देश्य था. प्रतिबंधित पत्र–पत्रिकाओं ने तमाम बाधाओं के बावजूद हार न मानी. संपादकों को जेल की यातनाएं भोगनी पड़ी, कई बार जमानतें अदा करनी पड़ी. फिर भी ये लोग डटे रहे. हिन्दी का प्रथम दैनिक समाचार पत्र 'समाचार सुधावर्षण' को ब्रिटिश राज के कोप से गुजरना पड़ा. यह पत्र देश प्रेम की भावना से पूरित था. यह हिन्दी व बंगला भाषा में समान रुप से छपता था. पत्र के नाम देवनागरी में पहले थे. इसमें उर्दू भाषा के शब्दों का भी बहुत प्रयोग मिलता है–

''मुल्क हिंदुस्थान के रहने वाले हर कौम और मजहब के लोगों से मेरी इल्तिजा है कि इस नामुराद फिरंगी कौम से मुल्क की हुकूमत को छीनकर मुल्क के काबिल और समझदार और खुदापरस्त लोगों की एक पंचायत इकट्ठी करो और उसके हाथ में मुल्क सौंप दो.''[39]

हिन्दी पत्रकारिता को सुदृढ़ करने में लेखकों, संपादकों का बहुत बड़ा योगदान था. इस क्षेत्र में श्री बालकृष्ण भट्ट का नाम स्मरणीय है. उन्होंने हिन्दी–प्रदीप के माध्यम से साहित्य और देश की बड़ी सेवा की. 1909 ई. में 'जरा सोचो तो यारों यह बम क्या है' शीर्षक कविता छापने के कारण प्रेस कानून के तहत इसे प्रतिबंधित कर दिया गया था. इनकी भाषा प्रसंगानुसार तीखे व चुभने वाले होते

थे. अंग्रेजों के खिलाफ व्यंग्यों की भरमार होती थी. ये व्यंग्य अंग्रेजों के बीच खलबली मचा देते थे. 'अल्मोड़ा अखबार' के 1918 के अंक में छपी 'जी हजूरी होल' में ऐसे व्यंग्य की योजना थी कि अफसरों के होश उड़ गए. उसकी मारक भाषा ने ब्रिटिश सरकार को चुनौती दी. आजादी की लड़ाई को आग देने में हिन्दी पत्रिकाओं का बड़ा योगदान था. इनकी भाषा किसी भी देश प्रेमी को चैन से बैठने न देती थी. देश की अवस्था पर उनका हृदय उबल पड़ता था. लेखकों ने स्वयं घाटे में रह कर जनता तक अपना संदेश पहुँचाया. ब्रिटिश सरकार के अत्याचार को देख कर भाषा में घोर क्रोध का पुट उतर आता था. 'हिंदू पंच' के बलिदान अंक में लाला लाजपत राय की मृत्यु पर जो कविता छपी, उसकी भाषा में क्रोधाग्नि की लपटें सहज ही देखी जा सकती हैं–

''रे नपुंसक, कुछ न बनेगा
है नामर्द क्रोध यह व्यर्थ
कौन रोक सकता है उनको
सब प्रकार से वे सबल समर्थ''.[40]

लाला लाजपतराय की मृत्यु पर देश में ज्वालामुखी फूट पड़ा था. 1930 ई. में 'महारथी' नामक पत्र को प्रतिबंधन कानून का शिकार होना पड़ा. इसकी भाषा परिनिष्ठित थी.–

''देश में आग धधक रही है और वह प्रत्येक चोट को गिन रहा है–कब अंतिम चोट पड़ेगी और कब विशाल जनाजा उठ कर गहरी कब्र में रखा जाएगा, कब यह हमारा त्यौहार समाप्त होगा, हे वीर, हमारा प्रणाम ग्रहण कीजिए.''[41]

स्मय के साथ पत्रिकाओं की भाषा क्रमशः सुगठित व सशक्त होती जा रही थी. हिन्दी भाषा को एक नई ऊँचाई देने में इन पत्रिकाओं का अपूर्व योगदान है. 'चाँद' (फाँसी अंक) पत्रिका की भाषा भी बेहद सुलझी हुई, परिनिष्ठित खड़ी बोली है.–

''न्यायी को ऐसा कार्य करने का क्या अधिकार है, जिसमें यदि भूल हो तो उसका सुधार उसके वश की बात न रहे. अब यदि न्याय उसे जिला नहीं सकता तो उसे फाँसी देने का क्या अधिकार था ? यह न्याय नहीं, बर्बरता है, जंगलीपन है, हत्याकाण्ड है, ऐसे न्यायी का जितना शीघ्र नाश हो जाए, अच्छा है''.[42]

देश प्रेम की भावना से पूरित भाषा का एक उदाहरण देखिए–

''चुप रहो, मैं प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वर मेरी आत्मा को ज्वलंत अशांति दे, जो तब तक न मिटे जब तक मेरा देश स्वाधीन न हो जाए और मेरे देश का प्रत्येक व्यक्ति शांति न प्राप्त कर ले.''[43]

'क्रांति' की भाषा में भी खड़ी बोली हिन्दी का शुद्ध रुप दिखाई देता है– ''मुलिया उस वर्ग की स्त्रियों में से नहीं थी, जिनको समय काटने के लिए रेडियो, ताश, कैरम आदि की आवश्यकता पड़ती है. न ही उसे पड़ोसिनों को यह कहने की जरुरत पड़ती थी–'अरे कभी तो आ जाया करो''[44] उस युग में 'सैनिक' भी एक महत्वपूर्ण पत्र था. इसकी भाषा भी बहुत सशक्त होती थी. भाषा विचारों की वाहक होती है. इसका इस पत्र में बहुत ध्यान रखा गया. 'सैनिक' पत्र की भाषा का अंश निम्नलिखित है–''हाँ, मगर फिर भी तुम्हारा अभिमान नहीं दूर हुआ, फिर भी तुमने खद्दर नहीं पहना, फिर भी तुमने वकालत नहीं छोड़ी !!! छि!' एक साँस में इतनी बातें कह कर घृणापूर्वक पंडित जी की ओर देखती भिखारिन कमरे से बाहर निकल गई''.[45]

इन पत्रों को बोलचाल की भाषा से भी कोई परहेज न था. हिन्दी के साथ उर्दू के शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग दिखाई देता है. मुख्य मसला अभिव्यक्ति का था, किसी भाषा विशेष के शब्दों से परहेज की कोई बात ही न थी. देश की उन्नति के लिए देश भाषा आवश्यक थी. उसका उत्थान व परिष्कार भी लेखकों का लक्ष्य था. इन्हीं लेखकों के परिश्रम की बदौलत हिन्दी भाषा को उत्तरोत्तर नई ऊँचाई प्राप्त होती गई.

6.5 पर्चे–पोस्टर की भाषा :

आजादी की लड़ाई को आग देने में पर्चे–पोस्टरों का अहम योगदान है. जब ब्रिटिश सरकार ने अपने खिलाफ लिखी जा रही पुस्तकों पर पाबंदी लगानी शुरु की, तब लेखकों ने पर्चे–पोस्टर निकालने शुरु किए. ये पर्चे जनता में बौखलाहट पैदा करते थे. अंग्रेजी हुकूमत को चुनौती देने वाले पर्चे रातो रात लिखे जाते और गुपचुप तरीके से जनता में वितरित किए जाते. अंग्रेजों द्वारा समाचार पत्रों पर प्रतिबंध लगाये जाने से पैम्फलेटों का प्रकाशन होने लगा. 9 अप्रैल 1807 को गवर्नर जनरल के आदेश से प्रेस और सार्वजनिक सभाओं पर कड़ा प्रतिबंध लगा. पैम्फलेटों पर प्रेस का नाम प्रकाशित करना अनिवार्य कर दिया गया. गवर्नर जनरल लार्ड मिंटो ने इन पैम्फलेटों को उत्तेजना फैलाने वाला मान कर आपत्ति दर्ज की.

12 जुलाई 1931 ई. के 'भारत के नौजवानो' शीर्षक पोस्टर का भाषा में गजब का जोश है– ''बहुत सो चुके. अब लम्बी न तानो. ऐ कानपुर के शेर मर्दों. शर्माओ, शर्माओ ! आपके शहर में स्वतंत्रता के पुजारी की हत्या करवाने वाला (वीरभद्र) स्वतंत्रतापूर्वक विचर रहा है. आप के लिए कितने शर्म की बात है कि आपें कांग्रेस लीडर जोग तथा बद्री कपूर को आपने अपना लीडर समझ कर मोटर में बिठला कर घुमवाया और सम्मानित किया. वे ही तुम्हारी नाक कटवा कर सारे हिन्दोस्तान में नहीं बल्कि सारी दुनिया में आपकी बेइज्जती करवा रहे हैं. ऐ कानपुर के बड़े–बड़े पेट तथा मूछ वाले लालाओं, मुछमुंडे नौजवानो, तुम लोगों में कोई मर्द है कि नहीं ? यदि हो तो आजाद के खून का बदला खून से लो. नही ंतो चूड़ियाँ पहनो और अपनी स्त्रियों को इसका बदला चुकाने दो. ये देवियाँ खुशी से बदला चुकाएँगी.''[46]

देशद्रोहियों के खिलाफ एक अन्य पोस्टर मानो उफनता हुआ आग है– ''देशद्रोहियों को, सीआई डी अफसरों को और देशद्रोहियों की सहायता करने वालों को कत्ल करना हमारा प्रथम कर्तव्य है.

आजाद को मारने वाला कौन ? वीरभद्र तिवारी.

वीरभद्र को स्वतंत्रतापूर्वक विचरने में मदद करने वाले कौन? सीआई डी अफसर शम्भूनाथ, कांग्रेस लीडर जोग और बद्री कपूर.''[47] देश की आजादी के लिए देशभक्त युवक तड़प रहे थे. इन्दुमति गोयनका 'पुलिस कर्मचारियों से अपील' शीर्षक पर्चे में पुलिसों को याद दिलाती हैं कि वे जिन पर अत्याचार कर रहे हैं, वे उनके अपने ही भाई हैं. इनकी भाषा ओजपूर्ण है. लोगों को ललकारती है.

[1] श्रीवास्तव, मुंशी नवजादिक लाल : पराधीनों की विजय यात्रा (सं– मैजेजर पाण्डेय) स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, सं 2014 पृ. 17
[2] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 2 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 11
[3] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 2 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 11
[4] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 2 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 भूमिका
[5] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 2 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 279
[6] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 2 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 156
[7] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 2 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 49
[8] दौनेरिया, पंडित बाबूराम :अंग्रेजों की बोलती करो बंद, भारत बुक एजेंसी, नई सड़क , देहली पृ 10
[9] रस्तोगी, क्षमाचंद्र (प्रकाशक) : आजादी का बिगुल 15 वीं गजल
[10] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 2 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 85
[11] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 2 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 90
[12] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 2 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 92
[13] उपाध्याय, विश्वमित्र : लोकगीतों में क्रांतिकारी चेतना; प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार सं 1999 पृ. 7
[14] उपाध्याय, विश्वमित्र : लोकगीतों में क्रांतिकारी चेतना; प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार सं 1999 पृ. 7
[15] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 2 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 262
[16] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 2 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 264
[17] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 भूमिका
[18] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 भूमिका
[19] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 16
[20] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 38
[21] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 62
[22] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 186
[23] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 156
[24] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 82
[25] तनेजा, सत्येंद्र कुमार (सं) : सितम की इन्तिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010 पृ. 173
[26] तनेजा, सत्येंद्र कुमार (सं) : सितम की इन्तिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010 पृ. 176
[27] तनेजा, सत्येंद्र कुमार (सं) : सितम की इन्तिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010 पृ. 186
[28] तनेजा, सत्येंद्र कुमार (सं) : सितम की इन्तिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010 पृ. 145
[29] तनेजा, सत्येंद्र कुमार (सं) : सितम की इन्तिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010 पृ. 244
[30] तनेजा, सत्येंद्र कुमार (सं) : सितम की इन्तिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010 पृ. 245
[31] तनेजा, सत्येंद्र कुमार (सं) : सितम की इन्तिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010 पृ. 237
[32] तनेजा, सत्येंद्र कुमार (सं) : सितम की इन्तिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010 पृ. 232
[33] तनेजा, सत्येंद्र कुमार (सं) : सितम की इन्तिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010 पृ. 327
[34] तनेजा, सत्येंद्र कुमार (सं) : सितम की इन्तिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010 पृ. 359
[35] तनेजा, सत्येंद्र कुमार (सं) : सितम की इन्तिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010 पृ. 387
[36] तनेजा, सत्येंद्र कुमार (सं) : सितम की इन्तिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010 पृ. 441
[37] तनेजा, सत्येंद्र कुमार (सं) : सितम की इन्तिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010 पृ. 488
[38] तनेजा, सत्येंद्र कुमार (सं) : सितम की इन्तिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010 पृ. 479
[39] चतुर्वेदी, जगदीश प्रसाद : हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास ; प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं 2011 पृ. 38
[40] चतुर्वेदी, जगदीश प्रसाद : हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास ; प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं 2011 पृ. 194
[41] चतुर्वेदी, जगदीश प्रसाद : हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास ; प्रभात प्रकाशन , दिल्ली, सं 2011 पृ. 196
[42] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 287
[43] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 269

[44] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 245

[45] राय, रुस्तम : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य भाग 1 ; राधाकृष्ण प्रकाशन, सं 1999 पृ. 244

[46] तनेजा, सत्येंद्र कुमार (सं) : सितम की इन्तिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010 पृ. 618

[47] तनेजा, सत्येंद्र कुमार (सं) : सितम की इन्तिहा क्या है ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, सं. 2010 पृ. 618

उपसंहार :

प्रतिबंधित साहित्य में एक ओर देश की स्वाधीनता के लिए जन समाज को जागरुक किया गया, दूसरी ओर देश की सामाजिक अवस्था को भी समुन्नत बनाने का प्रयत्न किया गया. समाज में फैली रुढ़ियों के खिलाफ भी आवाज बुलंद की गई. उस समय किसान, मजदूर व बुनकरों की समस्याएँ भी आग की लपटों की तरह बढ़ती जा रही थी. लेखकों व कवियों ने विभिन्न विधाओं के माध्यम से उनकी दारुण स्थिति को चित्रित किया. इसके अलावा उन्होंने गरीबों, शोषितों से एकजुट होकर सूदखोरों, जमींदारों व उनके आका अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष जारी रखने की अपील की. लेखकों की इस सक्रियता से आतंकित होकर ब्रिटिश सरकार ने इन रचनाओं को जब्त घोषित कर दिया. फिर भी लेखन का सिलसिला नहीं रुका. सेंसरशिप के बावजूद लेखक लिखते रहे. इसके लिए कई बार उन्हें जमानतें भी अदा करनी पड़ी. आए दिन उनके घरों की तलाशियाँ होती. ये लेखक स्वयं क्रांतिकारी भी थे. उन्होंने आजादी की लड़ाई को साहित्य के माध्यम से भी आगे बढ़ाने की भरपूर कोशिश की.

क्रांतिकारी साहित्य में बड़ी सूक्ष्मता से विभिन्न मुद्दों की पड़ताल की गई थी. लम्बे अरसे से व्याप्त रुढ़िवादी विचारों पर खुली चोट की गई. रचनाकारों का उद्देश्य अंग्रेजों से मुक्ति मात्र नहीं था, वरन् आजादी के बाद रुढ़ियों व गैर बराबरी से मुक्त समाज की स्थापना भी था. देश पर मर–मिटने वाले लोग शोषण मुक्त आजादी प्राप्त करना चाहते थे. इस महत् स्वप्न को लेखकों ने आत्मकथा, जीवनी, नाटक, कविता समेत अलग–अलग विधाओं में अपनी अभिव्यक्ति की. कई पत्रिकाएँ निकाली गई. पर्चे–पोस्टर के माध्यम से भी लोगों में आजादी की भावना भरने का प्रयत्न किया गया. जहाँ एक ओर क्रांतिकारी सक्रिय थे तो दूसरी ओर वे रचनाएँ भी उनके प्रयत्न को सफल बनाने में अपना सहयोग दे रही थी. ये रचनाएँ ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिला रही थी.

हिंदुस्तान की आजादी की लड़ाई में पुरुषों के साथ स्त्रियों ने भी बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया. एक ओर वे पुरुषों को प्रेरित करती, तो दूसरी ओर स्वयं इस लड़ाई का नेतृत्व करतीं. इसके लिए उनको जेल जाना पड़ा, तमाम यातनाओं का सामना करना पड़ा, लेकिन वे पीछे न हटीं. नेहरु अपनी पुस्तक भारत एक खोज में मानते हैं कि महिलाओं की इस सक्रियता ने अंग्रेजी सरकार को ही अचंभित नहीं किया वरन् कांग्रेसी नेता भी भौचक्के रह गए. हालांकि मोतीलाल नेहरु को अपने घर की स्त्रियों का, इस तरह गरम दुपहरियों में, सड़क पर आकर पुलिस के सामने अत्याचार झेलना पसंद नहीं था फिर भी गांधी के नेतृत्व में उनकी अपनी पत्नी, बेटियां, बहू सड़क पर आंदोलन करने आ गईं. स्त्रियों के इस अपूर्व योगदान व उत्साह को जगह–जगह दर्ज किया गया.

प्रतिबंधित साहित्य में उनके इस सक्रियता का वर्णन है. ब्रिटिश राज में ज़ब्त घोषित की गई पुस्तक 'आगरा सत्याग्रह संग्राम' में स्त्रियों की जीवटता को भली–भांति रेखांकित किया गया है. यह पुस्तक सैनिक कार्यालय, आगरा से प्रकाशित हुई थी. इसके लेखक महेन्द्र लिखते हैं कि माताएं अपने पुत्रों को बलि वेदी पर सहर्ष भेज देती थी. ''श्रीयुत रामबाबू की माता ने सभा में पुत्र को विदा देते हुए कहा, 'बेटा मेरी कोख की लाज रखना संग्राम से विजयी होकर लौटना.' इस वीरतापूर्ण दृश्य का दर्शकों पर बहुत सात्विक प्रभाव पड़ा.

प्रतिबंधित साहित्य में हर ओर स्वतंत्रता की लहर गूंजती दिखाई देती है. इनके माध्यम से देश की जनता को लेखन के माध्यम से झकझोरा गया. परतंत्रता की बेड़ियों को उखाड़ फेंकने के लिए देशवासियों को ललकारा गया. सेंसरशिप के बावजूद लोग लिखते रहे. स्वतंत्रता उनका अंतिम लक्ष्य था. कहानियों, कविताओं, उपन्यास, नाटक, पैम्फलेट, भाषणों इत्यादि को माध्यम बना कर चेतना के प्रसार के लिए लोग प्रयत्नशील थे. इस चेतना से घबरा कर ब्रिटिश हुकूमत ने ऐसी सारी पुस्तकों, पत्रों, समाचार–पत्रों को जब्त कर लिया. पाण्डेय बेचनशर्मा उग्र की जब्त की गई कहानी 'उसकी मां' में लाल गुलामी के शिकंजे को तोड़ डालने के लिए तत्पर दिखाई देता है. चाचाजी द्वारा सरकार विरोधी कार्य करने पर मना किए जाने पर वह बेबाक ढंग से कहता है –'आपने गलत सुना चाचाजी. मैं किसी षणयंत्र में नहीं. हां मेरे विचार स्वतंत्र अवश्य हैं, मैं जरुरज–बेजरुरत जिस–तिस के आगे उबल अवश्य उठता हूँ. देश की दुरवस्था पर उबल उठता हूं ; इस पशु–हृदय की परतंत्रता पर।

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को चिंगारी देने में हिन्दी रचनाओं ने प्रमुख भूमिका निभाई. ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त की गई पुस्तकों में औपनिवेशिक सत्ता को बगैर किसी लाग लपेट के ललकारा गया था. अंग्रेजों के क्रूर व दमनकारी शासन का पर्दाफाश किया गया. आग के गोले के समान शब्दों की मार से ब्रिटिश सरकार बौखलाई हुई थी. फलतः उसने पुस्तकों पर जब्ती के फरमान जारी किए. फिर भी , संकट के बावजूद रचनाकारों ने अपनी अभिव्यक्ति जारी रखी. परिणामस्वरुप हिन्दी भाषा में रची अनेक पुस्तकों पर पाबंदी लगी. इनकी भाषा के संबंध में कर्मेंदु शिशिर लिखते हैं, ''खड़ी बोली हिन्दी नवजागरण के गर्भ से निकली एक ऐसी भाषा है, जो राष्ट्र के मुक्ति संघर्ष में पली–बढ़ी और उसकी वाहिका बनी. ऐसा सौभाग्य शायद ही किसी भाषा को मिला हो. स्वाधीनता आंदोलन के बहुस्तरीय संघर्षों में इस भाषा की भूमिका को मूर्त करने वाले महान जन नायकों की एक पूरी कतार है. उनसे प्रेरित और प्रभावित ऐसे अनेक गौण रचनाकार भी थे जिन्होंने प्राण–पण से अपना सब कुछ उत्सर्ग कर इस भाषा को असाधारण प्रौढ़ता दी.

संदर्भ–ग्रंथ सूची

आधार सामग्री (primary source)

यहां दी गई आधार सामग्री राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में मौजूद है. इनमें से कुछ सामग्रियों का प्रकाशन स्वतंत्र रूप से पत्र–पत्रिकाओं , आदि में हो चुका है.

➢ प्रतिबंधित हिन्दी पुस्तके :

(क) आत्मकथा :

1. आजादी के शहीद – त्रिमूर्ती ; नवरत्न साहित्य मण्डल , कानपुर, 1939
2. काकोरी की भेंट –रामप्रसाद 'बिस्मिल' ; लक्षमण'पथिक' दिल्ली, 1931

(ख) उपन्यास :

1. ग़दर – ऋषभचरण ; हिन्दी पुस्तक कार्यालय, दिल्ली 1930
2. पैरोल पर – ब्रजेन्द्रनाथ गौड़ ; शिवाजी बुक डिपो , लखनऊ , 1943

(ग) कहानियां :

1. क्रांतिकारी कहानियाँ –पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ; साहित्य सेवक कार्यालय , बनारस 1939
2. बाग़ी की बेटी – मुनिश्वरदत्त अवस्थी ; चौधरी एण्ड संस , बनारस 1932
3. हड़ताल – ऋषभचरण जैन ; इन्द्रप्रस्थ पुस्तक भण्डार , दिल्ली , 1939
4. दोस्त –यशपाल ; विप्लव, अप्रैल 1939
5. लावारिस लाश – लक्ष्मीचंद्र वाजपेयी 'चंद्र' ; क्रांति, अक्टूबर 1939
6. भिखारिन – मुक्त ; सैनिक , 8 फरवरी 1928
7. मजदूरिन – लीलावती बी. ए. ; क्रांति , सितंबर 1939

8. विद्रोही के चरणों पर – जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' ; चाँद, फाँसी अंक, नवंबर 1928

(घ) काव्य संग्रह :

1. भारत की राष्ट्रीय आल्हा – बाबूराम पेंगोरिया ; जैन प्रेस, आगरा 1930

2. अंग्रेजों की बोलती करो बन्द – (प्र.) पण्डित बाबूराम दौनेरिया ; भारत बुक एजेंसी, देहली

3. अंग्रेजों की अकड़ फूँ निकल गई– (प्र.) पण्डित बाबूराम दौनेरिया

4. अहिंसा की शमसीर ; खिचरी समाचार प्रेर, मिरजापुर, 1930

5. राष्ट्रीय आल्हा यानी भगतसिंह की लड़ाई – कॉमरेड सूर्यप्रसाद मिश्र ; खालागाँव, देशपुर, कानपुर

6. आग का गोला (द्वितीय भाग)

7. आजादी का बिगुल – (प्र.) क्षमाचंद्र रस्तोगी

(च) जीवनी :

1. चन्द्रशेखर आजाद की जीवनी – बलदेव प्रसाद शर्मा ; आदर्श पुस्तक भण्डार, बनारस 1933

2. यतीन्द्रनाथदास – शिवचरणलाल गुप्त ; गोरखपुर (उ0प्र0) 1939

3. सरदार भगत सिंह– के. एल. गुप्ता ; आगरा (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

4. बलिदान – महाशय राजपाल ; राजपाल एण्ड संस , लाहौर (प्रकाशन वर्ष अज्ञात है)

(छ) नाटक :

1. कुली प्रथा – ठाकुर लक्ष्मण सिंह , 1916

2. जख्मी पंजाब – किशनचंद 'ज़ेबा' , 1922

3. शासन की पोल – देवदत्त, 1922

4. लाल क्रांति के पंजे में ; पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' , 1924

5. बरबादिए हिन्द – गोबिन्द राम सेठी , 1929

6. रक्तध्वज – अज्ञात , 1931

7. लवण लीला – बुद्धिनाथ झा द्विज 'कैरव' , 1931

➢ प्रतिबंधित हिन्दी पत्र–पत्रिकाएं

1. .अलंकार, भाग–4, नं0–11 , 11 दिसम्बर 1934 , आफिस आफ द अलंकार : लाहोर

2. कल्याण ; अक्टूबर 1946 ; गीता प्रेस गोरखपुर (मासिक)

3. क्रांति ; भाग–1 , नं0–2 ; सितम्बर 1939 – राजाराम शास्त्री ; नेशनल प्रेस , कानपुर (मासिक)

4. चाँद : फांसी अंक , नवंबर 1928 – आचार्य चतुर्सेन शास्त्री – चाँद कार्यालय , इलाहाबाद

5. नया हिन्दूस्तान : भाग–1 , नं0–41 , 17 सितम्बर 1939 , नया हिन्दूस्तान : इलाहाबाद (साप्ताहिक)

6. .बलिदानः नववर्ष अंक, भाग–2, नं0–1, 1अप्रैल 1935 ;– भीमसेन वर्मा और सत्यकाम विद्यालंकार; राजपाल एण्ड संस

7. बुन्देलखण्ड केसरीः नं0–53 , 18 दिसंबर 1932 – रणधीर ; बुंदेलखण्ड

8. वालेन्टीयर ; भाग–1, नं0–1, – टोडर सिंह तोमर ; दिसंबर 1924 , कानपुर (मासिक)

9. विप्लव ; नं0–6 ; अप्रैल 1936 (मासिक)

10. .शंखनाद ;भाग–1 , नं0–123 ; 7 नवंबर 1932 (साप्ताहिक)

11. सत्याग्रही : भाग–1, नं0–2 , – हनुमान सिंह बघेल ; 6 अप्रैल 1930 ; सत्याग्रह कार्यालय , रायबरेली

12. स्वदेश का विजयांक ; नं0– 38–39 , – पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ; स्वदेश प्रेस : गोरखपुर

13. सैनिक ; भाग–3 ,नं0–14, –कृष्णदत्त पालीवाल 31 अगस्त 1927 ; सैनिक प्रेस, आगरा (साप्ताहिक)

14. सैनिक ; भाग–3 ,नं0 –3, – कृष्णदत्त पालीवाल 8 फरवरी 1928 ;सैनिक प्रेस, आगरा (साप्ताहिक)

15. सैनिक ; भाग–3 ,नं0 –36, –कृष्णदत्त पालीवाल 8 फरवरी 1928 ;सैनिक प्रेस, आगरा

सहायक ग्रन्थ (secondary source) :

(क) सहायक हिन्दी पुस्तकें (Hindi Books) :

1. अरिन्दम सेन : पार्थ घोष (सं), 'भारत में कम्युनिस्ट आन्दोलन खण्ड–1 , 1917–'39',समकालीन प्रकाशन प्रा. लि., 1992

2. कार्ल मार्क्स–फ्रे. एंगेल्स (अनु. रमेश सिन्हा) 'भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम : 1857–59', पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., 1973

3. क्रांत',मदन लाल वर्मा, 'स्वाधीनता संग्राम के क्रांतिकारी साहित्य का इतिहास',प्रवीण प्रकाशन, 2006

4. क्रिस हरमन, 'विश्व का जन इतिहास',संवाद प्रकाशन, मुंबई 2009

5. कुमार, राधा, 'स्त्री संघर्ष का इतिहास', वाणी प्रकाशन, 2009

6. चंद्र ,विपन, 'आधुनिक भारत',अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि. 2006

7. चंद्र, विपन, 'भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्‌भव और विकास',अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि. 2008

8. चौबे, देवेन्द्र, 'आलोचना का जनतंत्र', आधार प्रकाशन 2011

9. चौबे, देवेन्द्र– बद्रीनारायण– पटेल, हितेन्द्र(संपा), '1857 : भारत का पहला मुक्ति संघर्ष, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2008

10. जगदीश्वर चतुर्वेदी : सुधा सिंह, 'स्वाधीनता संगाम हिन्दी प्रेस और स्त्री का वैकल्पिक क्षेत्र ,अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि. 2006

11. ठाकुर, हरिनारायण, 'दलित साहित्य का समाजशास्त्र',भारतीय ज्ञानपीठ, 2009

12. डॉ. आर शशिधरन, 'स्वतंत्रता और साहित्य',शिल्पायन, 2007

13. डॉ. कुसुम मेघवाल, 'भारतीय नारी के उद्धारक : बाबासाहेब डॉ. बी. आर.' अम्बेडकर ,सम्यक प्रकाशन, 2010

14. डॉ. मंजू सुमन, 'दलित महिलाएँ', समयक प्रकाशन, 2004

15. डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल, 'भारत का सामाजिक–आर्थिक इतिहास(1758ई.–1947ई.)' हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2005

16. तलवार ,वीरभारत, 'किसान राष्ट्रीय आन्दोलन और प्रेमचंद : 1918–22' ,वाणी प्रकाशन, 2008

17. तलवार,वीरभारत, 'सामना रामविलास शर्मा की विवेचन पद्धति और मार्क्सवाद तथा अन्य निबन्ध' , वाणी प्रकाशन, 2005

18. ताराचंद, 'भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास' खंड–2 प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय 1932

19. तुंग, माओ–त्से , 'कला साहित्य और संस्कृति' ,वाणी प्रकाशन, 1994

20. दत्त ,रजनी पाम ,(अनु. रामविलास शर्मा) 'आज का भारत' ग्रंथ शिल्पी, 2004 दिल्ली

21. देउस्कर, सखाराम गणेश, 'देश की बात' ,नेशनल बुक ट्रस्ट, 1010

22. देव ,नरेंद्र, 'राष्ट्रीयता और समाजवाद' नेशनल बुक ट्रस्ट, 2011

23. नंबूदिरिपाद, ई. एम. एस., 'भारत का स्वाधीनता संग्राम' ,दिल्ली ग्रंथ शिल्पी, 2004

24. नेहरू ,जवाहरलाल, 'हिन्दुस्तान की समस्याएं', सत्साहित्य प्रकाशन, 1955

25. प्रकाश, अरूण (सं), 'तोड़ो गुलामी की जंजीरें' साहित्य अकादमी, 2008

26. पाण्डेय, व्रज कुमार, 'भारतीय मुक्ति आन्दोलन का वैचारिक पक्ष',मेखला प्रकाशन, 2011

27. बद्रीनारायण, चौधरी, रश्मि, संजय नाथ (संपा), '1857 का महासंग्राम', आधार प्रकाशन, पचंकूला 2010

28. भट्टाचार्य, सव्यसाची, 'आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास(1850–1947)' ,राजकमल प्रकाशन, 2009

29. महाजन, सुचेता, 'स्वाधीनता और विभाजन', ग्रंथ शिल्पी , 2005

30. महोर, भगवान दास, '1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव', कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर 1976

31. मार्क्स–एंगेल्स, 'साहित्य तथा कला', प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1981

32. माता प्रसाद, 'भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत',समयक प्रकाशन, 2010

33. मिश्र, भरत. ' 1857 की क्रांति और उसके प्रमुख क्रांतिकारी' राधा पब्लिकेशंस 1992

34. व्होरा, आशा रानी, 'स्वतंत्रता सेनानी लेखिकाएं', सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली,1918

35. वर्मा, लाल बहादुर, 'अधूरी क्रांतियों का इतिहासबोध',संवाद प्रकाशन, 2009

36. शर्मा, रामविलास, 'स्वाधीनता संग्राम : बदलते परिप्रेक्ष्य' हिन्दी माध्यम कार्यान्यवन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2007

37. शर्मा, रामविलास, 'मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य',वाणी प्रकाशन, 2008

38. शर्मा ,रामविलास ,'भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद',भाग–1, राजकमल प्रकाशन 1882

39. शिशिर, कर्मेन्दु, '1857 की राजक्रांति : विचार और विश्लेषण, अनामिका पबिलशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स(प्रा.) लि. नई दिल्ली 2008

40. सक्सेना, प्रदीप, '1857 महाक्रांति या महाविद्रोह', प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली 2008

41. सरकार ,सुमित, 'आधुनिक भारत',राजकमल प्रकाशन, 1999

42. सिंह, मुरली मनोहर प्रसाद. अवस्थी, रेखा , '1857, बगावत के दौर का इतिहास': ग्रंथ शिल्पी 2007

43. सिंह, अयोध्या, 'हिन्दुस्तान का स्वाधीनता आन्दोलन और कम्युनिस्ट' ग्रंथ शिल्पी, 2001

44. सिंह ,अयोध्या, 'भारत का मुक्ति संग्राम', ग्रंथ शिल्पी, 2003

45. सिंह ,संचिता, 'नक्सलवाद : किसान आन्दोलन से लालवाद तक',जनवाणी प्रकाशन प्रा. लि. 2011

46. सिंह, सतनाम, '1857 की क्रांति में दलितों का योगदान' ,सम्यक प्रकाशन, 2011

47. सेन ,अरिंदम, 'महिला आन्दोलन और कम्युनिस्ट पार्टी ',समकालीन प्रकाशन, 2010

48. हिबर्ट, क्रिस्टोफर (अनु. किशोर दिवसे), 'महान विप्लव : 1857, संवाद प्रकाशन 2008

49. सरकार, सुशोभन : बंगला नवजागरण, अनु. एस. एन. कानूनगो, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, सं. 1997

50. सान्याल, शचीन्द्रनाथ : बन्दी जीवन ; आत्माराम एंड संस, दिल्ली, सं 2012,

(ख) प्रतिबंधित सहायक सामग्रीः

इस सामग्री का उपयोग सहायक स्रोत सामग्री के रूप में किया जाएगा , जिससे कि प्रतिबंधित साहित्य में मुक्ति के अर्थ का अध्ययन किया जा सके.

- **हिन्दी के प्रतिबंधित पैंफलेट, रिपोर्ट, प्रस्ताव, अपील, मेनिफेस्टो, भाषण इत्यादि :**

1. अंग्रेजों से मेरी अपील – महात्मा गांधी ; सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली
2. कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो अर्थात समष्टिवाद के असली सिद्धांत– सं. अयोध्यासिंह, झांसी, 1934
3. द्वितीया दोआबा ; किसान सम्मेलन , सभापति का भाषण
4. देश के नौजवान क्या करें – स्टूडेंट यूनियन, कानपुर
5. प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का किसानों को आदेश; लगान एक पैसा ना दो – सुखदेव पालीवाल ; संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
6. पुलिस, फौज और सी. आई. डी. के हिन्दुस्तानी कर्मचारियों से अपील– कन्हैयालाल
7. पेशावर जाँच समिति की रिपोर्ट – बी. जे. पाटिल ; पेशावर जाँच समिति , 1930
8. बलिया दमन विरोधी दिवस मनाओ– राज्य खेत मजदूर यूनियन, बनारस
9. मजदूरों , किसानों और गरीबों सब मिलकर एक हो जाओ
10. महात्मा गांधी की फौज में भर्ती हो सत्याग्रह सिपाहियों में नाम लिखाओ – सत्याग्रह कमेटी, रायबरेली
11. राष्ट्र के नाम राष्ट्रपति का संदेश– सी. आर. राजगोपालचारी
12. लगान का एक पैसा भी देना पाप है; किसानों के नाम कांग्रेस का हुकुम ; जिला कांग्रेस कमेटी , उन्नाव
13. लगान बंद कर दो – संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी, प्रयाग
14. सरकार की लड़ाई में चंदा मत दो – कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया
15. भारत के नौजवानो

(ग)सहायक अंग्रेजी पुस्तकें (**English Books**) :

1. Amaresh Mishra:-Mangal Pandey : The True Story of An Indian Revolutionary; Rupa Publications India Pvt. Ltd, 2005
2. Amaresh Mishra:-War of Civilisations India AD1857;Rupa Publications India Pvt. Ltd.2008
3. Bhargava, Meena:-Exploring Medieval India, Sixteenth to Eighteenth Centuries ;orient black swan, 2010
4. Biswamoy Pati:-The Great Rebellion of 1857 in Indi; ManoharPublishers&Distributors,2010
5. Biswamoy Pati & Mark Harrison:-The Social History of Health and Medicine in Colonial India;Manohar Publishers & Distributors 2009
6. B.R. Tomlinson:-The economy of Modern India 1860-1970; Cambridge university Press, 1996
7. Chalam KS:- Modernization And Dalit Education:Ambedkar's Vision ; Rawat Publication, 2008
8. c.y. chintamani:- Indian Politics Since The Mutiny;Rupa Publications India Pvt.Ltd.1940
9. Geraldine Forbes:- Women in Modern India; Cambridge university Press, 1999
10. George J(Ed) :- Rethinking Radicalism in Indian Society : Bhagat Singh And Beyond; Rawat Publication, 2009
11. Harman C :- Marxism and History;Rawat Publication, 1998
12. Hibbert:-Great Mutiny The: India 1857; Penguin Books India,1980
13. Joshi, P.C. : Rebellion of 1857; N.B.T. 2007
14. Kenneth W. Jones:- Socio-religious Reform Moments in British India; Cambridge university Press,2006
15. Kirti Narain:- Press, Politics And Society:Urrat Pradesh,1885-1914 Manohar Publishers & Distributors,1998
16. Kumar Arun (Ed):- Dalits and Economic Reforms;Rawat Publication 2010
17. Malik Z :- Agrarian System in Medieval India; Rawat Publication 2001
18. Michael Mishra:-British India;Rupa Publications India Pvt.Ltd. 2004
19. Naidu BN:- Intellectual History of Colonial India:Rawat Publication 1996
20. Nayar :- Great Uprising, The: India,1857;Penguin Books India, 2007

21. Peter G. Robb:-The Evolution of British Policy Towards Indian Politics 1880-1920;Manohar Publishers & Distributors 1992
22. Shabbir M : - B. R. Ambedkar : Study in Law and Society; Rawat Publication, 2008
23. Shyamlal :- Ambedkar And Dalit Movement; Rawat Publication, 2008
24. Walker G:- Writing Early Modern History; Rawat Publication, 2005
25. Yang X :- Economics Development and the Division of Labor ; Rawat Publication, 2003

(घ) <u>सहायक पत्र–पत्रिकाएं (**Journals**)</u> :

हिन्दी पत्र–पत्रिकाएं (Hindi Magazine) :

1. बहुवचन , अंक– 21 , अप्रैल–जून 2001
2. तद्भव , अप्रैल 2003
3. दैनिक हिन्दुस्तान, 15 अगस्त 1997

<u>अंग्रेजी पत्रिकाएं</u> (English Magazine)

1. Economic political weekly, Ed.-Veena Nareqal , vol- xxxv No . 08-09 , February 19 , 2000
2. Journal of Womans History, Ed. - Claire C. Robertson & Nupur Chaudhuri , vol- 14 , Number 4, Winter 2003